विप्रदास

शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय

ल्य : पाँच रुपया

काशक : सन्मार्ग प्रकाशन
बेंगलो रोड, दिल्ली

द्रक : शुक्ला प्रिंटिंग एजेंसी, द्वारा
नूतन प्रेस, दिल्ली

: १ :

बलरामपुर गाँव की रथशाला में किसानों ने एक सभा की। पास की रेलवे लाइन के कुली गैंग ने इतवार का अवकाश होने के कारण सभा में सम्मिलित होकर इसकी शोभा बढ़ाई और कलकत्ते से आये हुए कई प्रसिद्ध वक्ताओं ने वर्तमान युग की विषमता और वैमनस्यता के विरुद्ध उग्र भाषण दे डाले। काफी प्रस्ताव पास हुए और अन्त में वन्देमातरम् के नारों के साथ जुलूस बनाकर गाँव की परिक्रमा की गई और उस दिन के सम्मेलन का कार्य-क्रम समाप्त किया गया।

बलरामपुर गाँव छोटे-बड़े बहुत से ताल्लुकेदारों और धनी गृहस्थों की बस्ती है। मुसलमान किसानों की बस्ती गाँव के किनारे पर है और उसी के पास कई एक घर बाग्दियों और दुले लोगों के हैं। गंगा की एक धारा ने बहुत पहले ही सूखकर कोसों लम्बी झील बना दी है, उनके घर इसी के किनारे पर बने हैं। यज्ञेश्वर मुखोपाध्याय इस गाँव के सबसे बड़े पुरुष हैं। उनकी जमीं-दारी ताल्लुका और व्यापार इत्यादि के धन ऐश्वर्य को अपार कहना अत्युक्ति नहीं। जिस समय वह जुलूस लाल कपड़े पर लिखे हुए भाँति-भाँति के नारों के साथ उच्च स्वर से किसान मजदूरों की जय-जयकार करता हुआ उनके रमणीय महल के सामने वाले मार्ग से निकल रहा था, उस समय एक नवयुवक ऊपर के बरामदे में खड़ा होकर नीचे का सारा दृश्य शान्त भाव से देख रहा था।

अचानक उसकी दृष्टि पड़ते ही जनता का जोशपूर्ण शोर पल भर में ठण्डा पड़ गया। आगे-आगे चलने वाले नेताओं में से दो तीन ने विस्मित होकर इधर-उधर देखते हुए बहुतेरे लोगों की दृष्टि के साथ-साथ जब ऊपर दृष्टि घुमाई तो वह खम्भे की ओट में धीरे-धीरे छिप गया। वे पूछ बैठे—'कौन है?'

कई आदमियों ने फुसफुसाहट में कहा—'विप्रदास बाबू।'

'कौन हैं विप्रदास ? क्या गाँव के जमींदार ?' किसी ने कह दिया—हाँ !

नेतागण शहर के आदमी हैं। किसी को कुछ समझते नहीं, अपमानित
र से कहा—'ओह यही !' और फिर तुरन्त उन्होंने उच्च स्वर से चिल्लाकर
र हाथ उठाकर कहा—'बोलो भारत माता की जय ! बोलो किसान-मजदूरों
जय ! वन्देमातरम् !'

लेकिन इसका कोई खास मतलब नहीं निकला। बहुतेरे चुप हो गये, या
न-ही-मन में नारा लगाया और जिन दो-चार लोगों ने आवाज भी लगाई,
नका दबा हुआ कण्ठ-स्वर ऊँचा नहीं उठ सका। विप्रदास के बरामदे को पार
र वह उनके कानों तक पहुँचा था या नहीं, यह कहा नहीं जा सकता।
ताओं ने अपने को अपमानित समझकर, खीझकर कहा—'इस एक साधारण
हाती जमींदार का इतना भय ! यही तो हमारे बड़े शत्रु हैं, हमारा खून
नरन्तर चूस रहे हैं। हमारा असली आक्रमण तो इन्हीं के विरुद्ध है !'

अचानक इस उग्र भाषण का सिलसिला विघ्न पहुँचने से रुक गया।
कतने ही तीव्र बाण अभी उनके तरकश में मौजूद थे, किन्तु प्रयोग करने में
ाधा हो गई। किसी ने भीड में से कहा—'उनके बड़े भाई हैं !'

'किनके ?'

एक युवक ने, जिसकी आयु लगभग पच्चीस-छव्वीस साल की थी, और
कण्डा लिए सबके आगे-आगे चल रहा था, मुँह फेरकर खड़ा हो गया और
हने लगा—'अपने ही बड़े भाई हैं।'

परन्तु इसी युवक के आग्रह, परिश्रम और पैसे से आज का सम्मेलन
ाफल हो सका था।

'अच्छा, आपके बड़े भाई हैं ! तो आप भी यहाँ के जमींदार हैं ?'

युवक का सिर लज्जा से झुक पड़ा।

: २ :

छोटे भाई को अपनी बैठक में बुलाकर विप्रदास ने कहा—'कल का कार्य-
क्रम बुरा नहीं रहा; बहुत कुछ विस्मित करने वाला था। नारे भी अच्छे चुने

गये। उनमें कड़ापन था यह तो मानना ही होगा।' द्विजदास चुपचाप खड़ा रहा।

विप्रदास ने पूछा—'जुलूस क्या खासतौर से मेरे ही लिए, मेरी आँखों के सामने से ले जाया गया? मैं भयभीत हो जाऊँगा इसीलिए क्या?'

द्विजदास ने शान्त होकर उत्तर दिया—'केवल आप ही के लिए नहीं। जुलूस किसी भी मार्ग से क्यों न जाय—जिन्हें डरना है, वे तो डर ही जायँगे भैया!'

विप्रदास हँस दिया। उनकी यह हँसी आशा से एकदम भरी थी। उन्होंने कहा—'तुम्हारे भैया उस प्रकार के व्यक्ति नहीं हैं, यह बात तुम्हारे जुलूस के बहुत से लोग जानते थे। वर्ना उसकी जयध्वनि सुनने के लिए मुझे बरामदे में जाकर कानों से सुनने की आवश्यकता न होती, मकान के भीतर से ही सुनाई पड़ जाती। तुम्हारे भाँति-भाँति के झण्डों और लम्बे-चौड़े भाषणों से मैं घबराता नहीं। यह मैं भली-भाँति जानता हूँ कि लगाये हुए नकली दाँतों से दूसरों के ऊपर दाँत पीसे भर जा सकते हैं, उनसे काटने का कार्य नहीं हो सकता।'

कल जिस लिए बहुत से लोगों का कण्ठरोध हुआ था, वह छिपा नहीं था और इसी से द्विजदास दिल के भीतर बहुत लज्जित भी हुआ था। वह स्वभाव से शान्त प्रकृति का व्यक्ति है, बड़े भाई का बहुत अधिक सम्मान करने के कारण शायद और किसी प्रसंग में भी चुप रह जाता, परन्तु जिस बात को लेकर उन्होंने आक्षेप किया, उसे सहना कठिन था। फिर भी दबे कण्ठ से उसने कहा—'भैया, लगाये दाँतों से कितना काम चलता है यह हम जानते हैं। केवल आप लोग ही नहीं जानते कि संसार में असली दाँत वाले व्यक्ति भी हैं। जब काटने का समय आवेगा, उनकी कमी न रहेगी।'

उत्तर निराशापूर्ण था। विप्रदास ने विस्मय में उसके मुँह की ओर देखते हुए कहा—'अच्छा!'

द्विजदास उत्तर में कुछ कहने ही जा रहा था कि भय से रुक गया। भय विप्रदास का नहीं, माँ का था। अचानक द्वार के बाहर माँ का कण्ठ सुनाई पड़ा—'तुम लोग द्वार पर पर्दा क्यों लटकाये रखते हो? नेम धरम

से घर में पैर रखना कठिन हो गया है। घर-द्वार सब कुछ विलायती फै
की वस्तुओं से भर गया है।'

द्विजदास ने तुरन्त ही पर्दे को एक ओर हटा दिया और विप्रदास त
से उठ खड़े हुए। एक स्त्री कमरे में आई। अवस्था चालीस से ऊपर है, पर
रूप का ठिकाना नहीं। मुंह पर वैधव्य के दुःख की छाप पड़ी है, यह देखते ह
मालूम हो जाता है। छोटे लड़के की ओर पीठ फेर कर बड़े लड़के के लिए
उन्होंने कहा—'अरे विपिन, सुना है कि इस महीने में एकादशी के विषय में
पत्रे में बड़ी गड़बड़ी है। ऐसा तो कभी हुआ नहीं।'

विप्रदास ने कहा—'ऐसा तो नहीं होना चाहिए माँ।'

'तू तनिक स्मृतिरत्न महाशय को बुलवा ले, देखें वे क्या कहते हैं?'

विप्रदास कुछ हँसकर बोला—'अच्छा, बुलवाता हूँ। परन्तु उनकी राय
से क्या होगा माँ, तुम्हारे कानों में जब यह सूचना एक बार पड़ चुकी है, तो
इन दोनों दिनों में किसी भी दिन तुम तो पानी ग्रहण नहीं करोगी, यह सम
झता हूँ।'

माँ ने हँसकर कहा—'योंही उपवास करते रहने का क्या किसी को चाव
है! परन्तु और मार्ग क्या है? इसे करने में पुण्य नहीं है, और नहीं करने से
लेख नरक है। सुना है बहू कह रही थी कि समाचार पत्र में लिखा है कोई
बड़े पण्डित कलकत्ते में भागवत की बहुत सुन्दर व्याख्या कर रहे हैं। तनिक
पता तो लगा कि क्या वे इस झोंपड़ी को भी पवित्र कर सकेंगे?'

'तुम्हारी आज्ञा है तो पता लगा दूंगा माँ।'

'क्यों, मेरी आज्ञा की क्या आवश्यकता? क्या तुम लोगों को सुनने का
मन नहीं होता? कब कथा हुई थी क्या मालूम!'

विप्रदास ने हँसते हुए कुछ रुककर कहा—'अभी तीन महीने भी नहीं
हुए उसको हुए, माँ।'

माँ ने आश्चर्य से कहा—'केवल तीन महीने! परन्तु तीन महीने क्या
कम होते हैं! जो कुछ भी हो भैया, पर इस बार नहीं कराने से काम नहीं
चलेगा। मेरी दोनों मामियों ने चिट्ठियाँ लिखी हैं, कैलाश मानसरोवर के
लिए इस बार मैं अवश्य जाऊँगी।'

विप्रदास ने हाथ जोड़कर कहा—'दोहाई माँ ! यह आज्ञा मत दो। हम दोनों में से एक यदि साथ नहीं जाता तो मामियों की संरक्षता में तुम्हें तिब्बत नहीं भेज सकूँगा। और सभी हानि मैं सह सकता हूँ, लेकिन माँ को मैं नहीं छोड़ सकता।'

माँ की आँखें भर आईं, बोली—'डर मत, कैलाश-यात्रा में मृत्यु होगी, ऐसा पुण्य तेरी माँ ने नहीं किया है। मैं फिर लौट आऊँगी। लड़कों में तू तो मेरे साथ नहीं जा सकेगा विपिन, तेरे ऊपर ही इतने बड़े परिवार का सारा बोझ है। और पीछे जो लड़का खड़ा हुआ है, उसे साथ लेकर मैं बैकुण्ठ जाने को भी प्रस्तुत नहीं। ब्राह्मण का लड़का होकर सन्ध्या गायत्री तो बहुत पहले ही खत्म कर चुका है, सुना है कलकत्ते में खाने-पीने में भी विचार नहीं करता। इस पर कल उसने क्या किया, सुना है ?' विप्रदास ने भोले आदमी के समान कहा—'और क्या किया इसने ? नहीं मैंने तो कुछ भी नहीं सुना।'

माँ ने कहा—अवश्य सुना है। तेरी आँखों को धोखा देगा, इतनी बुद्धी इस लड़के में नहीं है। लेकिन इसकी कुछ रोकथाम कर। यह हमारा ही खायगा-पहनेगा और हमारे ही रुपये से कलकत्ते से आदमी बुलाकर हमारी ही प्रजा को बिगाड़ने की कोशिश करेगा ! इसका कलकत्ते का खर्च तू बन्द कर दे।'

विप्रदास ने विस्मित होकर कहा—'यह क्या कहती हो माँ, पढ़ाई का खर्च बन्द कर दूँ ! वह पढ़ेगा नहीं ?'

माँ ने पूछा—'क्या आवश्यकता है ? मेरे श्वसुर की पठशाला के लड़कों के दल ने जब आकर कहा कि विदेशी पढ़ाई-लिखाई से देश का सत्यानाश हो रहा है, तब तू बेंत लेकर उन्हें मारने दौड़ा था। और अब तेरा छोटा भाई जब ठीक उन्हीं बातों को कह रहा है, तो इसका कोई विरोध नहीं करेगा ? यह तेरा कैसा विचार है ?'

विप्रदास ने हँसकर कहा—'इसका कारण है माँ। स्कूल में उन्नति न पाने का उलाहना मैं सहन नहीं कर सकता, लेकिन द्विजू के समान एम० ए० उत्तीर्ण करके विलायती शिक्षा के प्रति अपशब्द कहना मुझे बुरा नहीं लगता।'

माँ बोली—'परन्तु मेरे ही रुपयों से मेरी ही प्रजा को उकसाना ! यह

बात कैसे होगी ?'

अब तक द्विजदास चुप था, एक भी बात का उत्तर उसने नहीं दिया। अब उसने कहा—'कल के जुलूस के लिए तुम्हारी जमींदारी का एक पैसा भी मैंने व्यय नहीं किया।'

कमरे में आने के बाद से माँ ने एक बार भी पीछे की ओर नहीं देखा था; इस बार भी नहीं देखा। विप्रदास से ही पूछा—'तो नालायक से पूछ तो सही कि रुपया कहाँ से पाया ? क्या कहीं नौकरी कर रहा है ?'

ठीक इसी समय पर्दे के बाहर आहिस्ता से चूड़ियों की खनखनाहट सुनाई दी। विप्रदास ध्यान से सुनकर बोला—'यही तो इसका उत्तर है, माँ, यदि तुम्हारे घर की बहू रुपये देती है, तो मना कौन करे, तुम्हीं बताओ ?'

माँ को बात स्मरण हो आई। बोली—हाँ, यही बात है। यह काम उस सती का ही है ! बड़े बाप की लड़की है और बाप की जमींदारी से सालाना हजार रुपये पाती है, वह बात तो मैं भूल ही गई। वह अपने योग्य देवर को रुपये दे रही है !' फिर कुछ शान्त होकर बोली—'तेरे ब्याह के लिये जब समधी स्वयं आये, उसी समय मैंने मालिक से कहा था कि राय वंश की कन्या घर में लाने की आवश्यकता नहीं। उन्हीं के घराने के अनाथराय ही ने तो वेलायत में मेम से शादी की थी। वे जो चाहे सो कर सकते हैं। संसार में उनके लिए असम्भव क्या है ?'

विप्रदास हँसकर चुप रह गया। उसे मालूम था कि सती के भाग्य में यह नाता लिखा है। उसके मायके के सम्बन्धियों में किसी अनाथराय ने बंगाली मेम से शादी की थी, यह बात माँ भूल न सकी।

सभी को मौन देखकर उन्होंने फिर कहा—'अच्छा जाने दो। बाबा कैलाशनाथ इस बार याद कर रहे हैं; उनका दर्शन कर आऊँ तब इसका प्रबन्ध करूँगी।' इतना कहकर वह कमरे से बाहर निकल गईं।

विप्रदास ने कहा—'क्यों द्विजू, माँ के साथ जा सकेगा ? जब उनके हृदय में यह बात जम गई है, तो उन्हें रोका जा सकेगा इसकी मुझे आशा नहीं।'

द्विजदास ने उसी दम 'न' करते हुए कहा—'आपको मालूम तो है कि देवी-देवताओं में मेरी श्रद्धा नहीं है। इसके सिवा माँ मेरे साथ स्वर्ग में

भी जाने के लिए प्रस्तुत नहीं हैं, यह तो आप उन्हीं के मुख से सुन चुके हैं।'

विप्रदास झल्लाकर बोला—'हाँ, सुना पण्डित जी। पर तू जावेगा या नहीं, यह कह ?'

'मुझे अभी जाने का अवकाश नहीं।' इतना कहकर दूसरे प्रश्न के सुनने से पहले ही द्विजदास कमरे से बाहर निकल गया।

लम्बी साँस छोड़ते हुए विप्रदास बोला—'तो ऐसी बात है ! देश का कार्य ऐसा है कि माँ की आज्ञा भी नहीं मानी जा सकती।'

यहाँ पर माँ का थोड़ा परिचय दे देना आवश्यक है। वह विप्रदास की सौतेली माँ है। उसकी माँ की मृत्यु के वर्ष भर बाद ही यज्ञेश्वर दयामयी को ब्याह कर अपने घर लाये और उसी दिन से उन्होंने उसका पालन-पोषण किया। वह जन्म की माँ नहीं है, यह बात विप्रदास बड़ी आयु होने तक भी नहीं जान पाया था।

: ३ :

केवल भाभी ही इस घर में द्विजदास का सबसे अधिक आदर करती थीं। उसके सभी प्रकार के बाहरी व्यय के रुपये भी उन्हीं के बक्स से आते थे। सती केवल रिश्ते में ही बड़ी नहीं थी, अवस्था में भी वह कई महीने बड़ी थी। इसीलिए प्रायः वह उसका नाम लेकर पुकारती थी। इसकी शिकायत द्विजदास ने बचपन में कितनी बार माँ से की है, इसका कोई लेखा नहीं।

केवल ग्यारह वर्ष की आयु में सती का बहू के रूप में इस घर में प्रवेश होने के कारण उसके आदर की सीमा नहीं थी। सास हँसकर कहती—'ऐसी बात है ? किन्तु बहू यह तो तुम्हारा अन्याय है—देवर को नाम लेकर बुलाना !'

सती कहती—'अन्याय कैसा, मैं उससे आयु में अधिक बड़ी जो हूँ।

'अधिक बड़ी ! कितनी बड़ी ?'

मैं पैदा हुई बैसाख में और वह भादों में।'

माँ हँसकर कहती—"हाँ, भादों में ही तो, मैं तो भूल ही गई थी। इस पर भी यदि कभी वह शिकायत करने आता है, तो उसके कान मल दूँगी।"

माँ की कचहरी में हारकर द्विजू जब अप्रसन्न हो चला जाता, तो बहू को गोद में समेट कर सास प्यार से कहती—'वह नासमझ लड़का है, इसीलिए नहीं समझता; देवर कहने से बहुत प्रसन्न होता है। कभी-कभी यही कहकर बुला लिया करो, समझ गई बहू ?'

सहमत होते हुए सती ने सिर हिलाकर उत्तर दिया—'अच्छा माँ, कभी-कभी यह कहकर पुकारूँगी।'

उस समय वह बालिका थी और आज वह इतने बड़े घर की गृहणी है। विधवा होने के बाद से सास तो अपने जप तप और धर्म-कर्म में लगी रहती हैं; लेकिन उनका उस दिन का उपदेश आगे चलकर सती के लिए बड़े काम का प्रमाणित हुआ, जैसे आज।

पहले वाले परिच्छेद में वर्णित घटना के पश्चात् लगभग पन्द्रह-सोलह दिन व्यतीत हो गये हैं, सवेरे सती ने देवर के कमरे में प्रवेश करते हुए पुकारा—'देवर !'

हाथ उठाकर रोकते हुए द्विजदास बोला—'बस करो भाभी, अधिक चापलूसी की आवश्यकता नहीं, मैं करूँगा।'

'क्या करोगे, पूछूँ ?'

'तुम जो आज्ञा दोगी, वही। किन्तु यह भैया का बड़ा अन्याय है।'

'अन्याय कैसा है, बताओ तो सही ?'

द्विजदास ने उसी प्रकार क्रोध में कहा—'मैं जानता हूँ। अभी भैया के कमरे के सामने से होकर आ रहा हूँ। भीतर माँ और वह थे, माँ का और तुम्हारा गुप्त आयोजन मेरे कानों में पहुँच गया। उनमें साहस नहीं है कि मुझसे कहें, इसीलिए स्वार्थ-सिद्धि के लिए तुम्हारी सहायता ली गई है। बताओ तो सही, कितना बड़ा अन्याय है !'

सती ने हँसकर कहा—'अन्याय तो नहीं है देवर, वे अच्छी प्रकार जानते हैं कि उनके कहते ही टका-सा उत्तर मिलेगा कि मुझे मरने का अवकाश नहीं है; परन्तु भाभी की आज्ञा होने पर क्या मजाल है कि द्विजू मना कर दे।'

द्विजदास गर्दन हिलाकर बोला—'वहीं मैं दुविधा में पड़ जाता हूँ; इसी कारण उन्हें बल मिल जाता है। परन्तु करना क्या चाहिए ?'

सती ने कहा—'माँ कैलश-दर्शन को जायँगी और तुम्हें साथ जाना होगा।'

थोड़ी देर चुप रहने के पश्चात् द्विजदास बोला—'दो-तीन महीने से कम नहीं लगेंगे। काम की कितनी हानि होगी, यह भी सोचा है।'

यह बात मान कर सती ने कहा—'हानि तो कुछ होगी ही; परन्तु एक नया स्थान भी तो देख आओगे। अपनी ओर से इसे सोलहो आने हानि नहीं कहा जा सकता। प्यारे देवर अब मना मत करना।'

द्विजदास ने कहा—'तुम जब आज्ञा दे रही हो तो मना न करूँगा, साथ साथ चलूँगा ! लेकिन अचानक ही उस दिन भैया से मेरा कलकत्ते पढ़ने का खर्च बन्द करवा देने के लिए माँ ने कहा था···।'

सती ने हँसकर कहा—"देवर, यह तो क्रोध की बात है। परन्तु आज्ञा देने के लिए माँ के अलावा दूसरा कोई है नहीं। यह बात भूलने से भी काम नहीं बनेगा।'

द्विजदास बोला—'भाभी, भूला नहीं हूँ परन्तु उसी दिन से मैंने क्या प्रतिज्ञा की है, मालूम है ? मैं अकेला आदमी हूँ, शादी करने का मौका मुझे कभी मिलेगा नहीं, संयोग भी नहीं आयेगा, इसलिए व्यय साधारण है। आवश्यकता होगी तो लड़के पढ़ाकर पेट पालूँगा, परन्तु इनकी रियासत से कभी एक पैसा भी न लूँगा।'

सती ने फिर हँसकर कहा—'माँगने की आवश्यकता नहीं होगी देवर, स्वयं आकर उपस्थित हो जायगा। मान लो नहीं भी होता है फिर भी तुम्हें लड़के पढ़ाने की आवश्यकता न पड़ेगी। कम-से-कम मेरे जीवित रहते तो नहीं, यह उत्तरदायित्व मेरा है।'

यह भरोसा द्विजदास के दिल में भी पहले से था, पल भर के लिए उसकी पलकें अश्रुपूर्ण हो गईं, परन्तु उस मनोभाव को शीघ्रता से दबाकर उसने पूछा—'इन्होंने कब यात्रा करने का निश्चय किया है ? जब कभी भी क्यों न जायं, आखिर में मुझे साथ चलना ही होगा; परन्तु माँ ने उस दिन स्पष्ट कह दिया था कि मुझ जैसे पापी को लेकर स्वर्ग जाने के लिए भी इच्छुक नहीं हैं।

इसी को भाग्य की ईर्ष्या कहते हैं न ?'

सती ने इस उलहाने का उत्तर न दिया, बल्कि मौन रह गई।

द्विजदास ने कहा—'कुछ भी हो भाभी, तुम्हारी आज्ञा न टालूंगा, उनसे कह देना निश्चिन्त रहें।'

सती ने हँसकर कहा—'मुझे भेजकर ही वे निश्चिन्त हो गये हैं। मकान से निकलते ही तुम्हारे भैया की बोली कान में पड़ी, वह उच्च स्वर से माँ से कह रहे थे—'अब निश्चिन्त होकर यात्रा की तैयारी करो माँ, जिसे दूत बनाया गया है, उसके सामने विवाद चलेगा नहीं। तुम देख लेना नीचा सिर करके वह स्वीकार कर लेगा।'

द्विजदास ने यह सुना तो क्रोध से पल भर चुप रहकर बोला—'अस्वीकार नहीं कर सकूँगा, यही समझकर यदि उन लोगो ने यह उपाय निकाला हो कि स्त्रियों के इस निरर्थक विचार को पूरा करने का साधन मुझे ही बनना पड़ेगा, तो मेरी ओर से तुम भैया से कह देना कि उन लोनों को शर्म आनी चाहिये।

सती ने कहा—'कहने से कोई लाभ नहीं होगा देवर, जमींदार बन कर जो रिआया का खून चूसते हैं उनकी यही नीति है। अपना स्वार्थ सिद्ध करते इन्हें शर्म नहीं लगती। धन के आधे के स्वामी होकर भी जब तुम्हें इनकी रियासत से रुपये लेने में हिचक होती है, तब एक ओर मुझे जैसा दुःख होता है, उसी प्रकार दूसरी ओर मन प्रसन्नता से भर उठता है। मैंने तुम्हारा नाम लेकर माँ को विश्वास दिला दिया है कि उनके जाने में किसी प्रकार बाधा न होगी, तुम साथ जाओगे। यात्रा से कुशलता से लौट आओ देवर, जितनी भी हानि होगी मैं क्षतिपूर्ति करूँगी।'

तख्त से उठकर भाभी के पैर छूकर द्विजदास अपनी जगह जा बैठा।

सती ने कहा—'अब तक तो दूसरों के लिए सिफारिश में समय बीता, अब मेरा भी एक अनुरोध है।'

द्विजदास ने हंसकर पूछा—'तुम्हारा निजि ? लेकिन भाभी, यह मुझसे होगा नहीं।'

सती ने हँसकर कहा—'कोई आश्चर्य की बात नहीं देवर, भय लगता है कहीं सुनकर अस्वीकार न कर दो।'

'अच्छा, कहकर ही देख लो न।'

सती ने कहा—'मेरे एक म्लेच्छ चाचा हैं—अपने नहीं, पिता जी के चचेरे भाई हैं, वह विलायत गये थे। यदि यह सूचना उस समय यहाँ पहुँची होती, तो मेरा इस घर में प्रवेश न हो पाता। शायद इस बात को तुमने माँ के मुँह से सुना होगा।'

'बहुत बार। यहाँ तक कि औसत में प्रति दिन एक बार का लेखा लगाया जाय तो इन पन्द्रह-सोलह वर्षों में कम-से कम पाँच-छः हजार बार।

सती ने हँसकर कहा—'मेरा भी अनुमान ऐसा ही है। चाचा बम्बई में रहते हैं। उनकी एक कन्या वहीं पढ़ती है। अगले वर्ष वह पढ़ाई समाप्त करने के लिए विलायत जायगी। तुम्हें जाकर उसे लाना होगा।'

'बम्बई से ?'

'हाँ! उसने लिखा है कि वह अकेली आ सकती है, परन्तु इतनी दूर अकेली आने के लिए कहने का साहस मुझे नहीं होता।'

'उसे यहाँ पहुँचा देने के लिए वहाँ कोई नहीं है ?'

'नहीं चाचा को अवकाश नहीं मिल सकता।'

द्विजेंदास एकाएक तैयार नहीं हो सका, कुछ सोचने लगा।

सती बोली—'जब मेरी शादी हुई तब वह सात-आठ वर्ष की बच्ची थी, उसके बाद केवल एक बार ही भेंट हुई थी कलकत्ते में, उस समय वह मैट्रिक पास करके आई० ए० में पढ़ रही थी—उस बात को तो कई वर्ष हो गये। मैं बहुत प्यार करती हूँ उसे। देवर यदि कष्ट उठाकर उसे यहाँ ला देते! बुलाने के लिए वह मुझे पत्र लिखती थी, लेकिन अवसर नहीं मिलता था।'

द्विजदास ने पूछा—'परन्तु इसी बीच अवसर कैसे मिल गया ? क्या माँ सहमत हो गई ?'

इस प्रश्न का उत्तर तत्काल न दे सकने के कारण सती के मुँह पर घबराहट आ गई। कुछ रुक कर बोली—माँ से कह दिया है। अभी सम्मति तो नहीं दी है; किन्तु अपनी तीर्थ-यात्रा में इतनी फँसी हैं कि विश्वास है कि मना न करेंगी। इसके अलावा जब स्वयं नहीं रहेंगी, तो सुगमता से मेरे पास वह दो-तीन महीने रह सकती है।'

द्विजदास ने मन ही में जान लिया कि सास की आज्ञा न मिलने पर भी इस अवसर पर वह अपनी प्रवासी बहिन को एक बार अपने पास बुलाना चाहती है ! उसने पूछा—'तुम्हारे चाचा ब्रह्म-समाजी हैं क्या ?'

सती ने उत्तर दिया—'नहीं ।' परन्तु हिन्दू समाज भी उन्हें अपनाने के लिए प्रस्तुत नहीं है । वे असल में कहाँ हैं, शायद इसका पता उन्हें भी नहीं है । इसी प्रकार दिन व्यतीत हो रहे हैं ।'

बहुतेरों की यही दशा है । द्विज मन-ही-मन अप्रसन्न होकर बोला—'मुझे जाने में हिचक नहीं है भाभी । परन्तु मेरा कहना है कि माँ के रहते हुए तुम उसे यहाँ मत बुलाओ । जानती तो हो माँ को, हो सकता है कि खान-पान, छुआ-छूत लेकर ऐसा झंझट खड़ा कर दें कि बहिन के लिए तुम्हें लज्जित होना पड़े । अच्छा तो यह होगा कि हमारे चले जाने के पश्चात् उसे बुलाने की व्यवस्था करो, सभी प्रकार से यही अच्छा रहेगा ।'

यही अच्छी राय है, इसे सती स्वयं जानती थी । किन्तु जब उसने स्वयं पत्र लिखकर आने की प्रार्थना की है, तो अनिश्चित भविष्य की आशा दिलाकर इस समय न आने के लिए कैसे पत्र लिखे, यह बात उसकी समझ में न आई । इससे संकोच और क्लेश क्या कम होता है ? कहने लगी—'अपनी बहन होने के नाते ही नहीं कह रही हूँ देवर, उस बार महीने भर कलकत्ते में उसे अपने पास पाकर भली-भाँति से जान लिया है कि रूप-गुण में वैसी लड़की पृथ्वी पर दुर्लभ है । बाहर से उसका चरित्र कैसा भी क्यों न दीख पड़े, यदि माँ उसे दो दिन भी अपने पास देख लेतीं, तो लड़कियों के विषय में उनका विचार ही बदल जाता । वह कभी उसका अपमान नहीं कर सकेंगी ।'

द्विजदास ने कहा—किन्तु दो दिन ही तो माँ को दिखाना कठिन है भाभी । वे तो देखना ही नहीं चाहेंगी । यह तो ठीक है ।'

सती ने कहा—'किन्तु उसके सौंदर्य पर तो उनकी दृष्टि पड़ेगी ही ? आँख बन्द कर माँ इसे अस्वीकार तो नहीं कर सकेंगी ? यह भी तो एक प्रकार का परिचय है ।'

द्विजदास मौन रहा । सती ने कहा—मेरा पक्का विश्वास है कि वन्दना की इस दुनिया में कोई उपेक्षा नहीं कर सकता । माँ भी नहीं कर सकतीं ।'

द्विजदास ने चकित होकर पूछा—'वन्दना' नाम सुना हुआ जान पड़ता है भाभी ! संभव कहीं देखा है, 'ठहरो तो, समाचार पत्र में—एक फोटो भी शायद···।'

बात समाप्त नहीं हुई थी वैसे ही महरी धम-धम करती कमरे में घुसकर बोली—'बहू, तुम यहाँ हो ? तुम्हारे एक चाचा अपनी लड़की लेकर बम्बई से आ पहुँचे हैं। बाहर कोई है नहीं, बड़े बाबू भी नहीं। मैनेजर बाबू ने उन्हें नीचे वाले कमरे में बिठा दिया है।'

घटना अचिन्तनीय है। 'अरे, क्या कहती है ?' कहते हुए सती तूफानी चाल से कमरे से बाहर निकल गई। द्विजदास पीछे-पीछे गया।

: ४ :

पूरी साहबी पोशाक में कुर्सी पर बैठे हुए अधेड़ पुरुष और बीस-इक्कीस वर्ष की कन्या उन्हीं की बगल में खड़ी दीवार पर टँगे जगद्धात्री देवी के एक सुन्दर चित्र को बड़े ध्यान से देख रही थी। सोलहो आने उसकी पोशाक मेमों की तरह न भी हो, परन्तु वह सहसा बङ्गाली कन्या भी दीख न पड़ती थी। खासकर शरीर का रंग सफेदी लिए हुए इतना गोरा, वदन की बनावटी सुडौल और मुंह पर अनोखा रूप। अभी सती जो गर्वपूर्वक देवर से कह रही थी कि उसका रूप तो सास की दृष्टि में पड़ेगा ही, वास्तव में यह बात सही है। बहिन की सुन्दरता पर गर्व किया जा सकता है।

कमरे में जाकर सती ने प्रणाम करके कहा—'मझले चाचा, बहुत दिनों बाद बेटी के यहाँ आये ?'

वे उठे और सती के सिर पर हाथ रखा, और हँसकर बोले—'बेटी, कब चाचा को बुलाया था, जो नहीं आया ? कभी आने के लिए कहा भी है ? जब स्वयं आ पहुँचा तो अब कह रही हो कि चाचा का आना अब हुआ !' द्विजदास को देखकर पूछा—'कौन हैं ये ?'

पीछे की ओर देखकर सती ने कहा—मेरे देवर द्विजू हैं ये।'

दूर से ही द्विजदास ने नमस्कार किया। बड़ी बहिन को प्रणाम करके वन्दना हँसकर बोली—'हाँ, तो वह आप ही हैं, जिनके उत्पात से जमींदारी से हाथ धोने की नौबत आ रही है। ये ही कुटुम्ब और गोत्र की परवाह न करने वाले बड़े स्वराजी हैं ?'

'मैंने ऐसी बात तुझे कब लिखी ?'

'अभी उसी दिन तो, इसी के बीच भूल गई ?' सती ने सिर हिला कर कहा—'ये बातें मैंने नहीं लिखी हैं, तुझे याद नहीं है।'

इतनी देर तक द्विजदास एक प्रकार की हिचक के कारण लजाया हुआ था। अपरिचित युवती के सामने क्या करना चाहिए, क्या कहना ठीक होता है, कुछ भी नहीं कह पा रहा था। इसके पहले कभी ऐसा अवसर नहीं आया था, आवश्यकता भी नहीं पड़ी थी। किन्तु नवागता युवती की अचम्भित करने वाली स्वच्छन्दता से उसे मानो एक नई शिक्षा मिल गई। उसकी अकारण और अशोभन जड़ता पल भर में दूर हो गई। उसे एक स्वच्छ आनन्द का स्वाद मिला। कन्याओं को भी शिक्षा और स्वाधीनता की आवश्यकता तो है, इसे बुद्धि से वह सदा स्वीकार करता था और माँ तथा बड़े भैया से तर्क छिड़ जाने पर वह यही तर्क पेश करता था कि नारी होने पर वह पुरुष है; शिक्षा स्वतन्त्रता में उनका भी पूरा अधिकार है। मूर्ख बनाकर तुम्हें घरों में बन्द रखना अन्याय है। परन्तु आज इस अतिथि तरुणी के अचानक परिचय से उसने पल भर में पहली बार अनुभव किया कि उन साधारण अधिकारों के तर्क के अलावा सबसे बड़ी बात यह है कि पुरुष के चरम और परम प्रयोजन के लिए भी नारी को शिक्षा और स्वाधीनता की आवश्यकता है। उसे वंचित करके पुरुष कहाँ तक अपने को वंचित कर रहा है, इस सत्य को इतने स्पष्ट रूप में इससे पहले उसने कभी नहीं देखा था। तरुणी को पुकार कर उसने हँसते हुए कहा—'बात तो आपकी ही ठीक है; भाभी भूल गई हैं। किन्तु इसके लिए विवाद से कुछ लाभ नहीं।' इतना कह बनावटी गम्भीरता से बोला—'भाभी, तुम्हारी ही शक्ति मेरी शक्ति है और तुम्हारे ही पत्र में इस प्रकार की बातें ! ठीक है। तुम लोग मुझे छोड़ दो और मैं भी अपने कुछ हकों को छोड़ रहा हूँ। तुम्हारी जमींदारी सदैव बनी रहे। एक बार

खुलकर आज्ञा दो, आज ही वकील बुलाकर सब लिखा-पढ़ी करवा देता हूं। यही गवाह रहें। देखना कि मैं कर सकता हूं या नहीं!'

साहब ने कहा—'तेरे देवर बड़े स्वराजी हैं न सती?'

'हां, बड़े स्वराजी हैं।'

'तेरे कहने से ही लिख-पढ़कर जमींदारी का भाग भी त्याग देना चाहते हैं?'

सती ने सिर हिलाकर कहा—'वह बड़ी सरलता से कर सकते हैं। उनके लिए कुछ भी कठिन नहीं।'

वन्दना ने पूछा—'क्या सच कह रहे हैं? सदैव के लिए सर्वस्व त्याग सकते हैं?'

पल भर उसके मुंह की ओर देखकर द्विजदास बोला—'सचमुच ही त्याग सकता हूं। उसमें मेरा रत्तीमात्र भी लोभ नहीं है। देश के पच्चानवे प्रतिशत लोगों को एक समय भी भरपेट खाना नहीं मिलता—प्रातः से सन्ध्या तक परिश्रम करने पर भी नहीं—और बिना हाथ-पैर डुलाये ही मेरे लिए मेवे-पकवानों का प्रबन्ध है। पाप का यह दाना मुझे नहीं भाता। गले में अटक-सा जाना चाहता है। मेरी ऐसी रियासत का चला जाना ही ठीक है। फिर देश के और आदमियों के समान कमा-खाकर जीवन व्यतीत करूंगा। मिल जाय अच्छी बात है, न मिले तो उन्हीं के साथ भूखे रहकर मृत्यु हो जाने पर किसी दिन स्वर्ग में भी जा सकूंगा, परन्तु इस पथ पर चलने से उसकी आशा कदापि नहीं है।'

वन्दना सुन रही थी। बात समाप्त होने पर और नहीं बोली।

सती की व्याकुलता मानो दूर हुई। जैसे देवर को इसके अलावा कहने को कुछ शेष नहीं। कहते-कहते याद-सी हो आई, वह बोली—'भाषण फिर देना देवर, अवसर मिलेगा। अभी तक शायद मझले चाचा ने हाथ मुंह भी नहीं धोया—वन्दना, चल ऊपर जाकर कपड़े बदल डाल।'

साहब ने पूछा—'दामाद तो दिखाई नहीं दे रहे हैं?'

सती ने कहा—'वह प्रातः एक आवश्यक कार्य से बाहर गये हैं, शायद लौटने में देरी होगी।'

वन्दना ने पूछा—'मझली दीदी, तुम्हारी सास

ही में हैं न?'

सती ने कहा—'अभी तो हैं, परन्तु

यात्रा करने जायँगी। सवेरे पूजा-पाठ

सकोगी।'

वन्दना ने पूछा—'वह

सती ने कहा—'हाँ।'

'ऐसा सुना है

देखतीं। क्या सच

'सच ही

वन्द

हैं न

उठाकर बोले—

किया है। यदि

टते समय तुम्हें

वह फिर कुछ

क तुम सती के

क रहेगा न?'

पूछ लूं।'

हो सकती है।'

'समाचार-पत्र नहीं पढ़ती!'

'नहीं, समाचार पढ़ने की धीरता मुझमें नहीं है। सन्ध्या समय पिताजी से कहानियाँ सुनती हूँ, मेरी भूख उसी से मिट जाती है।'

'आश्चर्य की बात है! मैं समझता था कि आप बहुत अधिक पढ़ती हैं।'

वन्दना ने कहा—मेरे विषय में कुछ भी बिना जाने इस प्रकार क्यों सोचते हैं? यह तो घोर अन्याय है।'

द्विजू लज्जित हो रहा था, वन्दना हँसकर कहने लगी—'आप लोगों में से किसने कितना देशोद्धार किया, और उससे अङ्गरेज के नेत्र कितने लाल हो गये, इसमें मेरी दिलचस्पी नहीं है। पिताजी को उधर देखिए न समाचार-पत्र में एकदम बिलकुल घुल गये हैं—बाहरी बातों का ध्यान ही नहीं।'

सम्भव है साहब के कानों में बिटिया का 'पिताजी' शब्द ही प्रविष्ट हुआ था, परन्तु नेत्र ऊपर उठाने का अवसर नहीं मिला, बोले—जरा शान्ति रखो—बोलता हूँ—बस इसका उत्तर तो मैं खोज ही रहा था।'

सिर हिलाकर मुस्कराते हुए बेटी ने कहा—'तुम खोज-खाजकर दिन भर

पढ़ो पिताजी, मुझे कुछ भी जल्दी नहीं है।' द्विजदास को लक्ष्य करके बोली—'मझली दीदी से मालूम हुआ था कि आपका बहुत बड़ा पुस्तकालय है, वहीं चलिए, देखूँ आपके संग्रह में कितने ग्रन्थ हैं।'

'चलिए न।'

पुस्तकालय दोतल्ले पर था। जीना काफी चौड़ा था। द्विजदास चढ़ते हुए बोला—'पुस्तकालय काफी बड़ा है, परन्तु मेरा नहीं भैया का है। मैं केवल कौन-सी पुस्तक कहाँ प्रकाशित हुई इसका पता लगाता हूँ और आज्ञा के अनुसार मोल ले आता हूँ।'

'किन्तु आप पढ़ते तो हैं?'

'बस, नहीं के बराबर पढ़ता हूँ, जिनका पुस्तकालय है, वे स्वयं ही पढ़ते हैं। आश्चर्यजनक शक्ति और उसी प्रकार अनोखी स्मरणशक्ति है उनकी।'

'कौन? बड़े भैया?'

'हाँ. विश्वविद्यालय की कोई विशेष डिग्री-विग्री उन्होंने नहीं पाई है, यह सच है। किन्तु इतना भव्य पाण्डित्य कदाचित् इस देश के इने-गिने लोगों में ही हो, संभव है न भी हो। वह आपके बहनोई हैं, उन्हें कभी नहीं देखा है आपने?'

'नहीं देखने में कैसे हैं वे?'

'एकदम मेरे उल्टे—जैसे दिन और रात्रि। मेरा रंग काला है, उनका रंग सोने के समान है। उनकी शारीरिक शक्ति इस इलाके में पुलिन्द है। लाठी, तलवार और बन्दूक चलाने में इधर उनकी जोड़ का कोई है नहीं। केवल अकेली माँ को छोड़कर उनके मुंह की ओर देखकर बातें करने का किसी का साहस नहीं होता।'

वन्दना ने हँसकर कहा—'क्या मेरी मझली दीदी का भी नहीं!'

द्विजदास ने कहा—'नहीं। आपकी मझली दीदी का भी नहीं।'

'बड़े गुस्सेवर हैं क्या...!'

'नहीं, ऐसे नहीं। अंग्रेजी में जो ऐरिस्टोक्रेट नामक एक शब्द है, भैया कदाचित् किसी जन्म में उन्हीं के राजा थे। कम-से-कम मेरा विचार ऐसा ही है।'

'गुस्सेवर हैं या नहीं, कभी आपने पूछा था ?'

'किसी प्रकार क्रोध करने का अवसर ही उन्हें कहाँ रहता है।'

वन्दना ने कहा—'आप भैया के बड़े भक्त हैं न ?'

द्विजदास मौन रहा। कुछ देर के बाद बोला—'इसका उत्तर देना कभी संभव हुआ तो किसी और दिन आपको दूंगा।'

विस्मय से वन्दना ने कहा—'इसका मतलब क्या ?'

द्विजदास ने थोड़ा हँसकर कहा—'यदि मतलब बतला दूँ तो फिर दोबारा बतलाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। आज के लिए रहने दें।'

शानदार पुस्तकालय है। जिस प्रकार मूल्यवान आलमारियाँ, मेज कुर्सियाँ और दूसरे सामान हैं, उसी प्रकार उसे अच्छे ढंग से सजाया भी गया है। गाँव में इतना बड़ा प्रबन्ध देखकर वन्दना को आश्चर्य हुआ। इसकी कमी बम्बई शहर में नहीं है। उसकी तुलना में शायद यह उतना बड़ा भी नहीं है। पर गाँव में रहते हुए किसी आदमी का केवल अपने ही लिए इतना बड़ा ग्रह सचमुच आश्चर्य की बात है। उसने पूछा—'क्या जीजा जी सचमुच ी पुस्तक पढ़ते हैं ?'

द्विजदास ने कहा—'पढ़ी हैं और पढ़ते भी हैं। आलमारियाँ बन्द नहीं हैं; किसी भी पुस्तक को खोलकर देखिए, उनके पढ़ने का निशान आपको दिखाई देगा।'

'इतना समय मिलता कब है ? क्या दिन-रात यही किया करते हैं ?'

सिर हिलाकर द्विजू ने बोला—'नहीं। कम-से-कम मुझे नहीं मालूम। इसके सिवा हमारी रियासत उतनी बड़ी न होने पर भी बहुत छोटी भी नहीं है, उसमें कहाँ क्या है और क्या हो रहा है, सभी भैया की दृष्टि के सामने है। यह आज की बात नहीं है। पिता जी के समय से यही व्यवस्था चली आ रही है। समय कैसे मिलता है, इसका भेद मुझे भी अच्छी प्रकार नहीं मालूम। आपही की भाँति मुझे भी कुछ कम आश्चर्य नहीं है। किन्तु यह सोचा करता हूँ कि दुनिया में कुछ ऐसे आदमी भी पैदा होते हैं, जिनकी गिनती मामूली लोगों में नहीं की जा सकती। उसी प्रकार के आदमी हैं। शायद हमारी तरह उन्हें कष्ट उठाकर पढ़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती, छपे अक्षर

नेत्रों के अन्दर जाकर दिमाग में घुस जाते हैं। किन्तु भैया की बातें अभी रहने दें। उन्हें कभी अपनी आँखों से आपने देखा नहीं। मेरे मुख से उनकी आलोचना बढ़ा चढ़ाकर कही गई मानी जा सकती है।'

किन्तु सुनने में मुझे बहुत ही भला लग रहा है।'

'परन्तु भला लगना ही तो सब कुछ नहीं है। संसार में हम और दूसरे बहुतेरे मामूली आदमी भी तो हैं। यदि एक खास आदमी ही सारा स्थान घेर-कर बैठ जाता है, तो हम कहाँ जायँ ? केवल मुँह दूसरों का यशगान करने के लिए ही तो भगवान् ने नहीं बनाया ?'

वन्दना ने हँसकर कहा—'मतलब बड़े भैया की बात छोड़कर अब छोटे भैया का थोड़ा यशगान करना चाहते हैं—यही बात है न ?'

द्विजू हँसकर बोला—'चाहता अवश्य हूँ, किन्तु अवसर कहाँ मिलता है ? जो परिचित हैं वे तो कान ही नहीं देंगे, अपरिचितों के सामने ही थोड़ा गुन-गुनाया जा सकता है। किन्तु साहस नहीं होता, भय लगता है। आदत न होने से अपनी बड़ाई अपने ही मुख से शायद धाराप्रवाह नहीं होगी।'

वन्दना ने कहा—'धारा रुक भी नहीं सकती प्रयत्न तो कीजिए। मेरा विचार है मनुष्य इस विद्या में निपुण है। अब विलम्ब न करें, शुरू कीजिए।'

सिर हिलाकर द्विजू ने कहा—'नहीं, यह मुझसे नहीं हो सकेगा। इससे अच्छा होगा कि आप निराले स्थान में बैठकर दो-चार किताबें देखें, मैं भाभी को भेज रहा हूँ।' इतना कह द्विजदास के जाने के लिए तैयार होते ही वन्दना ने तेज आवाज से कहा—'वाह ! खूब ! नहीं, मुझे अकेली न छोड़ जाना। किताबें मैं काफी पढ़ चुकी हूँ, इसकी आवश्यकता नहीं। आप कहानी सुनावें और मैं सुनूँ ?'

'कौन कहानी ?'

'अपनी स्वयं की।'

'तो थोड़ा धीरज धरिए, मैं अभी नीचे जाकर बहुत अच्छी वक्ता को भेज रहा हूँ।'

वन्दना ने कहा—'मझली दीदी को ही भेजिएगा न ? उसकी आवश्यकता नहीं है। उन्हें जो कुछ बोलना था, वह पत्रों में ही समाप्त हो गया। जो

'गुस्सेवर हैं या नहीं, कभी आपने पूछा था ?'

'किसी प्रकार क्रोध करने का अवसर ही उन्हें कहाँ रहता है।'

वन्दना ने कहा—'आप भैया के बड़े भक्त हैं न ?'

द्विजदास मौन रहा। कुछ देर के बाद बोला—'इसका उत्तर देना कभी संभव हुआ तो किसी और दिन आपको दूंगा।'

विस्मय से वन्दना ने कहा—'इसका मतलब क्या ?'

द्विजदास ने थोड़ा हँसकर कहा—'यदि मतलब बतला दूं तो फिर दोबारा बतलाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। आज के लिए रहने दें।'

शानदार पुस्तकालय है। जिस प्रकार मूल्यवान आलमारियाँ, मेज कुर्सियाँ और दूसरे सामान हैं, उसी प्रकार उसे अच्छे ढंग से सजाया भी गया है। गाँव में इतना बड़ा प्रबन्ध देखकर वन्दना को आश्चर्य हुआ। इसकी कमी बम्बई शहर में नहीं है। उसकी तुलना में शायद यह उतना बड़ा भी नहीं है। पर गाँव में रहते हुए किसी आदमी का केवल अपने ही लिए इतना बड़ा संग्रह सचमुच आश्चर्य की बात है। उसने पूछा—'क्या जीजा जी सचमुच पुस्तक पढ़ते हैं ?'

द्विजदास ने कहा—'पढ़ी हैं और पढ़ते भी हैं। आलमारियाँ बन्द नहीं हैं; किसी भी पुस्तक को खोलकर देखिए, उनके पढ़ने का निशान आपको दिखाई देगा।'

'इतना समय मिलता कब है ? क्या दिन-रात यही किया करते हैं ?'

सिर हिलाकर द्विजू ने बोला—'नहीं। कम-से-कम मुझे नहीं मालूम। इसके सिवा हमारी रियासत उतनी बड़ी न होने पर भी बहुत छोटी भी नहीं है, उसमें कहाँ क्या है और क्या हो रहा है, सभी भैया की दृष्टि के सामने है। यह आज की बात नहीं है। पिता जी के समय से यही व्यवस्था चली आ रही है। समय कैसे मिलता है, इसका भेद मुझे भी अच्छी प्रकार नहीं मालूम। आपही की भाँति मुझे भी कुछ कम आश्चर्य नहीं है। किन्तु यह सोचा करता हूँ कि दुनिया में कुछ ऐसे आदमी भी पैदा होते हैं, जिनकी गिनती मामूली लोगों में नहीं की जा सकती। उसी प्रकार के आदमी हैं। शायद हमारी तरह उन्हें कष्ट उठाकर पढ़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती, छपे अक्षर

नेत्रों के अन्दर जाकर दिमाग में घुस जाते हैं। किन्तु भैया की बातें अभी रहने दें। उन्हें कभी अपनी आँखों से आपने देखा नहीं। मेरे मुख से उनकी आलोचना बढ़ा चढ़ाकर कही गई मानी जा सकती है।'

किन्तु सुनने में मुझे बहुत ही भला लग रहा है।'

'परन्तु भला लगना ही तो सब कुछ नहीं है। संसार में हम और दूसरे बहुतेरे मामूली आदमी भी तो हैं। यदि एक खास आदमी ही सारा स्थान घेर-कर बैठ जाता है, तो हम कहाँ जायँ ? केवल मुँह दूसरों का यशगान करने के लिए ही तो भगवान् ने नहीं बनाया ?'

वन्दना ने हँसकर कहा—'मतलब बड़े भैया की बात छोड़कर अब छोटे भैया का थोड़ा यशगान करना चाहते हैं—यही बात है न ?'

द्विजू हँसकर बोला—'चाहता अवश्य हूँ, किन्तु अवसर कहाँ मिलता है ? जो परिचित हैं वे तो कान ही नहीं देंगे, अपरिचितों के सामने ही थोड़ा गुन-गुनाया जा सकता है। किन्तु साहस नहीं होता, भय लगता है। आदत न होने से अपनी बड़ाई अपने ही मुख से शायद धाराप्रवाह नहीं होगी।'

वन्दना ने कहा—'धारा रुक भी नहीं सकती प्रयत्न तो कीजिए। मेरा विचार है मनुष्य इस विद्या में निपुण है। अब विलम्ब न करें, शुरू कीजिए।'

सिर हिलाकर द्विजू ने कहा—'नहीं, यह मुझसे नहीं हो सकेगा। इससे अच्छा होगा कि आप निराले स्थान में बैठकर दो-चार किताबें देखें, मैं भाभी को भेज रहा हूँ।' इतना कह द्विजदास के जाने के लिए तैयार होते ही वन्दना ने तेज आवाज से कहा—'वाह ! खूब ! नहीं, मुझे अकेली न छोड़ जाना। किताबें मैं काफी पढ़ चुकी हूँ, इसकी आवश्यकता नहीं। आप कहानी सुनावें और मैं सुनूं ?'

'कौन कहानी ?'

'अपनी स्वयं की।'

'तो थोड़ा धीरज धरिए, मैं अभी नीचे जाकर बहुत अच्छी वक्ता को भेज रहा हूँ।'

वन्दना ने कहा—'मझली दीदी को ही भेजिएगा न ? उनकी आवश्यकता नहीं हैं। उन्हें जो कुछ बोलना था, वह पत्रों में ही

कुछ वे लिखती थीं सच था या नहीं, अब तो यही सुनने की इच्छा है।'

द्विजदास ने कहा—'सच नहीं था। कम-से-कम बारह आने झूठ था। हाँ, क्या आप जल्द ही विलायत जा रही हैं?'

वन्दना जान गई, यह आदमी अपने प्रसंग की आलोचना नहीं करना चाहता और हठ करने की धृष्टता दिखाना उचित न होगा। कहने लगी—'पिताजी की इच्छा यही है। स्कूल की पढ़ाई वह वहीं समाप्त करने को कहते हैं। आप भी चलिए न?'

द्विजदास ने कहा—'मुझे इन्कार नहीं है, पर रुपये कहाँ पायेंगे? वहाँ लड़के पढ़ाने से काम नहीं चल सकता और इतना बड़ा भार भाभी पर नहीं डालना चाहता। यह व्यर्थ की आशा है।'

यह सुनकर वन्दना हँसकर बोली—'द्विजू बाबू, ये बातें तो आपने अप्रसन्नता में कहीं, नहीं तो आप लोगों के पास जो धन है, उससे केवल आप अकेले ही नहीं, चाहें तो गाँव के आधे आदमियों को साथ ले जा सकते हैं। ठीक बात है, प्रबन्ध मैं कर देती हूँ, जाने के लिए आप प्रस्तुत रहें।'

द्विजू ने कहा—'यह प्रबन्ध नहीं होने का। रुपये बहुत हैं किन्तु सब भैया के हैं, मेरे नहीं। मैं उनकी कृपा पर हूँ, यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी।'

फिर हँसने की चेष्टा करती हुई वन्दना बोली—'अत्युक्ति क्या है और कौन-सी है यह मैं भी जानती हूँ किन्तु यह भी क्रोध की बात है। मझली दीदी के पत्र में एक बार पढ़ा था कि जो धन आपने स्वयं नहीं कमाया उसे आप ग्रहण नहीं करना चाहते हैं। यह बात क्या सच नहीं है?'

द्विजदास ने कहा—'यदि सच है भी तो वह अपने-अपने विचार की बात है, क्रोध की नहीं। किन्तु केवल यही कारण नहीं है।'

'और क्या कारण है, सुनूँ तो जरा?'

द्विजदास मौन रहा। वन्दना पल भर में उसके मुख की ओर देखकर धीरे-धीरे बोली—'मुझे स्वभावतः इतना कौतूहल नहीं है और मेरा यह आग्रह विचित्र है—यह मैं जानती हूँ, किन्तु जानने से ही दुनिया के सारे काम पूरे नहीं हो जाते—अभाव मुँह फाड़े खड़े रहते हैं। आपके विषय में इतना सुना है कि जब आप पहले-पहल घर में घुसे, तो मुझे आपके अपरिचित होने का

ध्यान ही नहीं हुआ। इतनी सरलता से आपको पहचान लिया, जैसे बहुत बार देखा हो। मझली दीदी से यह बातें कह सकते हैं और मुझसे नहीं ? चाहे कुछ न भी हो, उनकी भाँति मैं भी तो एक आत्मीय हूँ।'

ये बातें सुनकर द्विजू चुप हो गया और सहसा सारा मामला याद आ जाने से उसके सङ्कोच और आश्चर्य की सीमा न रही। एकदम अपरिचित युवती कुमारी से एकान्त में इस तरह बातचीत करने का यह पहला अवसर था। दीवार पर लगी घड़ी में एक घण्टे से अधिक समय बीत गया। इसी बीच यदि नीचे किसी ने उन्हें खोजा होगा तो इस घर में इसका उत्तर वह क्या देगा यह उसके दिमाग में नहीं आया। संभव है भैया घर लौट आये हों। माँ की पूजा भी समाप्त हो गई हो। अचानक उसका सारा शरीर और मन बेचैन होकर जैसे पल भर में सीढ़ी की ओर दौड़ गया। किन्तु कुछ भी करने में असमर्थ होकर उसी भाँति चुप बैठा रहा।

'बतलाया क्यों नहीं ? बोलिए न ?'

द्विजू चेतन होकर बोला—'यदि बताऊँगा तो पहले आपको ही बताऊँगा; आज तक भाभी से भी नहीं बताया।'

'उसका हिसाब वह स्वयं लगायेंगी। मैं तो बिना सुने···।'

बताना ठीक नहीं है, इसमें द्विजू के मन में शंका नहीं थी; किन्तु आग्रह की उपेक्षा करने की शक्ति भी उसमें नहीं थी।

किंकर्त्तव्यविमूढ़ की तरह एक मिनट देखकर कहने लगा—'बात यह है कि पिता जी वास्तव में मुझे कुछ भी दे नहीं गये।'

वन्दना विस्मित होकर बोली—'नहीं ! यह झूठ बात है। ऐसा नहीं हो सकता।'

उत्तर में द्विजू ने सिर हिलाकर कहा—'अवश्य हो सकता है।'

'किन्तु इसका कारण क्या है ?'

'शायद पिताजी का विचार हो गया था कि मुझे देने से उनका धन नष्ट हो जायगा।'

'इस विचार का कोई असली कारण भी था ?'

'अवश्य था। एक बार मुझे बचाने में उनके बहुत रुपये नष्ट हो गये थे।'

वन्दना को स्मरण हुआ, इस प्रकार का एक इशारा एक बार सती के पत्र में था। पूछा—'क्या पिताजी विल लिख गये हैं ?'

द्विजदास ने कहा—'यह बात भी केवल भैया ही जानते हैं। वह बताते नहीं।'

लम्बी साँस छोड़ते हुए वन्दना बोली—फिर भी संतोष है, मैं सोचती हूँ वह सचमुच विल लिखकर आपको वंचित तो नहीं कर गये हैं।'

द्विजदास ने कहा—'उनकी इच्छा थी, किन्तु जान पड़ता है कि भैया ने ही नहीं होने दिया।'

'आश्चर्य है कि भैया ने नहीं होने दिया।'

द्विजू ने हंसकर कहा—'भैया को जान लेने पर आश्चर्य न होगा। शाम हो गई थी। अभी तक नौकर कमरे में चिराग नहीं जला गया था। मैं पास वाले कमरे में एक किताब खोज रहा था, सहसा पिता जी की बात कान में पड़ी। भैया ने कहा—'नहीं।' पिताजी हट करने लगे—'नहीं क्यों, विप्रदास ? अपने पिता-पितामह की सम्पत्ति मैं नष्ट नहीं होने दूंगा। वैकुण्ठ में रहने पर भी मुझे 'चैन नहीं मिलेगा।' फिर भी भैया ने उत्तर दिया—'नहीं, यह कभी नहीं हो सकता।' पिता जी ने कहा—'फिर भी मैं तुम्हारे ही हाथों में सब कुछ सौंप जाता हूँ। इसके पश्चात् पिता जी दो-तीन वर्ष जीवित रहे; किन्तु मुझे ठीक तौर से मालूम है कि उन्होंने अपनी राय बदली नहीं थी।'

वन्दना ने मधुर स्वर में प्रश्न किया—'क्या इस बात को दूसरा कोई जानता नहीं ?'

'कोई भी नहीं। छिपकर सुन लेने के कारण केवल मैं जानता हूँ।'

बहुत देर तक चुप रहकर अस्फुट स्वर में वन्दना बोली—'सचमुच ही आपके भैया असाधारण मनुष्य हैं।'

शान्त भाव से द्विजदास बोला—'हाँ ! अब मैं नीचे जाऊँ, क्योंकि मुझे बहुत देर हो गई है। आपको जब तक बुलाया न जावे, तब तक बैठकर पढ़िये।'

वन्दना ने हँसकर कहा—'इस समय पुस्तकें पढ़ने को मन नहीं है।

चलिए, मैं भी चलती हूँ। कुछ नहीं तो आठ-दस दिन तो इस घर में रहूँगी ही, पुस्तकें पढ़ने के लिए बहुत समय मिल जावेगा।'

द्विजदास जाने के लिए प्रस्तुत हो गया था; लेकिन ठहरकर पूछा—'पिता जी के साथ आज कलकत्ता नहीं जाओगी ?'

'नहीं। उनके लौट आने पर बम्बई जाऊँगी।'

द्विजदास ने कहा—'नहीं उनके लौट आने पर भी आप यहाँ कुछ दिनों तक और रहें।'

वन्दना ने कहा—'पहले ऐसी ही इच्छा थी, किन्तु अब देखती हूँ इसमें बड़ी कठिनाई है। मुझे पहुँचा देने के लिए कोई है नहीं। यदि आप सहमत हों तो आप ही की बात स्वीकार कर लूँ।

'परन्तु तब तक तो मैं रहूँगा नहीं। इसी सोमवार को माँ के साथ कैलाश की तीर्थ-यात्रा करने चल दूंगा।'

वन्दना के नेत्र आनन्द और उत्साह से चमक उठे—'कैलाश ? कैलाश जायेंगे ? सुना है वह एक बड़े आश्चर्य की चीज है। आप लोगों के साथ और कौन-कौन जा रहे हैं ?'

'अच्छी तरह मालूम नहीं, शायद और कोई जायगा नहीं।'

'मुझे साथ ले चलिएगा ?'

द्विजदास मौन रहा। वन्दना के अभिमान को जैसे चोट-सी लगी। वह खुलकर हंसने की चेष्टा करती हुई बोली—'शायद इसीलिए मुझे यहाँ आकर रहने की अच्छी राय दे रहे हैं ?'

उसकी ओर देखते हुए शान्त भाव से द्विजदास ने कहा—'सचमुच ही इसीलिए यह राय दी है। भाभी ने इतनी बातें लिखी हैं, केवल यही नहीं लिखा कि हमारा यह कितना घोर सनातनी परिवार है ! इसके आचार-विचार की कठोरता की कोई झलक पत्र में नहीं मिली ?'

सिर हिलाकर वन्दना ने कहा—'नहीं !'

'नहीं ? आश्चर्य !' जरा रुककर द्विजदास ने कहा—'केवल मुझे छोड़कर इस घर में आपका छुआ जल पीने वाला व्यक्ति भी कोई नहीं ? भैया ?'

'नहीं ।'

'मझली दीदी ?'

'नहीं, वह भी नहीं । हो सकता है हमारे चले जाने पर दो दिन यहाँ रह ी सकेंगी, किन्तु माँ के रहते हुए एक दिन भी आपका इस घर में रहना होगा हीं ।'

वन्दना उदास होकर बोली—'सच कह रहे हैं ?'

'सच ही कह रहा हूँ ।'

ठीक इसी समय नीचे के जीने से सती के बुलाने का स्वर सुनाई पड़ा, देवर ! वन्दना ! क्या कर रहे हो तुम दोनों जने ?'

'आ रहा हूँ भाभी !' कहकर द्विजदास जल्दी से जाने को तैयार हुआ । न्दना ने कहा—'इन बातों का तो मुझे पता ही नहीं था । धन्यवाद !'

: ६ :

नीचे आकर वन्दना ने देखा कि पिता आनन्दित होकर भोजन करने बैठ गये हैं, उसी बैठक खाने में ही एक छोटी-सी मेज पर चाँदी की थाली में भोजन परोस दिया गया है । एक दीर्घाकृति बहुत ही सुन्दर व्यक्ति पास ही खड़े हैं। उनके शरीर की मजबूत बनावट और अत्यन्त गौर वर्ण देखते ही वन्दना ने समझ लिया कि विप्रदास यही हैं । सती भी साथ ही आ रही थी; किन्तु उसने प्रवेश नहीं किया, द्वार की आड़ में खड़ी होकर प्रणाम करने के लिए संकेत से कहा—'हाँ, यही तो हैं ।'

बङ्गाली कन्या के लिए यह सिखाने की बात नहीं है, और इसके पूर्व माँ को जिस प्रकार भूमिष्ठ होकर उसने प्रणाम किया था, उसी प्रकार बड़े बहनोई को भी करती, किन्तु सहसा मानो उसका मन विद्रोह कर उठा । इनकी असाधारण विद्या और बुद्धि का विवरण द्विजदास के मुख से न सुनने पर शायद इस प्रचलित शिष्टचार का उलंघन करने की बात उसके दिल में न आती; लेकिन इसी परिचय ने उसे कठोर बना दिया । बड़ी बहन की मर्यादा के विचार

से उसने हाथ उठाकर नमस्कार किया, परन्तु उससे अपेक्षा ही अधिक स्पष्ट हो गई। पिता से उसने कहा—'तुम अकेले ही भोजन करने बैठ गये, मुझे क्यों नहीं बुलवा लिया?'

सिर ऊपर उठाकर देखते हुए साहब ने कहा—'मेरी गाड़ी का वक्त जो हो गया है बिटिया; परन्तु तुम्हें तो कोई जल्दी नहीं पड़ी है। मेरे चले जाने के पश्चात् तुम लोग निश्चिन्तता से भोजन कर लोगी।'

आड़ में से सिर हिलाकर सती ने इसका अनुमोदन किया। वन्दना उसे संकेत करके बोली—'मझली दीदी, चाँदी के इतने कीमती बर्तनों को क्यों बर्बाद किया, पिता जी को एलमूनियम या चीनी मिट्टी के बर्तन में भोजन परोसने से ही तो काम चल सकता था।'

साहब का भोजन समाप्त हुआ। वह अत्यन्त सरल प्रकृति के मनुष्य हैं। बेटी की बात का अर्थ रत्ती भर भी नहीं समझा, व्यस्त और लज्जित हो गये—जैसे अपराध उन्हीं का है—'हाँ, ठीक बात तो यही है, इधर तो मेरा ध्यान ही नहीं गया—कहाँ गई सती, डिश में खाना देना चाहिये था मुझे।'

विप्रदास का मुख क्रोध से कठोर और गम्भीर हो गया। उसका इतना बड़ा अपमान करने का साहस आज तक किसी ने नहीं किया, जैसा नवागत आत्मीय की इस कन्या ने। बर्तनों के नष्ट होने की चिन्ता तो केवल बहाना है। वास्तव में यह तो उनके आचारनिष्ठ परिवार के प्रति निर्लज्ज व्यंग है, और बहुत सम्भव है, उसी को लक्ष्य कर, यह चाल किसने चली विप्रदास समझ नहीं सका। परन्तु कोई भी क्यों न चले, इस भले-मानस बूढ़े आदमी को उप-लक्ष्य बनाने की नीचता से उसकी घृणा की सीमा न रही। लेकिन इस मनो-भाव का दमन करके जरा हँसकर कहा—'क्या तुमने अपनी दीदी से नहीं सुना कि यह सनातनी हिन्दू का मकान है? एलमूनियम कहो या चीनी मिट्टी, ये चीजें यहाँ नहीं आ सकतीं।'

वन्दना ने कहा—'लेकिन कीमती बर्तन तो नष्ट हो गये हैं न?'

साहब ने दुःखी होकर कहा—'लेकिन सुना है कि घी लगाकर ज[illegible] देने से ही...।'

इस बात पर विप्रदास ने गौर नहीं किया, जिस प्रका[illegible]

प्रकार वन्दना को ही लक्ष्य करके कहा—'इस घर में चाँदी के बर्तनों की कमी नहीं है, वे किसी विशेष काम में भी नहीं आते। तुम्हारे पिता रिश्ते में मेरे गुरुजन हैं, इस घर के अत्यन्त सम्मानित अतिथि; चाँदी के बर्तनों का कितना भी मूल्य क्यों न हो, उनके मान के सामने वह बिलकुल तुच्छ है। तुम लोगों के आने के उपलक्ष्य में यदि कुछ नष्ट हो जाते हैं तो हो जायँ।' इतना कह तनिक हंसकर बोले—'तुम्हारी दीदी के समान यदि तुम्हारा भी किसी सनातनी कुटुम्ब में व्याह हो तो पिताजी के आने पर मिट्टी की थाली पर भोजन देना, फेंक देने में कोई हिचक नहीं होगी। क्यों, बात ठीक है न वन्दना ?'

'अच्छा, ऐसी बात है तो पिता जी के लिए मैं सोने के बर्तन बनवा कर रख लूंगी।'

विप्रदास ने हँसकर उत्तर दिया—'यह तुमसे होगा नहीं। जो ऐसा कर सकता है, पिता के सम्बन्ध में वह ऐसी बातें मुंह पर नहीं ला सकता। यहाँ तक कि दूसरे का अपमान करने के लिए भी नहीं। जितना प्रेम तुम अपने पिता को करती हो शायद उससे भी अधिक प्रेम एक व्यक्ति अपने चाचा को करता है।'

यह सुनकर साहब के हृदय का बोझ ही नहीं उतर गया, वरन् उनका दिल [आ]नन्द से भर गया। वह बोले—'बेटा, तुम्हारी यह बात बिलकुल सच है। भैया की जब अचानक मृत्यु हो गई, उस समय तो यह बहुत ही छोटी थी। मैं परदेश में नौकरी करता था, हमेशा घर आना सम्भव नहीं था, और आने पर भी सामाजिक अनुशासन के कारण अकेला रहना पड़ता था। परन्तु सती अवसर पाते ही मेरे यहां आ जाती थी।'

वन्दना ने शीघ्रता से रोककर कहा—'इन बातों को रहने दो पिता जी।'

'नहीं-नहीं मुझे सारी बातें याद हैं, ये झूठ नहीं हैं। एक दिन मेरे साथ एक ही थाली में भोजन करने बैठ गई। उसकी मां तो यह देखकर…।'

'आप क्या कहते रहते हैं, पिताजी, कुछ समझ में नहीं आता। कब मझली दीदी तुम्हारे पास…कुछ भी तुम्हें याद नहीं।'

साहब ने प्रतिवाद किया—'वाह ! याद नहीं है, और इसी को लेकर कोई गड़बड़ी न हो, इसीलिए तुम्हारी मां ने उस दिन किस प्रकार डरते

हुए ...।'

वन्दना ने कहा—'पिता जी, आज तुम्हें किसी प्रकार भी गाड़ी नहीं मिल सकती, कितना बजा होगा ?'

साहब ने शीघ्रता से घड़ी निकाली। देखकर निश्चिन्तता की साँस लेकर बोले—'तू तो इसी प्रकार डरा देती है कि व्याकुल हो जाना पड़ता है। अभी बहुत देर है—बड़ी सरलता से गाड़ी मिल जयगी।'

हँसकर समर्थन करते हुए विप्रदास ने कहा—'हाँ, गाड़ी आने में अभी बहुत देर है। आप निश्चित होकर भोजन करें, मैं स्वयं जाकर गाड़ी पर बिठा आऊँगा।' इतना कहकर वह कमरे से बाहर निकल गया।

दरवाजे की आड़ में सती के पास आकर खड़े होते ही वन्दना ने आहिस्ता से पूछा—'मझली दीदी, पिता जी ने क्या कह डाला, सुना है ?

सिर हिलाकर सती ने कहा—'हाँ।'

वन्दना ने कहा—'तुम्हारी सास के कानों में पड़ने पर तुम्हें दुःख उठाना पड़ सकता है। ठीक है न मझली दीदी ?'

सती ने कहा—'तो होने दो। अभी रहने दो, चाचा सुन लेंगे।'

'परन्तु तुम्हारे स्वामी ?—वह भी तो अपने कानों सब कुछ सुन गये हैं, इस अपराध की क्षमा शायद उनके पास भी नहीं है ?'

सती ने हँसकर कहा—'यदि सचमुच अपराध हुआ ही है, तो मैं क्षमा क्यों माँगूं ? इसका निर्णय मैं उन्हीं पर छोड़कर निश्चिन्त हो गई हूँ। यदि यहाँ रही तो अपनी ही आँखों से देख लोगी बताओ तुम्हारे लिए क्या लाई चाचा जी ?'

साहब ने कहा—'बहुत है, बहुत. बेटी मेरा भोजन हो गया, अब और कुछ नहीं चाहिए।' इतना कहकर वह उठ खड़े हुए।

धीरे-धीरे स्टेशन जाने का समय हो आया। नीचे बरामदे [illegible] रे थी। बिस्तरा, बैग इत्यादि एक दूसरी मोटर में रखा दिये। [illegible] र साहब विप्रदास से बातचीत कर रहे थे। इसी समय वन्दना [illegible] ये, होकर पास आ खड़ी हुई और कहने लगी—'पिताजी, [illegible] रों जाऊँगी।'

ता ने आश्चर्यचकित होकर कहा—'इस धूप में स्टेशन जाने से क्या
बिटिया ?'

न्दना ने कहा—'केवल स्टेशन तक ही नहीं, कलकत्ता चलूंगी, और जब
जाओगे तो मैं तुम्हारे ही साथ चली जाऊँगी।'

वेप्रदास ने आश्चर्य चकित होकर कहा—'कहती क्या हो ? तुम कुछ दिनों
होगी, यही तो मैं समझता था।'

वन्दना ने उत्तर में केवल 'ना' भर कहा।

'किन्तु तुमने अभी तक भोजन नहीं किया ?'

'नहीं, आवश्यकता नहीं, कलकत्ता पहुँचकर भोजन करूँगी।'

'तुम जा रही हो, तुम्हारी मझली दीदी को मालूम है न ?'

वन्दना ने कहा—'अभी मालूम नहीं पर मेरे चले जाने पर तो जान
।'

विप्रदास ने कहा—'तुम्हारे बिना खाये इस प्रकार चले जाने से उसे बहुत
 होगा।'

वन्दना ने कहा—'किस बात का क्लेश ? मुझे कुछ निमन्त्रण देकर तो
 नहीं गया था कि मेरे बिना खाये चले जाने से उनका भोजन नष्ट हो
 । वह नासमझ नहीं हैं, समझ लेंगी।' यह कहकर बात वहीं समाप्त
ते हुए वह जल्दी से गाड़ी में जाकर बैठ गई।

मन-ही-मन साहब ने समझ लिया कि कुछ हुआ है, नहीं तो अचानक
ना कारण ही कुछ कर बैठने वाली लड़की नहीं है। वह केवल बोले—'मैं
समझता था कि वह कुछ दिनों तक सती के पास रहेगी। लेकिन जब गाड़ी
आकर बैठ गई, तो उतरेगी नहीं।'

विप्रदास बोले नहीं, चुपचाप मोटर में जाकर बैठ गये।

गाड़ी चल पड़ी। अचानक ऊपर की ओर दृष्टि जाते ही वन्दना ने देखा
 दोतल्ले के लाइब्रेरी वाले कमरे की खिड़की का छड़ थामकर द्विजदास स्तब्ध
ड़ा है। आँखें चार होते ही उसने हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

: ७ :

गाँव से चलकर जब साहब स्टेशन पहुँचे तो मालूम हुआ कि कहीं किसी आकस्मिक दुर्घटना के कारण गाड़ी आज बहुत देर से आवेगी; शायद एक घंटे से अधिक देर लगेगी। परिचित स्टेशन मास्टर के एकाएक बीमार हो जाने के कारण एक मद्रासी कल से उनके स्थान पर काम कर रहा था, वह भी ठीक प्रकार से कुछ बतला नहीं सका, केवल इतना अनुमान लगाया कि देर एक घण्टे की भी हो सकती है और दो घण्टे की भी। साहब की ओर देखकर विप्रदास ने कहा—'कलकत्ता पहुँचने तक रात हो जायगी, आज गये बिना क्या काम चलेगा नहीं ?'

'क्यों नहीं चलेगा ? मुझे तो......।'

वन्दना बीच में बोल पड़ी—'नहीं पिता जी, ऐसा नहीं हो सकता। एक बार घर से आकर अब वापस नहीं जाया जा सकता।'

विप्रदास विनम्र स्वर में बोला—'वापस क्यों नहीं जाया जा सकता वन्दना ? तुम बिना भोजन किये ही चली आई हो, दिन उपवास करके ही बिता देना चाहती हो क्या ?'

वन्दना ने सिर हिलाकर कहा—'मुझे भूख नहीं है। वापस जाने पर भी मुझसे खाया न जा सकेगा।'

साहब मन-ही-मन दुःखी हुए बोले—'इसकी शिक्षा-दीक्षा ही दूसरे ढंग की हुई है। एक बार हठ करने से डिगाया नहीं जा सकता।'

विप्रदास मौन रहा, फिर कुछ कहा नहीं।

× × ×

स्टेशन बड़ा न होने पर भी एक छोटा-सा वेटिंग रूम था वहाँ पहुँचने पर दिखाई पड़ा कि एक कम आयु के बंगाली साहब और उनकी स्त्री ने कमरे पर पहिले से ही अधिकार जमा रखा है। साहब शायद बैरिस्टर हैं या डॉक्टर या विलायत पास प्रोफेसर भी हो सकते हैं। इस इलाके में कहाँ [illegible] पाये हैं, यह भी एक रहस्य की बात है। आरामकुर्सी के दोनों सिरों [illegible] पैरों को फैलाकर अर्द्धसुप्त दशा में लेटे हुए हैं। अचानक लोगों [illegible]

आँखें भर खोलीं—शिष्टता प्रदर्शित करने का प्रयत्न इससे अधिक अग्रसर नहीं हुआ। परन्तु महिला कुर्सी छोड़ शीघ्रता से उठ खड़ी हुई। शायद अभी तक मेमसाहिबा नहीं बन पाई थी। लेकिन ऊँची एड़ी वाले जूते और पोशाक की तड़क-भड़क देखकर जान पड़ता था कि इस दिशा में चेष्टा की कमी नहीं होने पाई।

कमरे में एक आरामकुर्सी और भी थी, वन्दना पिता को उस पर बैठाकर स्वयं एक बेंच पर अधिकार कर बैठी, और बहुत आदर से विप्रदास को बुलाकर बोली—'बहनोई जी, आप व्यर्थ खड़े क्यों हैं, मेरे पास ही आकर बैठिये। लकड़ी में दोष नहीं है, आपकी जात चली न जायगी।'

यह सुनकर वन्दना के पिता जरा हँसकर बोले—'विप्रदास क्या छुआ-छूत आचार-विचार बहुत अधिक मानते हैं?'

विप्रदास ने स्वयं भी हँसकर कहा—'आचार-विचार है, किन्तु क्या होने से अधिक होता है, यह बिना जाने इस प्रश्न का उत्तर कैसे दूं?'

वृद्ध ने कहा—'अभी जो वन्दना ने कहा—वही ले लो।'

विप्रदास ने कहा—'बिना भोजन किये बहुत क्रोध में है। स्त्रियाँ क्रोध में जो कुछ करती हैं, उस पर तर्क नहीं हो सकता।'

वन्दना ने कहा—'मैं क्रोध में नहीं हूँ, रत्ती भर भी क्रोध मुझे नहीं हुआ।'

विप्रदास ने कहा—'हो, और अत्यधिक क्रोध में हो। वरना आज कलकत्ते न जाकर तुम घर वापिस चली जातीं। इसके अलावा तुम्हें स्वयं ही याद पड़ जाती कि अभी-अभी हम एक गाड़ी में आये हैं। जात जानी थी इसलिए वह पहले ही चली गई। बेंच पर बैठने की बात केवल तुम्हारा बहाना ही है।'

वन्दना ने कहा—'बहाना है तो होने दीजिए, किन्तु सच बोलिए मुखोपाध्याय महाशय! हम लोगों को छूने-छाने के कारण से वापस जाकर फिर आपको नहाना तो न पड़ेगा?'

'चलिए न, अपनी आँखों से ही घर जाकर देख लेना।'

'नहीं। आप जानते हैं। माँ को प्रणाम करके गई तो वह छू जाने के भय से पीछे हट गई थीं!' इतना कहते हुए उसका मुँह क्रोध और शर्म से लाल हो गया।

यह विप्रदास ने देखा। उत्तर में शान्त भाव से बोला—'बात असत्य नहीं है। पर साथ ही सत्य भी नहीं है। इसका मुख्य कारण उनके पास रहे बिना तुम समझ न पाओगी। लेकिन इसकी आशा तो नहीं है।"

'हाँ, नहीं है।'

इस तीव्र अस्वीकृति का कारण इतनी देर के बाद विप्रदास के सामने स्पष्ट हो गया। मन-ही-मन उसके व्याकुलता की सीमा न रही। व्याकुलता कई कारणों से हुई। विमाता के विषय में बात आंशिक रूप में सत्य ही है और वह स्वयं भी मानो इससे कुछ-कुछ सम्बन्धित है। परन्तु समझने का अवसर भी नहीं है. और न समय ही है। दूसरी ओर शान्त चित्त से समझने की मनोवृत्ति का एकदम अभाव है। इसलिए चुप रहने के अलावा कोई रास्ता नहीं था—विप्रदास बिलकुल चुप रहा।

पैरों को नीचे करके साहब ने जँभाई लेते हुए पूछा—'आप ही जमींदार विप्रदास बाबू हैं न?'

'हाँ, मैं ही हूँ।'

'मैंने आपका नाम सुना है। पास वाले गाँव में मेरी पत्नी का ननिहाल है, बेंगाल में जब आना ही हुआ तो उनका मन था कि एक बार भेंट करती जायँ। इसी कारण चला आया। मैं पंजाब में प्रैक्टिस कर रहा हूँ।'

विप्रदास ने देखा कि यह आदमी उसी की आयु का है, एक आध साल का हेर-फेर हो सकता है, इससे अधिक नहीं।

साहब बोलने लगे—'कल ही आपके विषय में बातें हो रही थीं। लोग कहते हैं कि बड़े भयङ्कर, यानी बहुत बड़े जमींदार हैं। हाँ, दो-चार ब्राह्मण-पण्डितों ने कट्टर हिन्दू होने के कारण बहुत प्रशंसा की। अब देखता हूँ कि बात झूठ नहीं है।'

अपरिचित की इस आलोचना से वन्दना और उसके पिता दोनों को आश्चर्य हुआ, परन्तु विप्रदास ने कोई उत्तर नहीं दिया। शायद वह इतना उदास था कि ये बातें उसके कानों में नहीं पहुँच पाईं।

वह फिर कहने लगे—'अपने भाषणों में अक्सर कहा करता हूँ कि रियल (वास्तविक) सॉलिड (ठोस) शिक्षा चाहिए। धोखेबाजी, ठगी

एक बार यूरोप घूम आना चाहिए। वहाँ की जलवायु, वहाँ की फ्री एयर (मुक्त वायु) में साँस लिये बिना हृदय में फ्रीडम (स्वतन्त्रता) नहीं आती। बुरे संस्कारों से मन मुक्त नहीं हो सकता। मैं पूरे पाँच वर्ष तक उस देश में रहा हूँ।'

वन्दना के पिता अन्तिम बात से प्रसन्न होकर बोले—'यह बात सत्य है।' उत्साह पाकर वह जोश में आकर बोले—'इस डेमोक्रेसी (जनतन्त्र) के युग में सभी समान हैं, किसी से कोई छोटा नहीं, सभी को अपने अधिकार को एसर्ट (माँग) करना चाहिए, कनसीकेंस (परिणाम) कुछ भी क्यों न हो। मेरे पास रुपये होते तो मैं आपकी रियासत की सारी प्रजा को अपने व्यय से यूरोप की यात्रा करा लाता। अपने राइट (हक) किसे कहते हैं, इस बात को तब वे स्वयं ही समझ जाते।'

शायद ये बातें वन्दना को बहुत बुरी लगीं, उसने धीरे से कहा—'बहनोई जी अपनी प्रजा पर अत्याचार करते हैं इसकी सूचना आपको किसने दी? आशा करती हूँ कि आपके ममिया ससुर पर कोई अत्याचार नहीं हुआ है?'

'अच्छा, शायद वह आपके बहनोई हैं? थैंक्स (धन्यवाद) नहीं, उन्होंने कोई शिकायत नहीं की।' अपनी पत्नी को लक्ष्य करके सहास्य बोले—'यदि [illegible]री बहनें इस प्रकार की होतीं! शायद आप विलायत हो आई हैं? नहीं [illegible] हैं? जायें, अवश्य जायें, फ्रीडम (स्वतन्त्रता) साहस, शक्ति, किसे कहते हैं, उस देश की युवतियाँ वास्तव में क्या हैं, एक बार अपनी आँखों से देख आयें। मैंने नेक्स्ट टाइम (अगली बार) इन्हें भी ले जाना निश्चय किया है।'

किसी के कुछ बोलने के पूर्व ही स्टेशन के उस एवजी वाले स्टेशन मास्टर ने गर्दन उठाकर कहा कि ट्रेन डिस्टैन्ट सिगनल पार कर चुकी है, वह आ ही रही है। शीघ्रता से सभी प्लेटफार्म पर आ डटे।

ट्रेन खड़ी होने पर देखा गया कि अवकाश के कारण यात्रियों की असंख्य भीड़ है। कुछ भी जगह पाना मुश्किल है। फर्स्ट और सैकेण्ड क्लास के केवल एक-एक डिब्बे हैं, सैकेण्ड क्लास पर पूरी तरह कब्जा करके अङ्गरेज रेलवे-सरवेण्टों का एक दल किसी खेल के लिए कलकत्ते जा रहा है, और शायद उन्हीं में से कई स्थान के अभाव के कारण फर्स्ट क्लास में जा घुसे हैं। शराब और

विषय से चूर होने के कारण इनका चेहरा जैसा भयानक था, व्यवहार भी उतना ही उद्दण्ड। सभी ने डब्बे के फाटकों को रोककर जोरों से चिल्लाकर कहा—'गो—जाओ-जाओ, जगह नहीं है!'

स्टेशन मास्टर आया, गार्ड आया, उन लोगों ने किसी की बात की ओर भी ध्यान नहीं दिया।

साहब ने कहा—'क्या करना चाहिए?'

डरते हुए वन्दना ने कहा—'चलिए, आज घर लौट चलें।'

विप्रदास ने कहा—'नहीं।'

'नहीं तो फिर? नहीं तो रात की ट्रेन से···।'

नये साहब ने कहा—'इसके अलावा और रास्ता ही क्या है। कष्ट होगा, होने दो।'

विप्रदास सिर हिलाकर बोला—'नहीं, ट्रेन में चार-पाँच आदमी हैं, चार-पाँच के लिए और स्थान होना चाहिए।'

वन्दना के पिता दुःखी होकर बोले—'चाहिए तो यही, मैं भी यही समझता हूँ, परन्तु वे सभी मतवाले बने हैं।'

विप्रदास की सारी देह जैसे लोहे के समान कड़ी हो गई। बोला—'शौक उनका ही है, हमारा नहीं। चलिए मैं भी सङ्ग चलूंगा।' और पल भर में डब्बे के हैंडल को पकड़कर उसने फाटक ढकेल दिया। वन्दना का हाथ पकड़कर घसीटते हुए कहा—'आओ!' और नये साहब को पुकारकर कहा—राइट एसर्ट (अधिकार की माँग) करना चाहते हैं तो पत्नी को लेकर चढ़ आइए। अत्याचारी जमींदार के साथ रहते भय की बात नहीं।'

मतवाले साहब पल भर इस आदमी की ओर देखकर चुपचाप उधर वाली बेन्च पर जाकर बैठ गये।

: ८ :

बगल वाले डब्बे के सब साहब यात्री शोरगुल सुनकर प्लेटफार्म पर आ खड़े हुए और एक ही साथ रूखे स्वर में प्रश्न किया—'ह्वाट्स मैटर?' (मामला

एक वार यूरोप घूम आना चाहिए। वहाँ की जलवायु, वहाँ की फ्री एयर (मुक्त वायु) में साँस लिये विना हृदय में फ्रीडम (स्वतन्त्रता) नहीं आती। बुरे संस्कारों से मन मुक्त नहीं हो सकता। मैं पूरे पाँच वर्ष तक उस देश में रहा हूँ।'

वन्दना के पिता अन्तिम बात से प्रसन्न होकर बोले—'यह बात सत्य है।' उत्साह पाकर वह जोश में आकर बोले—'इस डेमोक्रेसी (जनतन्त्र) के युग में सभी समान हैं, किसी से कोई छोटा नहीं, सभी को अपने अधिकार को एसर्ट (माँग) करना चाहिए, कनसीकेंस (परिणाम) कुछ भी क्यों न हो। मेरे पास रुपये होते तो मैं आपकी रियासत की सारी प्रजा को अपने व्यय से यूरोप की यात्रा करा लाता। अपने राइट (हक) किसे कहते हैं, इस बात को तब वे स्वयं ही समझ जाते।'

शायद ये बातें वन्दना को बहुत बुरी लगीं, उसने धीरे से कहा—'बहनोई जी अपनी प्रजा पर अत्याचार करते हैं इसकी सूचना आपको किसने दी? आशा करती हूँ कि आपके ममिया ससुर पर कोई अत्याचार नहीं हुआ है?'

'अच्छा, शायद वह आपके बहनोई हैं? थैंक्स (धन्यवाद) नहीं, उन्होंने कोई शिकायत नहीं की।' अपनी पत्नी को लक्ष्य करके सहास्य बोले—'यदि ...री बहनें इस प्रकार की होतीं! शायद आप विलायत हो आई हैं? नहीं ...ई हैं? जायें, अवश्य जायें, फ्रीडम (स्वतन्त्रता) साहस, शक्ति, किसे कहते हैं, उस देश की युवतियाँ वास्तव में क्या हैं, एक बार अपनी आँखों से देख आयें। मैंने नेक्स्ट टाइम (अगली वार) इन्हें भी ले जाना निश्चय किया है।'

किसी के कुछ बोलने के पूर्व ही स्टेशन के उस एवजी वाले स्टेशन मास्टर ने गर्दन उठाकर कहा कि ट्रेन डिस्टैन्ट सिगनल पार कर चुकी है, वह आ ही रही है। शीघ्रता से सभी प्लेटफार्म पर आ डटे।

ट्रेन खड़ी होने पर देखा गया कि अवकाश के कारण यात्रियों की असंख्य भीड़ है। कुछ भी जगह पाना मुश्किल है। फर्स्ट और सैकेण्ड क्लास के केवल एक-एक डिब्बे हैं, सैकेण्ड क्लास पर पूरी तरह कब्जा करके अङ्गरेज रेलवे-सरवेण्टों का एक दल किसी खेल के लिए कलकत्ते जा रहा है, और शायद उन्हीं में से कई स्थान के अभाव के कारण फर्स्ट क्लास में जा घुसे हैं। शराब और

विषय से चूर होने के कारण इनका चेहरा जैसा भयानक था, व्यवहार भी उतना ही उद्दण्ड। सभी ने डब्बे के फाटकों को रोककर जोरों से चिल्लाकर कहा—'गो—जाओ-जाओ, जगह नहीं है!'

स्टेशन मास्टर आया, गार्ड आया, उन लोगों ने किसी की बात की ओर भी ध्यान नहीं दिया।

साहब ने कहा—'क्या करना चाहिए?'

डरते हुए वन्दना ने कहा—'चलिए, आज घर लौट चलें।'

विप्रदास ने कहा—'नहीं।'

'नहीं तो फिर? नहीं तो रात की ट्रेन से...।'

नये साहब ने कहा—'इसके अलावा और रास्ता ही क्या है। कष्ट होगा, होने दो।'

विप्रदास सिर हिलाकर बोला—'नहीं, ट्रेन में चार-पाँच आदमी हैं, चार-पाँच के लिए और स्थान होना चाहिए।'

वन्दना के पिता दुःखी होकर बोले—'चाहिए तो यही, मैं भी यही समझता हूँ, परन्तु वे सभी मतवाले बने हैं।'

विप्रदास की सारी देह जैसे लोहे के समान कड़ी हो गई। बोला—'शौक उनका ही है, हमारा नहीं। चलिए मैं भी सङ्ग चलूँगा।' और पल भर में डब्बे के हेंडल को पकड़कर उसने फाटक ढकेल दिया। वन्दना का हाथ पकड़कर घसीटते हुए कहा—'आओ!' और नये साहब को पुकारकर कहा—राइट एसर्ट (अधिकार की माँग) करना चाहते हैं तो पत्नी को लेकर चढ़ आइए। अत्याचारी जमींदार के साथ रहते भय की बात नहीं।'

मतवाले साहब पल भर इस आदमी की ओर देखकर चुपचाप उधर वाली बेञ्च पर जाकर बैठ गये।

: ८ :

बगल वाले डब्बे के सब साहब यात्री शोरगुल सुनकर प्लेटफार्म पर आ खड़े हुए और एक ही साथ रूखे स्वर में प्रश्न किया—'ह्वाट्स मैटर?' (मामला

क्या है)। बात यह है कि साथियों के लिए वे बहादुरी दिखाने को तैयार हैं।

विप्रदास ने बगल में खड़े हुए गार्ड को संकेत से पास बुलाकर कहा—'बहुत संभव है कि ये सभी लोग फ़र्स्ट क्लास के यात्री नहीं हैं; तुम्हारी ड्यूटी है इन्हें हटा देना।'

वह बेचारा भी साहब ठहरा; परन्तु बहुत ही काला साहब। इसलिए ड्यूटी कुछ भी क्यों न हो, इधर-उधर झाँकने लगा। बहुत से लोग तमाशा देख रहे थे। वह मद्रासी एवजीवाला स्टेशन मास्टर भी वहीं था, हाथ के संकेत से उसे पास बुला पाँच रुपये का एक नोट देकर विप्रदास ने कहा—'मेरा नाम मेरे नौकर से पूछ लेना। अपने ऊपर वालों के पास एक तार भेज दो कि मतवाले फिरङ्गियों का यह दल जबरदस्ती फर्स्ट क्लास में घुसा है, उतरता नहीं। और यह सूचना भी उसे देना कि ट्रेन का गार्ड खड़ा-खड़ा तमाशा देखता रहा, लेकिन किसी प्रकार की सहायता नहीं की।'

गार्ड ने समझ लिया कि मेरे ऊपर खतरा आने वाला है। साहस करके कछ पास आकर बोला—'देखते नहीं हो ये लोग बड़े आदमी हैं (डौन्ट यू सी दे ार बिग पिप्ल) तुम लोग रेलवे के नौकर हो, रेलवे के फ्री पास से जा रहे ; होशियार (बी केयर फुल)।'

मतवालों के लिए भी यह बात उपेक्षा योग्य नहीं थी। इसलिए वे उतर र बगल वाले कमरे में चले गए, लेकिन प्रसन्नता से नहीं। दबे स्वर में जो छ कह गये, उसे सुनकर आदमी शान्त नहीं रह सकता। जो कुछ हो पञ्जाब बैरिस्टर साहब गार्ड को धन्यवाद देते हुए बोले—'आप न होते तो शायद ारा जाना ही न होता।'

'नहीं-नहीं, यह तो ड्यूटी है मेरी।'

ट्रेन के छूटने की घण्टी बजी। विप्रदास ने उतरने की तैयारी करते हुए ा—'शायद अब मुझे साथ जान की आवश्यकता नहीं है। वे अब कुछ गे नहीं।'

बैरिस्टर साहब बोले—'अब कुछ नहीं होगा। नौकरी का भय जो है!' क को रोककर खड़ी होकर वन्दना बोली—'नहीं, यह नहीं हो सकता, री का भय ही काफी गारण्टी नहीं है, आपको साथ जाना ही होगा।'

विप्रदास ने हँसकर कहा—'पुरुष होती तो जान सकती कि इससे बढ़कर वैरण्टी संसार में दूसरी नहीं, परन्तु मैं तो कुछ खाकर आया नहीं।'

'खाकर तो मैं भी नहीं आई।'

'वह तो तुम्हारी इच्छा थी। परन्तु थोड़ी देर के बाद होटल वाला बड़ा स्टेशन आयेगा, इच्छा हो तो वहाँ खा लेना।'

वन्दना ने कहा—'ऐसी इच्छा नहीं है। मैं भी उपवास कर सकती हूँ।'

विप्रदास ने कहा—'करने में किसी पक्ष को लाभ नहीं—मैं उतरूँ। बैरिस्टर साहब से बोले—'आप तो साथ हैं ही, जरा देखिएगा। यदि आवश्यक हो तो···।'

वन्दना ने कहा—'खतरे की जंजीर खींचकर ट्रेन रोक लेंगे ? यह मैं भी कर सकती हूँ।' इतना कह खिड़की से मुँह निकालकर घर के नौकरों से बोली—'तुम लोग जाकर माँ से कह देना कि वह हमारे साथ जा रहे हैं। कल या परसों लौट आवेंगे।'

गाड़ी चल पड़ी।

पास आकर ही वन्दना बैठ गई, बोली—'अच्छा मुखोपाध्याय जी, आप तो कम हठी नहीं हैं ?'

'क्यों ?'

'आपने तो हमें बलपूर्वक ट्रेन पर चढ़ा दिया, लेकिन वे लोग तो मतवाले थे, यदि न उतरते और मार-पीट शुरू कर देते तो ?'

विप्रदास ने कहा—'तो उनकी नौकरी चली जाती।'

वन्दना ने कहा—'परन्तु हमारा क्या जाता ? शरीर की हड्डी-पसलियाँ तो नौकरी से किसी भी प्रकार कम नहीं हैं।'

विप्रदास और वन्दना दोनों हँसने लगे, दूसरी स्त्री ने भी थोड़ा-सा हँसकर मुँह फेर लिया। उसके पति पंजाब के नये बैरिस्टर का मुख गम्भीर हो गया।

अब तक वन्दना के पिता ने इधर खास ध्यान नहीं दिया था, आलोचना का अन्तिम भाग उनके कानों में जाते ही वह सँभलकर बैठते हुए बोले—'नहीं-नहीं, तमाशे की बात नहीं है, गाड़ी में इस प्रकार की घटनाओं की सूचना

प्राय: अखबारों में निकलती रहती हैं। इसीलिए तो जोर-जबर्दस्ती की तनिक भी इच्छा मुझे नहीं थी, रात की ट्रेन से जाने से सभी प्रकार की आसानी रहती।'

वन्दना ने कहा—'रात की ट्रेन में भी यदि मतवाले होते तो पिताजी ?'

पिता ने कहा—'ऐसा क्या सचमुच ही होता है रे? तब तो भले आदमियों को यात्रा करना बन्द कर देना पड़ेगा।' यह कहकर वह एक सिगार जलाने लगे।

धीरे-धीरे वन्दना ने कहा—'मुखोपाध्याय जी, भले आदमी की संज्ञा के बारे में पिताजी से तर्क न कीजिएगा।'

हँसकर सिर हिलाते हुए विप्रदास ने कहा—'अच्छा। यह मैंने समझ लिया है।'

'अच्छा मुखोपाध्याय जी, कभी बचपन में (कलकत्ते के किले के मैदान में पहिले गोरों और हिन्दुस्तानियों में प्राय: भिड़न्त होती रहती थी।) किले के मैदान में क्या कभी गोरों से मारपीट की है ? सच बोलिएगा ?'

'नहीं, ऐसा सौभाग्य तो कभी हुआ नहीं।'

वन्दना ने कहा—'लोग कहते हैं गाँव वालों के लिए आप टेटर (आतङ्क) । सुना है कि घर के सभी लोग आपसे ऐसा भय खाते हैं जैसे शेर से। क्या यह सत्य है ?'

'लेकिन यह तुमने किससे सुना ?'

धीरे से वन्दना बोली—'मझली दीदी से।'

'वह कहती क्या हैं ?'

'कहती हैं, भय से खून पानी हो जाता है।'

'कैसा पानी ? मतवाले साहबों को देखकर जैसे हमारा होता है, उसी प्रकार न ?'

वन्दना हंसी, सिर हिलाकर बोली—'हाँ, बहुत कुछ उसी प्रकार।'

विप्रदास ने कहा—'उसकी आवश्यकता नहीं है। नहीं तो स्त्रियों को नियन्त्रण में नहीं रखा जा सकता। तुम्हारी शादी हो जाने पर भाई साहब को यह विद्या सिखा आऊंगा।'

वन्दना ने कहा—'सिखा देना। लेकिन सभी विद्याएँ सभी पर नहीं चलतीं, यह भी याद रखना। मझली दीदी सदैव की नेक है, मैं होती तो मुझसे भयभीत होकर सभी लोगों को चलना होता।'

विप्रदास ने कहा—'यानी तुम्हारे भय से घर के सभी लोगों का खून-पानी हो जाता। कोई आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि पल भर में ही जो आदर्श उपस्थित कर आई हो, उससे तो बात पर भरोसा करने का ही मन होता है। कम-से-कम माँ तो सरलता से भूल न सकेंगी।'

वन्दना मन-ही-मन जरा अप्रसन्न होकर बोली—'मालूम है आपकी माँ ने क्या किया? जब मैं प्रणाम करने गई तो वह पीछे हट गईं!'

विप्रदास ने कुछ भी विस्मय प्रकट नहीं किया। बोला—'मेरी माँ का इतना ही भर तुम देख सकीं और कुछ देखने का अवसर तुम्हें नहीं मिला। मिलता तो देखतीं इसके लिए क्रोध कर बिना खाये चले आने से बढ़कर दूसरी कोई भूल नहीं।'

'मनुष्य को आत्मसम्मान की धारणा कहाँ से मिली? स्कूल-कालेज की मोटी पुस्तकों को पढ़कर ही तो? परन्तु माँ तो अंग्रेजी नहीं जानतीं, पुस्तकें भी नहीं पढ़ी हैं। उनके ज्ञान से तुम्हारा विचार कैसे मेल खा सकता है?'

वन्दना ने कहा—'परन्तु मैं तो केवल अपना ही विचार लेकर चल सकती हूँ।'

विप्रदास ने कहा—'चलने में प्रायः गलती हो जाया करती है, जैसी तुमने आज की है। विदेशों की पुस्तकों से जो कुछ सीखा है, उसी को एकदम सच मान लेने के कारण ही इस प्रकार चली आईं, वर्ना न आतीं। बिना कारण ही गुरुजनों का अनादर करने में हिचकिचाहट होती। आत्म-मर्यादा और आत्म-अभिमान में अन्तर जानतीं?'

वन्दना अन्तर भले ही न समझे, लेकिन इतना समझ गई कि उसके आज के व्यवहार से विप्रदास के हृदय को चोट लगी है। अपने लिए नहीं माँ के अनादर के लिए।

वन्दना ने पूछा—'माँ के समान आपभी अन्धविश्वासी हिन्दू हैं न?'

विप्रदास ने कहा—'हाँ।'

उसी प्रकार छुआ-छूत का विचार करके चलते हैं ?'

'हाँ, चलता तो हूँ।'

'प्रणाम करने के लिए जाने पर उन्हीं के समान पीछे हट जाते हैं ?'

'हट जाता हूँ। समय-असमय का विचार कर चलना पड़ता है। अपनी मँझली दीदी से ही पूछ लेना। परिवार का नियम उन्हें भी मानकर चलना पड़ता है।'

वन्दना ने कहा—यानी शेर से भयभीत हुए विना कोई भी नहीं रह सकता।

विप्रदास ने हँसकर कहा—'नहीं रह सकता। जिस प्रकार दिन की गाड़ी में शेर के डर से आदमी को रात की गाड़ी से जाना पड़ता है—वह जीवन-धर्म का प्राकृतिक नियम है।'

वन्दना ने कहा—'दीदी नारी हैं, सहज ही दुर्बल हैं, उन पर सभी नियम लगाये जा सकते हैं। परन्तु सुना है, द्विजू वावू भी तो परिवार के नियम मानकर नहीं चलते, इस विषय में शेर साहब की क्या राय है ?'

वन्दना ने चुभने के लिए ही प्रश्न किया था। और उसके चुभने की आशा ही उसने की थी, परन्तु विप्रदास के मुख पर उसका कोई चिन्ह नहीं दिखाई पड़ा। उसी प्रकार हँसकर कहा—'इन गूढ़ तथ्यों को अधिकारी व्यक्ति के अतिरिक्त दूसरों के सामने प्रकट करना मना है।'

विप्रदास ने सिर हिलाकर कर कहा—'समय आने पर जानेगा ! वह जानता है कि खून-मांस में शेर पक्षपात नहीं करता।'

पल भर के लिए वन्दना का मुख सूख गया। इसके पश्चात् वह क्या प्रश्न करे, यह उसकी बुद्धि में नहीं आया।

यह परिवर्तन विप्रदास की तीव्र दृष्टि से नहीं बचा। पिताजी ने वुलाया—'विटिया मुझे थोड़ा-सा जल तो देना।'

वन्दना ने उठकर सुराही से जल दिया और फिर बैठ गई। फिर द्विजदास की चर्चा करने में उसे भय लगा। दूसरा प्रसंग छेड़ते हुए वोली—'मझली दीदी की सास के लिए नहीं, परन्तु मेरे न खाकर आने से यदि मझली दीदी को दुःख हुआ है, तो मुझे भी दुःख होगा। मैं यही वात विचार रही हूँ

विप्रदास ने कहा—'मझली दीदी को कष्ट होगा, यही बड़ी बात हो गई, और मेरी माँ लज्जित होंगी, कष्ट अनुभव करेंगी, यह तुच्छ बात हो गई। इसका अर्थ यह है कि आदमी वास्तविक बात जानने पर कैसी विपरीत चिन्ता करने लगता है।'

वन्दना ने कहा—'इसको उल्टी चिन्ता क्यों कहते हैं? वरन् यही तो प्राकृतिक है।'

विप्रदास चुप रहा। उसके उदास मुख पर वन्दना की दृष्टि पड़ी।

बाहर अंधेरा बढ़ता जा रहा था। कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था, फिर भी खिड़की के बाहर देखती हुई वन्दना बहुत देर तक चुप रही। दूसरे दिन गाड़ी इस समय हावड़ा पहुँच जाती है, लेकिन आज अभी दो-तीन घण्टे की देर है। उसने मुख फेरकर देखा कि विप्रदास जेब से एक छोटी सी नोट-बुक निकालकर कुछ लिख रहा है। पूछा—'अच्छा मुखोपाध्याय जी, एक बात का उत्तर देंगे?'

'कौन-सी बात का?'

'आप कह रहे थे कि हमारा आत्म-सम्मान-बोध केवल स्कूल-कालेज की पुस्तकों में पढ़ी हुई धारणा है। लेकिन आप की माँ ने तो स्कूल कालेज में नहीं पढ़ा है, उनकी धारणा कहाँ की सीखी हुई है?'

विप्रदास को आश्चर्य हुआ, लेकिन कुछ बोला नहीं।

वन्दना ने कहा—'उनके संबन्धन का कौतूहल हृदय से दूर कर नहीं पा रही हूँ। वह गुरुजन हैं, मैं मना नहीं करती, लेकिन संसार में क्या यही सबसे बड़ी बात है?'

विप्रदास चुप ही बैठा रहा।

वन्दना बोलती गई—'आज हम उनके घर में बिना बुलाये अतिथि थे, ये तो मेरी पुस्तकों में पढ़ी विदेशी शिक्षा नहीं है?'

'फिर बातें कुछ भी नहीं हैं—केवल आयु में छोटी होने के कारण ही क्या मेरे अपमान का आप लोग तिरस्कार करेंगे?'

फिर भी विप्रदास कुछ बोला नहीं—'उसी प्रकार चुप रहा।

वन्दना ने कहा—'फिर भी मैं उनसे क्षमा माँग रही हूँ जिससे मेरे व्यव-

हार के लिए दीदी को दुःख न हो।' जरा रुककर बोली—'मेरे माँ-बाप विलायत गये थे, इसीलिए उनके मेम साहब होने के अलावा उन्हें वह और कुछ सोच नहीं सकतीं। सुना है इसके लिए आज भी मझली दीदी के तिरस्कार की समाप्ति नहीं हुई। उसके विचार से मेरा विचार नहीं मिलेगा, फिर भी उनसे कह दीजिएगा, मैं जो कुछ होऊँ तिरस्कार के अलावा कुछ नहीं है। दीदी की सास के करने पर भी नहीं।' यह कहते-कहते उसकी आँखों के कोनों में जल दीख पड़ने लगा।

विप्रदास ने कहा—'किन्तु उन्होंने तो तुम्हारा अपमान किया नहीं?'

वन्दना ने तीव्र कण्ठ से बोली—'अवश्य किया है।'

विप्रदास ने तुरन्त उत्तर नहीं दिया, पल भर चुप रहकर बोला—'नहीं, माँ ने तुम्हारा अपमान नहीं किया। लेकिन स्वयं उसके अलावा दूसरा कोई यह बात समझा नहीं सकेगा। तर्क करके नहीं, उनसे ही इस बात को समझ लेना होगा।'

वन्दना खिड़की के बाहर देखती रही।

विप्रदास ने कहा—'एक दिन पिताजी से माँ का झगड़ा हो गया। बात छोटी-सी थी, लेकिन हो गई बहुत बड़ी। तुम्हें कुल बातें नहीं बताई जा सकतीं किन्तु उस दिन जान सका था कि लिखना-पढ़ना न जानने वाली इस माँ का आत्म-मर्यादा-बोध कितना गहरा है।'

एकाएक वन्दना ने मुख फेर कर देखा कि असीम मातृ-गर्व से विप्रदास का चेहरा मानो चमक उठा है। किन्तु वह कुछ बोली नहीं और खिड़की से बाहर की ओर देखती रही।

विप्रदास बोलता गया—'बहुत दिनों के पश्चात किसी बात के सिलसिले में एक दिन माँ से इसी बात को पूछा था—'माँ, इतना आत्म-मर्यादा बोध तुमने कहाँ पाया?'

वन्दना ने बिना मुख फेरे ही कहा—'वह क्या बोलीं?'

विप्रदास ने कहा—'शायद ज्ञात हो कि मैं माँ का अपना बेटा नहीं हूँ। अपनी दो संतानें हैं—द्विजू और कल्याणी।' माँ बोली—'तुम तीनों जनों को जिन्होंने एक ही बिछावन पर पालन-पोषण करने का भार दिया था, उन्होंने

यह विद्या मुझे प्रदान की थी, और किसी दूसरे ने नहीं। उसी दिन से जानता हूँ माँ के इस गहरे आत्म-सम्मान-बोध ने एक दिन के लिए भी किसी को यह जानने नहीं दिया कि वह मेरी माता नहीं, विमाता हैं। समझ सकती हो इसका अर्थ ?'

पल भर चुप रहकर वह फिर कहने लगा—'प्रणाम के उत्तर में किसने कितना हाथ ऊँचा किया, कितना पीछे हटकर खड़ा हो गया, नमस्कार के प्रति नमस्कार में किसने कितना सिर झुकाया, इसको लेकर मर्यादा की लड़ाई सभी देशों में है।

'अहँकार के नशे की मात्रा तुम्हारी पढ़ने की किताबों के पन्ने-पन्ने में मिलेगी, किन्तु माँ न होकर भी दूसरे लड़के की माँ होकर जिस दिन माँ ने हमारे विशाल परिवार में प्रवेश किया, उसी दिन आश्रित आत्मीय परिजनों के कण्ठ की विष की थैली मानो छलक उठी थी। किन्तु जिस चीज से उन्होंने सारे जहर को अमृत बना दिया, वह घर की मालकिन का अभिमान नहीं था, वह गृहिणीपन का भय नहीं था, वह था माँ की मर्यादा। वह इतनी ऊँची है कि उसे कोई लाँघ नहीं सका। लेकिन यह तत्व है केवल हमारे ही देश में। विदेशियों को इसका पता नहीं, वे अखबार की खबरें देखकर इन्हें दासी कहते हैं, अन्त:पुर की जंजीरों से जकड़ी बाँदी कहते हैं। सम्भवत: बाहर से ऐसा ही जान पड़ता है—दोष उन्हें नहीं देता, किन्तु घर के दास-दासी की सेवा के नीचे यदि अन्नपूर्णा की राजेश्वरी मूर्ति उन्हें नहीं दिखाई देती तो क्या तुम्हें भी नहीं दिखाई देगी ?'

वन्दना एकटक विप्रदास के मुख की ओर देखती रही। बैरिस्टर साहब अचानक ऊँचे कण्ठ से बोल उठे—गाड़ी ने इतनी देर के बाद हावड़ा प्लेटफार्म में 'इन' किया। शायद वन्दना के पिता अलसा गये थे, आश्चर्य से देखकर बोले—'दुर्दशा से मुक्ति मिली।'

वन्दना ने धीमी आवाज में कहा—'मुझे कलकत्ते में उतरना तनिक भी अच्छा नहीं लग रहा है मुखोपाध्याय जी। मन होता है आपकी माँ के पास लौट जाऊँ। जाकर कहूँ—माँ, मैंने अच्छा नहीं किया, मुझे क्षमा करो।'

विप्रदास केवल हँसा, बोला कुछ नहीं।

स्टेशन पर उतर कर उसने पूछा—'कहाँ जायँगे आप ?'

राय साहब ने कहा—'मैं तो बराबर ग्रैण्ड होटल में ही ठहरा करता हूँ, उन्हें तार भी दे दिया है—वहीं जाऊँगा।'

इस आदमी के सामने ग्रैण्ड होटल की बात से वन्दना को शर्म-सी लगी।

गाड़ी लेट होने के कारण पंजाब के बैरिस्टर साहब अत्यधिक क्रोध प्रकट करते हुए बार-बार कहने लगे कि उन्हें बेंगाल-नागपुर लाइन में जाना पड़ेगा, इसलिए वेटिंग रूम के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं।

विप्रदास मौन ही खड़ा हुआ था, राय साहब स्वयं भी कुछ लज्जित होकर बोले—'लेकिन विप्रदास, तुम···तुम भी शायद हमारे साथ···।'

'ग्रैण्ड होटल में ?' कहकर विप्रदास हँस पड़ा, बोला—'मेरे लिए चिन्ता न करें। बहूबाजार में द्विज का एक घर है, प्रायः आना पड़ता है, लोग आदि सभी हैं—अच्छा, आज वहीं क्यों न चला जाय ?'

वन्दना प्रसन्न होकर बोली—'चलिए, सभी वहीं चलें।' उसके सिर से मानो एक बहुत बड़ा बोझ उतर गया। प्रसन्नता के कारण उसने अन्य दोनों सहयात्रियों से भी चलने का अनुरोध किया और सभी मोटर में जाकर बैठ गये।

: ६ :

सवेरे उठकर वन्दना ने देखा कि इस घर क सम्बन्ध में उसका विचार ठीक नहीं था। उसने समझा था कि पुरुषों के रहने का घर है, शायद घर के कोने-कोने में कूड़ा-करकट, सीढ़ी पर थूक, पान की पीक के निशान, टूटी-फूटी चीजें, मैले बिछावन, कमरों में गर्द, मकड़ी के जाले—इसी प्रकार की अस्तव्यवस्था का दृश्य देखने को मिलेगा। कल रात को धीमे प्रकाश और थोड़े समय में कुछ देखने का अवसर नहीं मिला, लेकिन आज घर की स्वच्छता देखकर सचमुच ही उसे आश्चर्य हुआ कि काफी बड़ा घर है, बहुत से कमरे और बरामदे हैं, सभी सफाई से चमक रहे हैं।

द्वार पर बाहर एक विधवा खड़ी है, जो देखने में भले घर की महिलाओं

के समान लगती है। गले में आँचल लपेटकर प्रणाम करते ही वन्दना संकोच से अस्थिर हो उठी।

उसने कहा—'दीदी, आप ही के लिए खड़ी हूँ, चलिए गुसलखाना दिखा दूँ। मैं इस घर की सेविका हूँ।'

वन्दना ने पूछा—'पिता जी उठ गये!'

'नहीं, कल सोने में देर हुई थी, शायद उठने में देर लगेगी।'

'और जो दो जने हमारे साथ आये हैं?'

'नहीं, वे भी उठे नहीं हैं।'

'तुम्हारे बड़े बाबू? क्या वह भी सो रहे हैं?'

दासी ने हँसकर कहा—'नहीं, वह गङ्गास्नान, पूजा-पाठ समाप्त कर कचहरी के कमरे में बैठे हैं।'

'उन्हें सूचना दूं क्या।?'

वन्दना ने कहा—'नहीं, उसकी आवश्यकता नहीं।'

गुसलखाना थोड़ी दूर पर था, एक छोटे बरामदे को पार करके जाना पड़ता था। वन्दना ने जाते हुए कहा—'तुम्हारे यहाँ बाथ-रूम, सोने के कमरे के पास क्या नहीं हो सकता?'

महरी ने कहा—'नहीं। क्योंकि माँ बीच-बीच में काली के दर्शन के लिए कलकत्ता आने पर इसी घर में ठहरती हैं इसलिए ऐसा हो नहीं सकता।'

वन्दना ने मन-ही-मन कहा—'यहाँ भी वही प्रबल-प्रतापी माँ! आचार-अनाचार पर कठोर अनुशासन।' वह वापस जाकर कपड़े ले आई, बोली—'यदि यहाँ दो-चार दिन रहना पड़ा तो तुम्हें क्या कहकर पुकारूँगी? शायद यहाँ तुम्हारे अतिरिक्त और कोई सेविका नहीं है?'

वह बोली—'है, परन्तु वह काम में जुटी रहती है। ऊपर आने का अवकाश उसे नहीं मिलता। जिस वस्तु की आवश्यकता हो मुझे ही आज्ञा दें दीदी, मेरा नाम है अन्नदा। किन्तु गाँव की हूँ, शायद बहुत कुछ दोष-त्रुटि हो।'

उसके विनय-वाक्यों से वन्दना ने मन-ही-मन प्रसन्न होकर पूछा—'अन्नदा, तुम्हारा घर है कहाँ? और कौन-कौन है तुम्हारा?'

अन्नदा ने कहा—'इन्हीं के गाँव—बलराम में ही मेरा घर है। एक बेटा

स्टेशन पर उतर कर उसने पूछा—'कहाँ जायँगे आप ?'

राय साहब ने कहा—'मैं तो बराबर ग्रैण्ड होटल में ही ठहरा करता हूँ, उन्हें तार भी दे दिया है—वहीं जाऊँगा।'

इस आदमी के सामने ग्रैण्ड होटल की बात से वन्दना को शर्म-सी लगी।

गाड़ी लेट होने के कारण पंजाब के बैरिस्टर साहब अत्यधिक क्रोध प्रकट करते हुए बार-बार कहने लगे कि उन्हें बेंगाल-नागपुर लाइन में जाना पड़ेगा, इसलिए वेटिंग रूम के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं।

विप्रदास मौन ही खड़ा हुआ था, राय साहब स्वयं भी कुछ लज्जित होकर बोले—'लेकिन विप्रदास, तुम···तुम भी शायद हमारे साथ···।'

'ग्रैण्ड होटल में ?' कहकर विप्रदास हँस पड़ा, बोला—'मेरे लिए चिन्ता न करें। बहूबाजार में द्विज का एक घर है, प्रायः आना पड़ता है, लोग आदि सभी हैं—अच्छा, आज वहीं क्यों न चला जाय ?'

वन्दना प्रसन्न होकर बोली—'चलिए, सभी वहीं चलें।' उसके सिर से मानो एक बहुत बड़ा बोझ उतर गया। प्रसन्नता के कारण उसने अन्य दोनों सहयात्रियों से भी चलने का अनुरोध किया और सभी मोटर में जाकर बैठ गये।

: ६ :

सवेरे उठकर वन्दना ने देखा कि इस घर क सम्बन्ध में उसका विचार ठीक नहीं था। उसने समझा था कि पुरुषों के रहने का घर है, शायद घर के कोने-कोने में कूड़ा-करकट, सीढ़ी पर थूक, पान की पीक के निशान, टूटी-फूटी चीजें, मैले बिछावन, कमरों में गर्द, मकड़ी के जाले—इसी प्रकार की अस्तव्यवस्था का दृश्य देखने को मिलेगा। कल रात को धीमे प्रकाश और थोड़े समय में कुछ देखने का अवसर नहीं मिला, लेकिन आज घर की स्वच्छता देखकर सचमुच ही उसे आश्चर्य हुआ कि काफी बड़ा घर है, बहुत से कमरे और बरामदे हैं, सभी सफाई से चमक रहे हैं।

द्वार पर बाहर एक विधवा खड़ी है, जो देखने में भले घर की महिलाओं

के समान लगती है। गले में आँचल लपेटकर प्रणाम करते ही अन्नदा संकोच से अस्थिर हो उठी।

उसने कहा—'दीदी, आप ही के लिए खड़ी हूँ, चलिए गुसलखाना दिखा दूँ। मैं इस घर की सेविका हूँ।'

वन्दना ने पूछा—'पिता जी उठ गये!'

'नहीं, कल सोने में देर हुई थी, शायद उठने में देर लगेगी।'

'और जो दो जने हमारे साथ आये हैं?'

'नहीं, वे भी उठे नहीं हैं।'

'तुम्हारे बड़े बाबू? क्या वह भी सो रहे हैं?'

दासी ने हँसकर कहा—'नहीं, वह गङ्गास्नान, पूजा-पाठ समाप्त करके कचहरी के कमरे में बैठे हैं।'

'उन्हें सूचना दूँ क्या।?'

वन्दना ने कहा—'नहीं, उसकी आवश्यकता नहीं।'

गुसलखाना थोड़ी दूर पर था, एक छोटे बरामदे को पार करके जाना पड़ता था। वन्दना ने जाते हुए कहा—'तुम्हारे यहाँ बाथ-रूम, सोने के कमरे के पास क्या नहीं हो सकता?'

महरी ने कहा—'नहीं। क्योंकि माँ बीच-बीच में काशी से दर्शन के लिए कलकत्ता आने पर इसी घर में ठहरती हैं इसलिए ऐसा हो नहीं सकता।'

वन्दना ने मन-ही-मन कहा—'यहाँ भी वही प्रबल-प्रतापी माँ! आचार-अनाचार पर कठोर अनुशासन।' वह वापस आकर कमरे में आई, बोली—'यदि यहाँ दो-चार दिन रहना पड़ा तो तुम्हें क्या कहकर पुकारूँगी? शायद यहाँ तुम्हारे अतिरिक्त और कोई सेविका नहीं है?'

वह बोली—'है, परन्तु वह काम में जुटी रहती है। ऊपर आने का अवकाश उसे नहीं मिलता। जिस वस्तु की आवश्यकता हो मुझे ही आज्ञा दें दीदी, मेरा नाम है अन्नदा। किन्तु गाँव की हूँ, शायद बहुत कुछ [illegible] हो।'

उसके विनय-वाक्यों से वन्दना ने मन-ही-मन प्र[illegible]—'अन्नदा, तुम्हारा घर है कहाँ? और कौन-कौन है तुम्हारा?'

अन्नदा ने कहा—'इन्हीं के गाँव—बलराम में [illegible]

है, उसे इन्हीं लोगों ने लिखा-पढ़ाकर काम दिया है, बहू के साथ वह घर पर ही रहता है। अच्छी प्रकार है दीदी।'

वन्दना ने कौतूहलवश प्रश्न किया—'तब तुम स्वयं भी क्यों नौकरी करती हो, बहू-बेटे के साथ घर पर ही क्यों नहीं रहतीं?'

अन्नदा ने कहा—'इच्छा तो होती है दीदी, पर होता नहीं। दुःख के दिनों में बाबू लोगों ने वचन दिया था कि यदि मेरा अपना लड़का आदमी बन गया तो दूसरे के लड़कों को आदमी बनाने का भार अपने ऊपर लूंगी। उस बोझ को सिर से नहीं उतार सकी हूँ। गांव के बहुत से लड़के यहाँ पढ़ते हैं। मेरे सिवाय उनकी देख-भाल करने वाला कोई है नहीं।'

'क्या वे इसी घर में रहते हैं?'

'हाँ, इसी घर में रहकर कालेज में पढ़ते हैं। किन्तु आपको देरी होती जा रही है, मैं बाहर ही हूँ। पुकारते ही आ जाऊंगी।'

वन्दना ने गुसलखाने में जाकर देखा कि भीतर सब प्रकार का प्रबन्ध है। लगे हुए तीन कमरे हैं, स्पर्श-दोष बचाने के लिए जितने प्रकार के विचार आदमी के मस्तिष्क में आ सकते हैं, उनकी कोई कमी नहीं की गई। वह समझ गई कि यह सब माँ के लिए है। पत्थर का फर्श, पत्थर की ही जल-चौकी, एक तीन-एक ताँबे के—बड़े-बड़े हण्डे हैं, शायद गङ्गाजल रखने के लिए नित्य माँजने के कारण चमक रहे हैं—वह कब आई थी और फिर कब आयेंगी, इसे कोई जानता नहीं। फिर भी उपेक्षा लेशमात्र कहीं देखने को नहीं मिलती। ऐसी ठीक व्यवस्था है जैसे यहीं रह रही हैं। यह सब आदेश और शासन से ही नहीं होता, इससे भी बड़ी कोई वस्तु नियन्त्रित कर रही है इसका अनुभव वन्दना ने चारों ओर दृष्टि डालते ही कर लिया और यह माँ नाम की नारी इस परिवार में हर एक की दृष्टि में कितनी ऊँची है, इस बात को वह चुप खड़ी अपने मन में बहुत देर तक सोचती रही। कहानी-निबन्ध पुस्तकों में भारतीय नारी जाति के अनेक दुःखों की कहानी उसने पढ़ी है, उनकी हीनता से नारी होने के नाते उसे मानसिक कष्ट हुआ है—यह असत्य भी नहीं है। इस घर में अकेले खड़े होकर उन सबको सच मान लेने में उसे झिझक हुई।

बाहर निकल आने पर अन्नदा ने हँसकर कहा—'दीदी, बहुत देर हो गई,

लगभग दो घण्टे, वे सभी लोग खाने के कमरे में प्रतीक्षा कर रहे हैं। चलो न।'

'तुम्हारे बड़े बाबू कचहरी-घर से आये ?'

'हाँ, नीचे ही हैं वह भी।'

'सम्भवतः हमारे साथ खायेंगे नहीं ?'

अन्नदा ने हँसकर कहा—'खायेंगे भी तो दोपहर ही के बाद। लेकिन आज तो वह भी नहीं। एकादशी है, शायद सन्ध्या के बाद कुछ फल-मूल खायें।'

वन्दना न जाने कैसे समझ गई थी कि इस घर में वह स्त्री दासी नहीं है। बोली—यह तो ब्राह्मण घर की विधवा नहीं है, एकादशी को किसलिए उपवास करेंगे ? कल ट्रेन में एकादशी न सही, दशमी का उपवास तो इसी प्रकार हो गया।'

अन्नदा ने कहा—'होने दो, उपवास से उन्हें कष्ट नहीं होता। माँ कहती हैं कि पिछले जन्म में तपस्या करके विपिन ने इस जन्म में उपवास सिद्धि का वर पा लिया है। उनका खाना देखकर चुप हो जाना पड़ता है। नीचे आकर वन्दना ने देखा कि उनके नित्य की चाय, रोटी, अन्डे इत्यादि से मेज सजी है, और पिता तथा स्त्री सहित पंजाब के बैरिस्टर भूख से बेचैन हो रहे। उनका संतोष अपनी अंतिम मंजिल पर पहुँच गया है, पल भर में अखबार फेंक कर शिकायत करते हुए साहब ने कहा—'इतनी देर बिटिया, अब तो देखता हूँ सवेरे कोई काम हो नहीं सकेगा।'

विप्रदास अधिक दूर नहीं बैठा था, वन्दना ने पूछा—'मुखोपाध्याय जी, आप खायेंगे नहीं ?'

विप्रपास बात जान गया, हँसकर कहा—'चाय मैं पीता नहीं, खाता हूँ दाल-भात, उसका समय यह नहीं है—मेरे लिए चिन्ता न करो, तुम बैठो।'

इसका उत्तर वन्दना ने नहीं दिया, पिता और दोनों अतिथियों को संकेत करके कहा—'मुझसे अपराध हो गया है। कहलवा भेजना चाहिए था, मेरा खाने का मन नहीं है, अब आप लोग देर न करें—आरम्भ कर दें। मैं आप लोगों के लिए चाय बनाती हूँ।' इतना कहकर वह उसी दम काम में जुट गई।

सभी चिन्ता में पड़ गये। नौकर एक ओर खड़ा था वह

ने बेचैन होकर पूछा—'बिटिया बीमार तो नहीं हो गई ?' बैरिस्टर साहब के मस्तिष्क में नहीं आया कि क्या करें।

वन्दना ने चाय बनाते हुए कहा—'नहीं पिता जी, तबीअत खराब नहीं है, केवल खाने को मन नहीं हो रहा है।'

'तो आवश्यकता क्या है। कल रात को देर स खाया भोजन शायद हजम नहीं हुआ, इसके अलावा दिन में भूख के समय भोजन जो नहीं किया।'

'यही हो सकता है। दोपहर को मुखोपाध्याय जी के साथ बैठकर दाल-भात खाऊँगी, इस घर में शायद वह हजम कर सकूंगी।' किसी दूसरे ने इस बात पर ध्यान नहीं किया, लेकिन विप्रदास के चेहरे को पल भर के लिए जैसे काली छाया पार करती हुई दौड़ गई।

न जाने क्या सोचकर अचानक नौकर बोल उठा—'आज एकादशी है, संध्या को दो-चार फल-मूल के अलावा वह तो और कुछ खाते नहीं।'

अभी-अभी इस बात को वन्दना सुन आई थी, फिर भी आश्चर्य का भाव बनाकर बोली—'केवल फल-मूल ! अच्छा हल्का खाना है। यही शायद सबसे ... होगा। ठीक है न मुखोपाध्याय जी ?'

हँसकर विप्रदास ने सिर हिलाया तो, लेकिन कोई बिना सङ्कोच के उनका ... उड़ा सकता है, आज पहली बार इस बात को जानकर वह मन-ही-मन चुप रह गये, और उनके मुख की ओर देखकर कदाचित् वन्दना ने भी इसका अनुभव किया।

काम से अवकाश पाकर जब वन्दना पिता के साथ घर लौट आई, तब दोपहरी ढल चुकी थी। सपत्नीक बैरिस्टर साहब अजायब घर, चिड़ियाखाना किले का मैदान, विक्टोरिया मेमोरियल आदि कलकत्ते के प्रधान दर्शनीय स्थानों को देखकर तब भी नहीं लौटे थे। रात की ट्रेन से उनका जाने का विचार है, परन्तु कार्य-क्रम बदल कर अभी जाना उन्होंने रोक दिया है।

कपड़े बदलने के लिए राय साहब अपने कमरे में चले गये। अपने कमरे के सामने वन्दना की अन्नदा से भेंट हो गई, वह हँसकर शिकायत के स्वर में बोली—'दीदी, सारा दिन तो उपवास ही में बीत गया, आपका फल-मूल मँगा रखा है, जल्दी से मुँह-हाथ धो डालो, तब तक मैं सब ठीक कर दूं। ठीक

हैं न ?

'किन्तु बड़े बाबू—मुखोपाध्याय जी ? कहाँ हैं वह ?'

अन्नदा ने कहा—'उनकी चिन्ता न करें दीदी, उनके लिए तो नित्य की बात है। न खाना उनका नियम है।'

'लेकिन वह हैं कहाँ ?'

'दक्षिणेश्वर काली का दर्शन करने गये हैं। अभी आ जायंगे।'

वन्दना ने कहा—'वही ठीक रहेगा, आ जाने दो, किन्तु और सब लोग ? उनके लिए क्या प्रबन्ध हुआ ? चलो तो अन्नदा, तुम्हारा रसोईघर तो देख लूं।'

अन्नदा ने कहा—'चलिए, किन्तु इस समय उन लोगों का प्रबन्ध तो रसोईघर में नहीं हुआ दीदी, वह तो होटल में हुआ है, भोजन वहीं से आवेगा।'

वन्दना भौंचक्का-सी रह गई—'यह क्या बात है ? यह राय तुम लोगों को किसने दी है ?'

'बड़े बाबू स्वयं आज्ञा दे गये हैं।'

किन्तु यह अखाद्य-कुखाद्य ये लोग खायंगे कहाँ ? क्या इसी घर में ? तुम्हारी माँ सुनेंगी तो क्या कहेंगी ?'

लज्जित होकर अन्नदा बोली—'नहीं बात उनके कानों तक नहीं पहुँचेगी। नीचे के एक कमरे में प्रबन्ध कर दिया है। होटलवाला अभी बर्तन ले आयेगा, किसी प्रकार का कष्ट न होगा।'

वन्दना ने कहा—'आज्ञा तो दे गये; लेकिन आज्ञा-पालन किसने की ?

उनके पास मुझे जरा पहुँचा सकती हो ?'

'कौन सी बड़ी बात है यह दीदी, चलिए पहुँचा दूं।'

'चलो।'

मुखोपाध्याय घराने का कलकत्ते में बड़ा व्यवसाय है। नीचे के तल्ले में चार कमरों में दफ्तर है। मुनीम, गुमाश्ते, मुन्शी, प्यादे, मैनेजर इत्यादि व्यापार सम्बन्धी कार्य करते हैं। वन्दना के पहुँचते ही सभी उठकर खड़े हो गये। आयु और पद के ढंग से मैनेजर नामक व्यक्ति को उसने सरलता से ही पहचान कर उसे बाहर बुलाकर कहा—'होटल में आर्डर क[illegible]प स्वयं दे आये थे ?'

मैनेजर के सिर हिलाकर स्वीकार करने पर वन्दना ने कहा—'अब एक बार जाकर उन्हें मना कर आइये।'

मैनेजर को आश्चर्य हुआ, इधर-उधर करके कहा—'बड़े बाबू के वापस न आने तक···।'

वन्दना ने कहा—'शायद तब मना करने के लिए समय न रहेगा। मुखोपाध्यायजी अप्रसन्न होंगे तो मुझ पर होंगे। आपको भय नहीं। जाइये, देर न कीजिए।' इतना कहकर वह उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही लौटने लगी। मैनेजर ने सोचा, क्या यह बुरा न होगा? विप्रदास के आदेश की अवहेलना करना असम्भव भी कह सकते हैं, लेकिन इन अपरिचित लड़की के बेधड़क और सोच-समझकर दिये गये आदेश का पालन न करना लगभग उतना ही असम्भव है। कुछ देर वह सोचता रहा। फिर कहा—'तो जाकर मना कर आऊँ, कुछ पेशगी दे दिया था।'

'आप जायँ, देर न करें।' इतना कहकर वह लौट पड़ी।

सन्ध्या के बाद लौटकर विप्रदास ने कुल बातें सुनीं। प्रसन्न हो या अप्रसन्न एकाएक उसकी समझ में आया नहीं। रसोई-घर में पहुँचकर देखा, बन्ध लगभग पूरा हो चला है। वन्दना एक छोटे स्टूल पर बैठी रसोइये से लगी है। विप्रदास को देखकर उठ खड़ी हुई और दिखावटी विनय के स्वर में बोली—'क्रोध में मैनेजर बाबू को कहीं नौकरी से पृथक तो नहीं कर आये मुखोपाध्याय जी?'

विप्रदास बोला—'मुखोपाध्याय जी बदमिजाज हैं, यह सूचना तुम्हें किससे मिली?'

वन्दना ने कहा—'कहावत है, बाघ की गन्ध, एक कोस दूर से ही आने लगती है।'

विप्रदास हँसकर बोला—'लेकिन अतिथियों के लिए क्या होगा? इन सभी को रात में डिनर की आदत है। इसका प्रबन्ध कैसे होगा?'

वन्दना ने कहा—'जिनका डिनर के बिना चल ही नहीं सकता, उन्हें नौकर के साथ होटल में भेज दें। बिल के दाम मैं चुका दूंगी।'

'खेल नहीं है वन्दना, ऐसा करना शायद संभव नहीं हुआ।'

'क्या उन सारी चीजों को इस घर में ढोकर लाने से अच्छा होता ? बतलाइए तो यदि माँ सुन लेतीं तो क्या कहतीं ?'

विप्रदास ने इस बात पर विचार न किया, पर कुछ तय नहीं कर सका, बोला—'वह नहीं जानतीं।'

वन्दना सिर हिलाकर बोली—'अवश्य जानतीं। मैं पत्र लिख देती।'

'क्यों ?'

'क्यों ? कभी जो किया नहीं, उसे दो दिन के लिए आये बाहर के इन आदमियों के लिए क्यों करने जायँगे ? ऐसा कभी नहीं होगा।' सुनकर विप्रदास केवल प्रसन्न ही नहीं हुआ, उसे आश्चर्य भी हुआ। थोड़ी देर चुप रहकर बोला—'किन्तु तुमने तो कल से कुछ भी नहीं खाया वन्दना ? क्रोध क्या ठण्डा न होगा ?' इस बार उसका कण्ठ-स्वर कुछ स्नेह मिश्रित-सा लगा।

वन्दना ने मृदु स्वर में उत्तर दिया—'क्यों अप्रसन्न कर दिया था ? किन्तु सुनिये, आपके खाने के लिए फल-मूल सब मँगा लिया गया है, तब तक संध्या प्रार्थना से निवट ले, मैं जाकर तैयार कर दूंगी। यदि और कोई देता है तो मैं आज भी खाऊँगी नहीं, बताये देती हूँ।'

'अच्छा, आओ !' कहकर विप्रदास ऊपर चला गया।

लगभग घण्टे भर बाद वन्दना फल-मूल-मिठाई की सफेद पत्थर की थाली लेकर विप्रदास के कमरे में उपस्थित हुई। अन्नदा के हाथ में पानी का गिलास था। उसने पानी से धोकर आसन ठीक कर दिया।

विप्रदास ने वन्दना की ओर आश्चर्य से देखकर पूछा—'क्या तुमने अभी स्नान किया है ?'

'आप भोजन करिये।' कहकर उसने थाली उतार कर रख दी।

: १० :

आसन पर बैठकर विप्रदास ने फिर वही प्रश्न किया—'क्या सचमुच ही फिर स्नान कर आई हो ? बीमार पड़ जाओगी।'

'पड़ने दो। लेकिन मेरे हाथ से न खाने का बहाना मैं आपको खोजने न दूँगी, यही मेरी प्रतीज्ञा है। स्पष्ट कहिए, तुम्हारा छुआ नहीं खाऊँगा, तुम मलेच्छ घर की कन्या हो।'

हँसकर विप्रदास ने कहा—'दुरात्मा को बहाने बनाने की कमी नहीं होती यह क्या तुमने पढ़ा नहीं ?'

वन्दना ने कहा—'पढ़ा है, लेकिन आप दुरात्मा नहीं हैं, भयानक भी नहीं हैं, हमारी ही भाँति दोष-गुण युक्त मनुष्य हैं, वर्ना सचमुच ही आज उन बेचारों का डिनर बन्द करने न जाती।'

'किन्तु असली कारण क्या है ?'

'असली कारण ही आपको बतला दिया है। आपके परिवार में ये चीजें नहीं चलतीं। न घर पर और न यहीं आप किस कारण ऐसा काम करेंगे ?'

'किन्तु जानती हो वे सभी विलायत हो आये हैं। इसी प्रकार के खाने के वे अभ्यासी हैं।'

वन्दना ने कहा—'अभ्यास कुछ भी हो, फिर भी वे बंगाली हैं। बंगाली अतिथि डिनर न मिलने के कारण से मर गया, इस बात का कहीं उदाहरण नहीं है। इसलिए यह बहाना नहीं चलेगा।'

विप्रदास ने कहा—'लेकिन काम की बातें क्या हैं सुनूं तो ?'

वन्दना ने कहा—'मुझे यह ठीक-ठीक मालूम नहीं। किन्तु शायद आप मुँह से जितनी बातें करते हैं, उन सबको मन से मानते नहीं। वर्ना माँ से छिपाकर वह प्रबंध करने को कभी तैयार न होते। लोग व्यर्थ में आपसे इतना भय खाते हैं। जिनसे भय करने चाहिए वह आप नहीं हैं, आपकी माँ हैं।' यह सुनकर विप्रदास को जरा भी क्रोध नहीं आया बल्कि हँसकर बोला—'तुमने दोनों को पहचान लिया है। किन्तु प्रबन्ध माँ से छिपाकर किया जा रहा था। यह सूचना तुम्हें कैसे प्रप्त हुई ?'

वन्दना ने नाम नहीं बताया, केवल कहा—'मैंने पूछकर मालूम कर लिया है। यह इतनी बड़ी दुर्घटना होती कि मझली दीदी कभी मुझे क्षमा नहीं करतीं, सदैव कोसतीं और कहतीं—वन्दना के लिए ही ऐसा हुआ। इसीलिए मैं ऐसा

काम आपको कभी नहीं करने दूंगी।'

विप्रदास ने कहा—'तुम परम आत्मीय, सम्बन्ध में सबसे बड़ी हो। यह तुम्हारे योग्य बात है। लेकिन लुका-छिपाकर तुम्हारे हाथों का बनाया खाया जा सकता है या नहीं, यह तुमने उस आदमी से पूछा था? पूछ आओ जाकर, तब तक मैं प्रतीक्षा करता हूँ।' इतना कहकर उसने थाली तनिक खिसका दी।'

पहले तो वन्दना का मुँह लज्जा से लाल हो गया, बाद में सँभल कर बोली—'नहीं, यह बात उससे पूछने मैं नहीं जा सकूँगी, आपको खाने की आवश्यकता नहीं।'

विप्रदास ने कहा—'किन्तु कठिनाई की बात तो यह है कि अपने घर मैं तुम्हें उपवास भी नहीं करने दे सकता।' इतना कहकर वह खाने के लिए प्रस्तुत हो गया।

वन्दना ने पलभर चुप रहकर पूछा—'किन्तु इसके बाद क्या करेंगे?'

'घर लौटकर गोबर खाकर प्रायश्चित करूँगा।' इतना कहकर वह हँसा। लेकिन हँसी के कारण यह सच है या व्यंग्य, वन्दना निश्चित रूप से समझ न पाई, वह मौन ही रह गई।

विप्रदास ने कहा—'माँ से समझौता होगा ही, किन्तु तुम्हारी बहिन के दण्ड से बचूंगा यह उससे भी बड़ी बात है।' कहकर फिर हंसते हुए कहा—'क्या विश्वास नहीं हुआ? अच्छा, पहले शादी हो जाय, तब मुखोपाध्याय जी की बातें समझ सकोगी।' इतना कहकर वह थाली को साफ करके उठ गया।

डिनर तो रद्द हुआ, किन्तु दूसरे प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों की कमी न थी, इसलिए तृप्ति के विचार से कहीं भूल नहीं हुई। किन्तु काम करने के बाद बिछौने पर लेटकर वन्दना सोच रही थी, उसके प्रति विप्रदास का आचरण अप्रत्याशित भी नहीं है। शायद अनुचित भी नहीं और अपने आदमी होकर भी जिन कारणों से अब तक घनिष्टता और परिचय नहीं था, वह भी इतनी प्राचीन कहानी है कि नये सिरे से आघात अनुभव करना केवल ज्यादती नहीं, हास्य भी है। प्रणाम करने जाने पर विप्रदास की माँ छूने से बचने के लिए हट गई थी, उसी के प्रतिवाद में वन्दना बिना खाये ही क्रोध में चली ... है। अशिक्षित

ा के उद्धत धर्माचार से उसे धक्का न लगा हो, ऐसी बात नहीं। लेकिन
ूर्खता को भी एक दिन भूल जाना सरल है, किन्तु विप्रदास ने जो कुछ
उसके प्रत्युत्तर में क्या करना चाहिए, यह वन्दना ठीक न कर सकी।
हाथ का फल-मूल मिष्ठान उसने खाया है, लेकिन अपनी इच्छा से नहीं;
ार होकर। कहीं बलरामपुर की अनहोनी यहाँ भी न हो जाय इस भय से
पागल के हाथों से छुटकारा पाने के लिए। लेकिन इस अनाचार से विप्रदास
चोट पहुँची है, घर लौटकर वह प्रायश्चित करेगा, यह बात न जाने क्यों
चत समझकर वन्दना को नींद न आई, किन्तु यह भी बहुत बार सोचा
ामला इतना गम्भीर क्यों है? उनके चलने का मार्ग तो एक नहीं है—
ाँ में दोनों के लिए काफी स्थान है। यदि एक दिन अचानक सङ्घर्ष हो ही
ा है, तो हो जाय। इस प्रश्न का सामना करने की पुकार इस जीवन में
भी कौन दे रहा है? इस प्रकार उसने अपने आप को शान्त करने की
चेष्टा की; किन्तु फिर भी इसकी नीरव अवज्ञा को किसी प्रकार अपने
से दूर न कर पाई।

सोचते-सोचते वह सो गई, किन्तु अस्वस्थ बाधाग्रस्त निद्रा सहसा टूट गई।
ो सवेरा नहीं हुआ था; निद्रा पूरी न होने के कारण नेत्र भारी थे, नेत्रों में
भरी हुई थी। लेकिन बिस्तर पर भी न रह सकी, बाहर आकर बरामदे
रेलिंग के सहारे खड़ी होकर देखा कि बीतती रात का अन्धकार और भी
ा हो गया है, दूर वाली बड़ी सड़क पर कभी-कभी गाड़ियों का शब्द सुनाई
जाता है, लोगों के चलने-फिरने में अभी काफी देर है, सारा घर बिल्कुल
ध है। अचानक दिखाई पड़ा एक तल्ले पर माँ के पूजा घर में दीपक जल
है, और उसी का एक सूक्ष्म प्रकाश बन्द खिड़की के सूराख से निकलकर
ने वाले खम्भे पर पड़ता है। एक बार सोचा कि शायद नौकर दीपक बुझाना
गये हैं, किन्तु दूसरे ही क्षण स्मरण हुआ, शायद विप्रदास हैं—पूजा कर
हैं।'

उससे कौतूहल रोका न जा सका। सोचा, अचानक भेंट हो जाने पर लज्जा
ाने को स्थान न मिलेगा, रात्रि में घर छोड़कर नीचे आने का कोई कारण
बताया जा सकता, किन्तु उत्सुकता उससे रोकी नहीं जा सकी।

ध्यान की बात वन्दना ने पुस्तकों में पढ़ी है, चित्रों में देखी है, किन्तु इसके पहले कभी नेत्रों से नहीं देखी। रात्रि के एकान्त अन्धकार में वही दृश्य आज उसे दिखाई दिया। विप्रदास की दोनों आँखें बन्द हैं, उसका बलिष्ठ दीर्घ शरीर आसन पर है, ऊपर के दीपक का प्रकाश मुँह और माथे पर पड़ रहा है—कोई खास बात नहीं, शायद और किसी समय देखने से वन्दना को हँसी ही आती; लेकिन तन्द्रा-युक्त नेत्रों को इस दृश्य ने मुग्ध कर लिया। इस प्रकार वह कितनी देर खड़ी रही इसका ध्यान न रहा किन्तु सहसा जब चेतना हुई तो देखा पूरब का आसमान साफ हो गया है, उसने सोचा कि कहीं नौकर-चाकरों से यहीं सामना न हो जाय। अब वह रुकी नहीं, धीरे-धीरे ऊपर जाकर अपने कमरे में जा लेटी। गहरी नींद आने में उसे कुछ भी देर न लगी।

कुछ देर बाद द्वार पर थपकियाँ देकर अन्नदा ने बुलाया—'दीदी, काफी दिन चढ़ आया।'

जल्दी से द्वार खोलकर वन्दना बाहर आ खड़ी हुई, सचमुच दिन चढ़ आया है, लज्जित होकर पूछा—'शायद वे लोग आज भी प्रतीक्षा कर रहे हैं? जरा सवेरे मुझे क्यों नहीं जगा दिया? नहाने के बाद एक घण्टे के पहले तो तैयार न हो पाऊँगी अन्नदा।'

उसके विस्मित मुख की ओर देखकर अन्नदा हँसकर बोली—'भय की कोई बात नहीं दीदी, आज वे सब न कर सके। भोजन तैयार कर लिया है। अब जब तक चाहें नहायें, कोई बाधा न डालेगा।'

वन्दना ने सुना तो मानो छुट्टी पा गई, उसने भी हँसकर कहा—'तुम लोगों की बहुत-सी बातें पसन्द नहीं करती हूँ यह ठीक है, किन्तु इसे करती हूँ। सभी लोग घड़ी की सुई के अनुसार नहीं खाते, यह बहुत बड़ी बात है।'

अन्नदा ने कहा—'दीदी, क्या सवेरे आपको भूख नहीं लगती?'

वन्दना ने कहा—'किसी दिन भी नहीं। पर बचपन से ही नित्य खाती आ रही हूँ। अच्छा चलूँ, अब देर नहीं करूँगी।' कहकर चल दी। दो-एक घण्टे के बाद नीचे विप्रदास से उसकी भेंट हुई, वह कचहरी-घर से काम समाप्त करके चले आ रहे थे। वन्दना ने कहा—'नमस्कार!'

'चाय पी ली न?'

इला के उद्धत वर्माचार से उसे धक्का न लगा हो, ऐसी बात नहीं। लेकिन
मूर्खता को भी एक दिन भूल जाना सरल है, किन्तु विप्रदास ने जो कुछ
या उसके प्रत्युत्तर में क्या करना चाहिए, यह वन्दना ठीक न कर सकी।
के हाथ का फल-मूल मिष्ठान उसने खाया है, लेकिन अपनी इच्छा से नहीं;
चार होकर; कहीं बलरामपुर की अनहोनी यहाँ भी न हो जाय इस भय से
तो पागल के हाथों से छुटकारा पाने के लिए। लेकिन इस अनाचार से विप्रदास
चोट पहुँची है, घर लौटकर वह प्रायश्चित करेगा, यह बात न जाने क्यों
श्चित समझकर वन्दना को नींद न आई, किन्तु यह भी बहुत बार सोचा
मामला इतना गम्भीर क्यों है ? उनके चलने का मार्ग तो एक नहीं है—
नियाँ में दोनों के लिए काफी स्थान है। यदि एक दिन अचानक सङ्घर्ष हो ही
ता है, तो हो जाय। इस प्रश्न का सामना करने की पुकार इस जीवन में
से भी कौन दे रहा है ? इस प्रकार उसने अपने आप को शान्त करने की
हुत चेष्टा की; किन्तु फिर भी इसकी नीरव अवज्ञा को किसी प्रकार अपने
न से दूर न कर पाई।

सोचते-सोचते वह सो गई, किन्तु अस्वस्थ बाधाग्रस्त निद्रा सहसा टूट गई।
भी सवेरा नहीं हुआ था; निद्रा पूरी न होने के कारण नेत्र भारी थे, नेत्रों में
ींद भरी हुई थी। लेकिन बिस्तर पर भी न रह सकी, बाहर आकर बरामदे
ी रेलिंग के सहारे खड़ी होकर देखा कि बीतती रात का अन्धकार और भी
ना हो गया है, दूर वाली बड़ी सड़क पर कभी-कभी गाड़ियों का शब्द सुनाई
ड़ जाता है, लोगों के चलने-फिरने में अभी काफी देर है, सारा घर बिल्कुल
तब्ध है। अचानक दिखाई पड़ा एक तल्ले पर माँ के पूजा घर में दीपक जल
हा है, और उसी का एक सूक्ष्म प्रकाश बन्द खिड़की के सूराख से निकलकर
ामने वाले खम्भे पर पड़ता है। एक बार सोचा कि शायद नौकर दीपक बुझाना
ूल गये हैं, किन्तु दूसरे ही क्षण स्मरण हुआ, शायद विप्रदास हैं—पूजा कर
हे हैं।'

उससे कौतूहल रोका न जा सका। सोचा, अचानक भेंट हो जाने पर लज्जा
छपाने को स्थान न मिलेगा, रात्रि में घर छोड़कर नीचे आने का कोई कारण
हीं बताया जा सकता, किन्तु उत्सुकता उससे रोकी नहीं जा सकी।

ध्यान की बात वन्दना ने पुस्तकों में पढ़ी है, चित्रों में देखी है, किन्तु इससे पहले कभी नेत्रों से नहीं देखी। रात्रि के एकान्त अन्धकार में वही दृश्य आज उसे दिखाई दिया। विप्रदास की दोनों आँखें बन्द हैं, उनका बलिष्ठ दीर्घ शरीर आसन पर है, ऊपर के दीपक का प्रकाश मुँह और माथे पर पड़ रहा है—कोई खास बात नहीं, शायद और किसी समय देखने से वन्दना को हँसी ही आती; लेकिन तन्द्रा-मुक्त नेत्रों को इस दृश्य ने मुग्ध कर लिया। इस प्रकार वह कितनी देर खड़ी रही इसका ध्यान न रहा किन्तु सहसा जब चेतना हुई तो देखा पूरब का आसमान साफ हो गया है, उसने सोचा कि कहीं नौकर-चाकरों से यहाँ सामना न हो जाय। अब वह रुकी नहीं, धीरे-धीरे ऊपर जाकर अपने कमरे में जा लेटी। गहरी नींद आने में उसे कुछ भी देर न लगी।

कुछ देर बाद द्वार पर थपकियाँ देकर अन्नदा ने बुलाया—'दीदी, काफी दिन चढ़ आया।'

जल्दी से द्वार खोलकर वन्दना बाहर आ खड़ी हुई, सचमुच दिन चढ़ आया है, लज्जित होकर पूछा—'शायद वे लोग आज भी प्रतीक्षा कर रहे हैं? जरा सवेरे मुझे क्यों नहीं जगा दिया? नहाने के बाद एक घण्टे से पहले तो तैयार न हो पाऊँगी अन्नदा।'

उसके विस्मित मुख की ओर देखकर अन्नदा हँसकर बोली—'अब की कोई बात नहीं दीदी, आज वे सब्र न कर सके। भोजन तैयार कर लिया है। अब जब तक चाहें नहायें, कोई बाधा न डालेगा।'

वन्दना ने सुना तो मानो छुट्टी पा गई, उसने भी हँसकर कहा—'तुम लोगों की बहुत-सी बातें पसन्द नहीं करती हूँ यह ठीक है, किन्तु इसे करती हूँ। सभी लोग घड़ी की सुई के अनुसार नहीं खाते, यह बहुत बड़ी बात है।'

अन्नदा ने कहा—'दीदी, क्या सवेरे आपको भूख नहीं लगती?'

वन्दना ने कहा—'किसी दिन भी नहीं। पर बचपन से ही नित्य खाती आ रही हूँ। अच्छा चलूँ, अब देर नहीं करूँगी।' कहकर चल दी। दो-एक घण्टे के बाद नीचे विप्रदास से उसकी भेंट हुई, वह कचहरी-घर से काम समाप्त करके चले आ रहे थे। वन्दना ने कहा—'नमस्कार!'

'चाय पी ली न?'

'हाँ।'

'वे सब्र न कर सके, किन्तु तुम लोगों ने ही···।' वन्दना रोक कर बोली—'उसके लिए तो शिकायत नहीं की है मुखोपाध्याय जी।'

विप्रदास ने हंसकर कहा—'स्वभाव प्रशंसा के योग्य है। इसे अस्वीकार न करूँगा किन्तु दोनों बहिनों में अन्तर मानो चन्द्र-सूर्य-सा है। सुना है जल्दी ही विलायत जा रही हो। शिक्षा को मजबूत बनाने जाओ, लौटकर तनिक सूचना देना, एक बार जाकर मूर्ति के दर्शन कर आऊँगा।' वन्दना ने सुनकर हँस दिया, किन्तु उत्तर न दिया।

विप्रदास ने कहा—'सुना है कि उस देश में दिन के बारह बजे तक सोना पड़ता है, कठिन साधन है, किन्तु तुम्हें तो कष्ट करके अभ्यास करना नहीं होगा, इसी देश में तुम्हारी साधना पूर्ण हो चुकी है।'

इस बार भी वन्दना हँसी, किन्तु उसी भाँति चुप रहकर विप्रदास के मुख की ओर देखती रही। एकदम सीधी-सादी सरल आकृति, हम सब के समान हँसना-बोलना, स्नेह भाव दिखाना; किन्तु कल रात्रि के सन्नाटे में सूने कमरे में वह शान्त मौन-मूर्ति कितनी रहस्यमयी मालूम होती थी, दिन में उस बात का स्मरण आते ही उसके कौतुक का ठिकाना न रहा।

'ये लोग कहाँ हैं मुखोपाध्याय जी? कोई भी तो दिखाई नहीं देता!'

विप्रदास ने कहा—'इसका मतलब है—वे लोग नहीं हैं। यानी ससुर जी और सपत्नीक बैरिस्टर महाशय—तीनों गये हैं हावड़ा स्टेशन—डिब्बे रिजर्व कराने।'

विस्मय के साथ वन्दना ने पूछा—'सपत्नीक बैरिस्टर साहब करा सकते हैं, किन्तु पिताजी क्यों कराने जायेंगे? उनकी छुट्टी समाप्त होने में अभी तो आठ-दस दिन की देरी है। इसके अलावा मुझसे बिना कहे ही?'

विप्रदास ने कहा—'कहने के लिए समय नहीं मिला, शायद लौटकर बतायें। सवेरे ही बम्बई के दफ्तर से आवश्यक तार आया है, चेहरा देखकर सन्देह न रहा कि बिना गये काम चलेगा नहीं।'

'किन्तु मैं? इतनी जल्दी क्यों जाने लगी?'

उसी की बात दोहराते हुए विप्रदास ने भी कहा—'अवश्य, जाओगी

क्यों ? यही तो मैं भी कहता हूँ !'

बात वन्दना की समझ में न आ सकी और जिज्ञासु की भाँति केवल देखती रही।

विप्रदास ने कहा—'एक तार बहिन को भेज दो न, देवर को साथ लेकर चली आयें। तुम लोगों की खूब पटेगी भी, मैं भी अतिथि सत्कार के झँझटों से बच जाऊंगा।'

वन्दना ने डरते हुए व्याकुल कण्ठ से पूछा—'क्या यह सम्भव है ? माँ कभी भी इसके लिए सहमत न होंगी ? मुझे तो वह देखना भी नहीं चाहतीं।'

विप्रदास ने कहा—'एक बार करके ही देख लो न ? कहो तो तार का एक फारम भेज दूँ—ठीक रहेगा न ?'

उत्सुक नेत्रों से क्षण भर मौन रहकर अन्त में न जाने क्या सोच कर वन्दना ने कहा—'रहने दीजिए, यह मुझसे न होगा मुखोपाध्याय जी।'

'तो रहने दो।'

'न हो तो पिताजी के साथ चली जाऊँ ?'

'यही ठीक रहेगा।' कहकर विप्रदास चल दिया।

खाने की मेज पर पिता का तार पड़ा हुआ था, वन्दना ने खोलकर देखा सचमुच बम्बई के दफ्तर का तार है, बहुत आवश्यक है, देर नहीं की जा सकती।

वन्दना कमरे में जाकर फिर एक बार अपने बक्स को ठीक करने लगी।

अभी पिता लौटे नहीं थे, कई घण्टे के बाद अन्नदा कमरे में आकर बोली—'आपके नाम का तार आया है दीदी; यह लो।'

'मेरा तार ?' आश्चर्य से हाथ में ले खोलकर देखा—बलरामपुर से माँ ने उसी को तार भेजा है। साग्रह अनुरोध किया है—'वह किसी भी दशा में पिता के साथ वापस चली न जाय। बहू जी द्विजू को साथ लेकर रात्रि की ट्रेन से आ रही हैं।'

: ११ :

मझली दीदी रात की ट्रेन से आ रही हैं, संग में द्विजदास भी आ रहा है। वन्दना की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं। उस दिन दीदी की ससुराल के अपने आचरण से मन-ही-मन बहुत लज्जित थी, किन्तु उसे कैसे सुधारा जाय, उपाय नहीं मिल रहा था। आज बिल्कुल न चाहते हुए उसे भी पिता के साथ बम्बई लौट जाना पड़ता, अचानक ऐसे ढंग से इसका समाधान हो गया जिसका उसे पता भी न था। तार के फार्म को वन्दना ने कई बार उलट-पुलट कर देखा, पढ़कर अन्नदा को सुनाया और उत्सुकता से पिता की प्रतीक्षा करती रही—उस छोटे-से फार्म को उनके हाथों में देने के लिए। विप्रदास घर में नहीं हैं, पूछने पर मालूम हुआ कि कुछ देर पहले बाहर गये हैं, यह प्रबन्ध उन्होंने ही किया है। इसीलिए उन्हें बताने की कोई बात नहीं, फिर भी एक बार कह देना ही होगा। वह कैसे कहे, यही सोचती-विचारती रही; किन्तु उसे कुछ भी न सूझा। प्रसन्नता प्रकट करने का सरल मार्ग जैसे कभी का बन्द-सा हो गया है। बहुतों की दृष्टि में जमींदारी वर्ग का यह कड़ा और कट्टर सनातनी आदमी, शुरू से ही उसे अच्छा नहीं लगा। अब यह काफी दुर्बोध है, फिर भी धीरे-धीरे उनके हृदय में एक परिवर्तन हो रहा था। वह देख रही थी कि इस आदमी का आचरण सीमित है, बात करता है, व्यवहार भद्र है और मधुर है, फिर भी वह औरों से भिन्न है, यह उसे प्रत्येक व्यवहार से जान पड़ता है। सबके बीच रहकर भी वह सबसे दूर ही रहता है। आश्रितजन, नौकर-चाकर, कर्मचारी लोग सभी उस पर श्रद्धा रखते हैं, आदर करते हैं किन्तु सबसे बड़ी बात जो है कि सब उससे डरते हैं। उनके हृदय का भाव मानों इस प्रकार है—बड़े बाबू अन्नदाता हैं, बड़े बाबू रक्षक हैं, बड़े बाबू दुर्दिन हैं, लेकिन बड़े बाबू किसी के अपने नहीं हैं। पितृ-वियोग की विपदा उन्हें बतलाई जा सकती है, किन्तु पुत्र के विवाहोत्सव में भोजन के लिए निमन्त्रण नहीं दिया जा सकता। इस घनिष्ठ सम्बन्ध की बात वे सोच भी नहीं सकते।

कल वन्दना रसोई-घर की नौकरानी को सीधी और बुद्धू समझकर बात-

चीत के सिलसिले में इसका कारण पूछ रही थी; किन्तु बहुत कुछ पूछने पर भी केवल इतना ही मालूम कर सकी कि वह इसका कारण नहीं जाननी। सभी डरते हैं। इसीलिए वह भी डरती है और दूसरों से प्रश्न करने पर भी शायद यही उत्तर मिलता। मुखोपाध्याय जी के परिवार में यह मानो एक संक्रामक रोग है। उस दिन अचानक ही उस छोटी-सी घटना के अवसर पर विप्रदास का उक्त स्वभाव पल भर के लिए प्रकट हुआ था। किन्तु बाद में फिर उसका पता नहीं। गाड़ी में उस दिन पास बैठकर हँसी दिल्लगी की, कितनी ही बातें हुई, किन्तु आज यह जान नहीं पड़ता कि वही मनुष्य इस घर का स्वामी है।

सहसा नीचे गोल-माल सुनाई पड़ा, किसी ने दौड़कर सूचना दी कि उसके पिता राय साहब स्टेशन से लँगड़े होकर लौट आये हैं। वन्दना ने खिड़की से झाँककर देखा कि पंजाब के बैरिस्टर और उनकी स्त्री दोनों कन्धे पकड़कर साहब को गाड़ी से उतार रहे हैं। उनके पैर का जूता और मौजा खुला हुआ है और उसमें दो-तीन भीगे रुमाल लिपटे हुए हैं। प्लेटफार्म में भीड़ की रेल-पेल में किसी ने उनके पैर पर लकड़ी का भारी सन्दूक गिरा दिया था। लोगों ने धर-धराकर उन्हें ऊपर लाकर बिछौने में लिटा दिया। दरबान डाक्टर बुलाने दौड़ा, डाक्टर ने आकर पट्टी बाँधकर दवा दी। और कहा—कोई विशेष चोट नहीं है, किन्तु कुछ दिनों के लिए चलना-फिरना बन्द करना होगा।

अगले दिन सन्ध्या समय सती आ पहुँची। वन्दना बड़े उत्साह से आव-भगत करने जा रही थी, सहसा ठिठक गई और देखा कि मोटर से केवल मझली दीदी ही नहीं उतर रही, साथ में सास दयामयी भी हैं। आनन्द की लहर रुक-सी गई। वन्दना भयभीत हुई किसी प्रकार प्रणाम कर एकदम किनारे खड़ी होने जा रही थी, दयामयी ने हँसकर पूछा—'बिटिया अच्छी तो हो न?'

सिर हिलाकर वन्दना बोली—'अच्छी हूँ, अचानक कैसे आ गयीं?'

दयामयी ने कहा—'बताओ तो न आऊँ तो क्या करूँ? मेरी एक पगली बेटी क्रोध करके बिना खाये ही चली आई, उसे घर ले जाये बिना चैन कैसे पड़ता?'

वन्दना ने लजाते हुए मुस्कराकर कहा—'आप कैसे [illegible] कि मैं

क्रोध करके चली आई हूं ?'

दयामयी ने कहा—'पहले लड़के-वाली हो, मेरी आकर उन्हें पाल-पोस कर बड़े करो, तब स्वयं ही जान जाओगी कि बेटी के क्रोध करने की बात माँ कैसे जान जाती है।'

इन बातों को उसने इतने मीठे स्वर में कहा कि वन्दना कोई उत्तर न दे सकी। सिर नीचा किये हुए उनके पैर छूकर प्रणाम किया। खड़ी होकर कहा—'पिता जी सख्त बीमार हैं माँ।'

'बीमार हैं ? उन्हें हुआ क्या ?'

'पैर में चोट लगने के कारण वह कल से बिछौने पर पड़े हुए हैं, उठ भी नहीं सकते।

दयामयी घबराकर बोली—'उपचार में कोई भूल तो नहीं हुई ? चलो, जिस कमरे में तुम्हारे पिता जी हैं, मुझे ले चलो। पहले उन्हें देख आऊँ तब और कुछ होगा।' इतना कह वह सती को साथ लेकर वन्दना के पीछे-पीछे ऊपर राय साहब के कमरे में गई। आज उनके पैर में कोई विशेष पीड़ा नहीं थी, इन लोगों को देखकर बिस्तर पर बैठकर नमस्कार किया।

दयामयी ने हाथ उठाकर नमस्कार का उत्तर दिया और मुस्कराते हुए कहा—'समधी जी, पैर किस प्रकार टूटा, कहाँ घुस गये थे !'

सती और वन्दना दोनों ने दूसरी ओर मुँह फेर लिया राय, साहब सीधे-साधे आदमी समझाने लगे कि कहीं घुसने के कारण नहीं, स्टेशन के प्लेटफार्म पर अचानक ही यह दुर्घटना घटी।

दयामयी ने हँसकर कहा—'जो होना था हुआ, अब कुछ दिन बेटियों की देख-भाल में घर में बन्द पड़े रहिए। कहीं एक बिटिया आपको सँभाल न सके, इसीलिए और एक को ले आई हूँ। दोनों बारी-बारी से कुछ दिनों तक सेवा शुश्रुषा किया करें।

इसी बात पर राय साहब ने विश्वास कर लिया और इस कृपा और सहानुभूति के लिए बहुत धन्यवाद दिया।

'फिर भेंट होगी, अब जाकर हाथ पैर धोऊँ। इतना कहकर दयामयी अपने कमरे में चली गई।

द्विजदास और उसका भतीजा वासुदेव दूसरी मोटर से आये। मझली दीदी के लड़के को उस दिन वन्दना न देख पाई थी। वह पाठशाला में था और उसकी छुट्टी से पूर्व वन्दना घर से चली आई थी। दीदी को छोड़कर वासुदेव नहीं रह सकता, इसीलिए साथ ही आया है और उन्हीं के साथ घर लौट जायगा।

चाचा के परिचय करा देने पर वासुदेव ने नमस्कार किया। वन्दना के पैरों के जूते देखकर मन-ही-मन आश्चर्य हुआ, लेकिन वह कुछ नहीं बोला। आठ-नौ वर्ष का लड़का है, लेकिन सब कुछ समझता है।

प्रेम से छाती से लगाते हुए वन्दना ने पूछा—'मुझे पहचाना नहीं बासू ?'

'मैंने पहचान लिया मौसी।'

'किन्तु तुम तो पाँच-छः वर्ष के थे, तुम्हें याद तो न रहना चाहिए !'

'फिर भी मुझे याद है मौसी, तुम्हें देखते ही पहचान लिया। हमारे घर से तुम क्रोध करके चली आईं वापस जाने पर तुम्हें देखा नहीं।'

'क्रोध करके चले आने की बात तुमने सुनी किससे ?'

'दादी से चाचा कह रहे थे।'

वन्दना ने द्विजदास की ओर देखकर पूछा—'क्रोध करने की बात आपको मालूम कैसे हुई ?'

द्विजदास ने कहा—'केवल मैं ही नहीं, घर के सभी लोग जानते हैं। इसके अतिरिक्त आपने छिपाने का भी तो कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया।

वन्दना ने कहा—'आप मेरे क्रोध करने की बात ही जानते हैं, उसका कारण भी मालूम है ?'

द्विजदास बोला—'सभी को चाहे मालूम न हो; लेकिन मुझे मालूम है। राय साहब को अकेले मेज पर खाने को बिठाया गया, इसीलिए।

वन्दना ने कहा—'यदि यही कारण है, तो मेरा क्रोध करना क्या उचित मानते हैं ?'

द्विजदास ने कहा—'उचित मानता हूँ। यद्यपि इन लोगों के लिए भी दूसरा कोई मार्ग न था।'

'क्या आप मेरे पिता जी के साथ बैठकर भोजन कर सकते हैं ?'

'कर सकता हूँ। लेकिन भैया के मना करने पर नहीं।'

क्रोध करके चली आई हूं ?'

दयामयी ने कहा—'पहले लड़के-वाली हो, मेरी प्राकर उन्हें पाल-पोस कर बड़े करो, तब स्वयं ही जान जाओगी कि बेटी के क्रोध करने की बात माँ कैसे जान जाती है।'

इन बातों को उसने इतने मीठे स्वर में कहा कि वन्दना कोई उत्तर न दे सकी। सिर नीचा किये हुए उनके पैर छूकर प्रणाम किया। खड़ी होकर कहा—'पिता जी सख्त बीमार हैं माँ।'

'बीमार हैं ? उन्हें हुआ क्या ?'

'पैर में चोट लगने के कारण वह कल से बिछौने पर पड़े हुए हैं, उठ भी नहीं सकते।

दयामयी घबराकर बोली—'उपचार में कोई भूल तो नहीं हुई ? चलो, जिस कमरे में तुम्हारे पिता जी हैं, मुझे ले चलो। पहले उन्हें देख आऊँ तब और कुछ होगा।' इतना कह वह सती को साथ लेकर वन्दना के पीछे-पीछे ऊपर राय साहब के कमरे में गई। आज उनके पैर में कोई विशेष पीड़ा नहीं थी, इन लोगों को देखकर बिस्तर पर बैठकर नमस्कार किया।

दयामयी ने हाथ उठाकर नमस्कार का उत्तर दिया और मुस्कराते हुए कहा—'समधी जी, पैर किस प्रकार टूटा, कहाँ घुस गये थे!'

सती और वन्दना दोनों ने दूसरी ओर मुँह फेर लिया राय, साहब सीधे-साधे आदमी समझाने लगे कि कहीं घुसने के कारण नहीं, स्टेशन के प्लेटफार्म पर अचानक ही यह दुर्घटना घटी।

दयामयी ने हँसकर कहा—'जो होना था हुआ, अब कुछ दिन बेटियों की देख-भाल में घर में बन्द पड़े रहिए। कहीं एक बिटिया आपको सँभाल न सके, इसीलिए और एक को ले आई हूँ। दोनों बारी-बारी से कुछ दिनों तक सेवा शुश्रुषा किया करें।

इसी बात पर राय साहब ने विश्वास कर लिया और इस कृपा और सहानुभूति के लिए बहुत धन्यवाद दिया।

'फिर भेंट होगी, अब जाकर हाथ पैर धोऊँ। इतना कहकर दयामयी अपने कमरे में चली गई।

द्विजदास और उसका भतीजा वासुदेव दूसरी मोटर से आये। मझली दीदी के लड़के को उस दिन वन्दना न देख पाई थी। वह पाठशाला में था और उसकी छुट्टी से पूर्व वन्दना घर से चली आई थी। दीदी को छोड़कर वासुदेव नहीं रह सकता, इसीलिए साथ ही आया है और उन्हीं के साथ घर लौट जायगा।

चाचा के परिचय करा देने पर वासुदेव ने नमस्कार किया। वन्दना के पैरों के जूते देखकर मन-ही-मन आश्चर्य हुआ, लेकिन वह कुछ नहीं बोला। आठ-नौ वर्ष का लड़का है, लेकिन सब कुछ समझता है।

प्रेम से छाती से लगाते हुए वन्दना ने पूछा—'मुझे पहचाना नहीं वासू ?'

'मैंने पहचान लिया मौसी।'

'किन्तु तुम तो पाँच-छः वर्ष के थे, तुम्हें याद तो न रहना चाहिए !'

'फिर भी मुझे याद है मौसी, तुम्हें देखते ही पहचान लिया। हमारे घर से तुम क्रोध करके चली आईं वापस जाने पर तुम्हें देखा नहीं।'

'क्रोध करके चले आने की बात तुमने सुनी किससे ?'

'दादी से चाचा कह रहे थे।'

वन्दना ने द्विजदास की ओर देखकर पूछा—'क्रोध करने की बात आपको मालूम कैसे हुई ?'

द्विजदास ने कहा—'केवल मैं ही नहीं, घर के सभी लोग जानते हैं। इसके अतिरिक्त आपने छिपाने का भी तो कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया।

वन्दना ने कहा—'आप मेरे क्रोध करने की बात ही जानते हैं, उसका कारण भी मालूम है ?'

द्विजदास बोला—'सभी को चाहे मालूम न हो; लेकिन मुझे मालूम है। राय साहब को अकेले मेज पर खाने को बिठाया गया, इसीलिए।

वन्दना ने कहा—'यदि यही कारण है, तो मेरा क्रोध करना क्या उचित मानते हैं ?'

द्विजदास ने कहा—'उचित मानता हूँ। यद्यपि इन लोगों के लिए भी दूसरा कोई मार्ग न था।'

'क्या आप मेरे पिता जी के साथ बैठकर भोजन कर सकते हैं ?'

'कर सकता हूँ। लेकिन भैया के मना करने पर नहीं।'

'लेकिन क्या आप समझते हैं कि आपको मना करने का अधिकार दादा को है ?'

द्विजदास ने कहा—'यह उनकी बात है, मेरी नहीं। भैया की बात का न मानना अनुचित है यह जानता हूँ।'

वन्दना ने कहा—'जिसे कर्त्तव्य समझते हैं, क्या उसे करने का साहस आप में नहीं है ?'

क्षणभर चुप रहकर द्विजदास ने कहा—'देखिए, यह साहस-वाहस की बात नहीं। स्वभाव से मैं कायर आदमी नहीं हूँ, किन्तु भैया के मना करने पर मैं उनकी अवहेलना भी नहीं कर सकता। बचपन में पिता जी की कितनी ही बातें मैंने नहीं सुनीं। इसके लिए दण्ड न मिला हो सो बात नहीं, लेकिन मेरे भैया दूसरे स्वभाव के आदमी हैं, मैं उनका कभी अपमान नहीं करता।'

'अपमान करने से क्या होता है ?'

'क्या होता है वह जानता नहीं, किन्तु हमारे परिवार में यह प्रश्न अब तक नहीं उठ पाया है।'

वन्दना ने कहा—'मझली दीदी के पत्रों से जान पड़ता है कि देश के लिए आप बहुत कुछ करते हैं, फिर जो दादा की इच्छा के विरुद्ध है, वह क्यों करते हैं ?'

द्विजदास ने कहा—'उनकी इच्छा के विरुद्ध हो सकता है; लेकिन वे मना नहीं करते वर्ना नहीं कर सकता था।

दो-तीन मिनट चुप रहकर वन्दना ने कहा—'दीदी के पत्र से आपके विषय में जो कुछ समझा था वह तो आप हैं नहीं। अब उन्हें साहस बँधा सकूँगी कि भय की कोई बात नहीं, आपकी देश-सेवा के अभिनय से मुखोपाध्याय परिवार की विशाल सम्पत्ति से एक कौड़ी का भी किसी दिन घाटा नहीं होगा। दीदी निश्चिन्त रहें।'

द्विजदास ने हँसकर कहा—'दीदी का घाटा हो, क्या आप यही चाहती हैं ?

वन्दना ने झल्लाकर कहा—'वाह, ऐसा क्यों चाहूँ। मैं तो चाहती हूँ कि उनका भय दूर हो, वे निर्भय हों।

द्विजदास ने कहा—'आप चिन्ता न करें, वे निर्भय ही हैं। कम-से-कम

भैया के विषय में यह बात निःसंकोच कह सकता हूँ कि भय नाम की किसी वस्तु को वह आज भी नहीं जानते, वह उनके स्वभाव के विरुद्ध है।'

वन्दना ने हँसकर कहा—'इसका तात्पर्य यह कि भय वस्तु को घर के आप सभी लोगों ने आपस में बाँट लिया है और उनके भाग में कुछ भी नहीं पड़ा, यही न ?' द्विजदास ने बात सुनी तो हँसकर कहा—'बहुत कुछ है। किन्तु आपको वंचित नहीं होना पड़ेगा, थोड़ा-सा जो शेष है, उतना आप भी पायेंगी। तीन-चार दिनों से एक साथ हैं, अभी उन्हें पहचान नहीं पाईं ?'

वन्दना ने कहा—'नहीं, आपसे उन्हें पहचानना सीखूंगी, इसी आशा में हूँ।'

द्विजदास ने कहा—'तो लीजिए पहला पाठ। इन जूतों को उतार दीजिए।'

नौकर आकर बोला—'आप लोगों को माँ ऊपर बुला रही हैं।'

वन्दना ने चलते-चलते पूछा—'अचानक माँ क्यों आ गईं ?'

द्विजदास ने कहा—'पहली बात है कैलाश-यात्रा के सम्बन्ध में मामियों से राय लेना, दूसरी आपको बलरामपुर लौटा कर ले जाना। देखिए कहीं 'ना' न कह बैठना।'

वन्दना ने कहा—'ठीक है, ऐसा ही सही।'

द्विजदास ने कहा—'माँ के सामने आपको 'मिस राय' नहीं कह सकता। आप आयु में मुझ से छोटी हैं, इसलिए नाम लेकर ही पुकारूँगा, क्रोध में आकर कहीं कोई दूसरा अभिनय न कर बैठना।'

वन्दना हँसकर बोली—'नहीं, क्रोध क्यों करूँगी। आप मेरा नाम लेकर ही बुलायें। किन्तु मैं आपको क्या कहकर बुलाऊँगी ?'

द्विजदास ने कहा—'मुझे द्विजू बाबू ही कहा करें, लेकिन भैया को मुखोपाध्याय जी कहना ठीक न होगा। उन्हें सभी बड़े बाबू कहते हैं, आपको भैया कहना होगा। यह रहा आपका दूसरा पाठ।'

'क्यों ?'

द्विजदास ने कहा—'तर्क करके सीखा नहीं जा सकता, मान लेना पड़ता है, पाठ याद हो जाने पर इसका कारण बताऊँगा, इस समय नहीं।'

वन्दना ने कहा—'किन्तु मुखोपाध्याय जी को स्वयं आश्चर्य होगा।'

द्विजदास ने कहा—'होने पर भी कुछ हानि नहीं, किन्तु माँ-भाभी तो बहुत प्रसन्न होंगी। सचमुच इसकी आवश्यकता है।'

'अच्छा, ऐसा ही होगा।'

सीढ़ी के एक ओर जूते खोलकर वन्दना दयामयी के कमरे में जा पहुँची, पीछे-पीछे द्विजदास और वासुदेव पहुँचे। वह बक्स खोलकर कुछ कर रही थीं और पास ही खड़ी अन्नदा शायद गृहस्थी का व्यौरा दे रही थी। दयामयी ने सिर उठाकर देखा, बिना किसी भूमिका के स्वाभाविक स्वर में पूछा—'तुमने स्नान करके कपड़े बदल लिये बेटी?'

'हाँ, माँ।'

'तो बिटिया, तनिक रसोई घर में जाओ। इतने लोगों की पण्डित क्या व्यवस्था कर रहा है, नहीं जानती, मैं भी सन्ध्या से निवृत्त होकर आई।'

वन्दना स्तब्ध होकर देखती रही, लेकिन दयामयी ने उधर देखा तक नहीं। कहने लगी—'द्विजू की तबियत ठीक नहीं है, सवेरे भी वह कुछ खाकर नहीं आया। देखना उसका खाना जरा जल्द हो बिटिया।' यह कहकर वह अन्नदा को साथ लेकर पूजा के कमरे की ओर चली गई, वन्दना के उत्तर की अपेक्षा भी नहीं की।

वन्दना ने द्विजदास से पूछा—'क्या रोग है?'

द्विजदास ने कहा—'साधारण बुखार-सा है।'

'इस समय क्या खायेंगे?'

द्विजदास ने कहा—'साबूदाना, बार्ली के अतिरिक्त जो कुछ देंगी।'

वन्दना ने पूछा—'रसोईघर में जाऊँ तो कोई गोलमाल तो न होगा?'

द्विजदास ने कहा—'नहीं होगा। शायद अन्नदा ने ऐसा कुछ कहा है। उसका कहना माँ कभी टालती नहीं, बहुत प्रेम करती हैं, शायद म्लेच्छ होने का कलंक आपका दूर हुआ।'

कुछ देर तक चुप रहकर वन्दना ने कहा—'बड़े आश्चर्य की बात है।'

द्विजदास ने स्वीकार करते हुए कहा—'हाँ, इस बीच में आपने क्या किया है, अन्नदा ने माँ से क्या कहा है, नहीं जानता; किन्तु आश्चर्य आपसे भी अधिक मुझे हुआ है। पर अब देर न करें, जाकर भोजन का प्रबन्ध करें। फिर भेंट होगी।' इतना कहकर दोनों माँ के कमरे से बाहर चले गये।

: १२ :

कैलाश की तीर्थ-यात्रा में मार्ग की कठिनाइयाँ सुनकर मामियाँ ठिठक गईं, दयामयी में भी कोई खास जोश दिखाई नहीं पड़ा, फिर भी कलकत्ते में उनके पाँच-छः दिन दक्षिणेश्वर, कालीघाट और गंगा स्नान में ही बीत गये। काम के आदमी के हाथों में ही काम का उत्तरदायित्व आता है, इस घर का करीब सारा बोझ वन्दना के सिर पर आ पड़ा। सती कुछ भी नहीं करती, सभी मामलों में बहिन को आगे कर देती है, स्वयं सास के साथ-साथ घूमती-फिरती है, फिव भी बाहर कहीं जाना होता है, तो उसे बलाकर कहती है—'वन्दना, हमारे साथ चलो न। तुम्हारे साथ रहने से किसी से कोई बात पूछने की आवश्यकता नहीं होती।'

विप्रदास भी आजकल-आजकल करते-करते घर नहीं जा सका। माँ सदैव रोककर कहती—'विपिन के चले पर मुझे कौन घर ले जायगा? उस दिन संध्या को वह विक्टोरिया मेमोरियल देखकर आई, विप्रदास को बुलवाकर उत्तेजना के साथ कहने लगी—'विपिन, तुम कुछ भी क्यों न कहो भाई, शिक्षित लड़कियों की बात ही कुछ और है।'

विप्रदास जान गया कि वह वन्दना की बात है। पूछा—'क्या हुआ है माँ?'

दयामयी ने कहा—'क्या हुआ! आज एक बड़े तगड़े लालमुँहे सार्जण्ट ने आकर हमारी गाड़ी रोक दी। भाग्य से यह लड़की हमारे साथ थी, अंग्रेजी में दो बातें कहकर समझा दिया और उसने हमारी गाड़ी तुरन्त ही छोड दी, नहीं तो न जाने क्या होता? सम्भव है आसानी से न छोड़ता, थाने तक खींच ही ले जाता, कैसा हंगामा होता। तेरा नया पंजाबी ड्राइवर किसी योग्य नहीं।'

विप्रदास ने हँसकर उत्तर दिया—'तुम लोगों ने क्या किया था, धक्का मार दिया था क्या?'

वन्दना आकर खड़ी हो गई, दयामयी ने सिर हिलाकर प्रसन्नता भरे स्वर में कहा—'तुहारी ही बात विपिन से कर रही थी बिटिया, पढ़ी-

कियों की बात ही कुछ और होती है। यदि तुम साथ न होतीं तो आज सभी को कितनी विपता में पड़ना पड़ता। किन्तु सारा दोष उस मेम का है। चलना नहीं जानती फिर भी अकड़कर चलती है, जानती नहीं पर दिखाना तो होगा ही।'

विप्रदास ने हँसकर कहा—'शिक्षित लड़कियों की बात ही ऐसी होती है माँ। मेम साहब अवश्य पढ़ना-लिखना जानती होंगी।'

माँ और वन्दना दोनों हँसीं। वन्दना ने कहा—'मुखोपाध्याय जी, वह मेम साहब का दोष है, पढ़ने-लिखने का नहीं। माँ, मैं रसोई-घर को तनिक देख आऊँ। कल द्विजू बाबू की रोटी रसोइए ने कड़ी कर दी थी, उन्हें खाने में कठिनाई हुई।' इतना कहकर वह चल दी।

दयामयी पल भर स्नेहपूर्वक उसी ओर देखती रहकर बोलीं—'सभी ओर दृष्टि रहती है। केवल लिखना-पढ़ना ही नहीं विपिन, ऐसा कोई काम नहीं जिसे यह लड़की न जानती हो और उसी प्रकार मीठी वाणी भी। कोई भी काम उस पर सौंपकर निश्चिन्त रह सकते हैं, घर की किसी बात को देखने की आवश्यकता नहीं पड़ती।'

विप्रदास ने कहा—'मलेच्छ होने के कारण से घृणा तो नहीं करती हो माँ?'

दयामयी ने कहा—'तेरी तो वही एक बात! मलेच्छ क्यों होने जायगी, उसकी माँ एक बार विलायत गई थी, इसीलिए लोगों ने मेम साहब कहकर बदनाम किया। वैसे तो वन्दना हम लोगों के समान ही बंगाली के घर की लड़की है। जूते पहनती है तो क्या हुआ! परदेश में सभी पहनते हैं। लोगों के सामने बाहर निकलती है, तो इसमें कौन-सा दोष है? जैसी मेरी बहू है, वैसा मन न जाने कैसा होने लगता है!'

विप्रदास ने कहा—'मन के होने से काम कैसे चलेगा माँ? वन्दना रहने नहीं आई है, दो दिन के बाद उसे तो जाना होगा।'

दयामयी ने कहा—'जायगी तो सही किन्तु छोड़ देने का तो मन होता नहीं। इच्छा होती है पकड़कर सदैव के लिए रख लूं।'

थोड़ी देर मौन रहकर विप्रदास बोला—'किन्तु ऐसा तो हो नहीं सकता माँ, पराई लड़की को इतना गले न लगाओ। दो दिन के लिए आई है, रहे, यही अच्छा है।' कहकर वह कुछ अनमने के समान बाहर निकल गया। बात दयामयी को अच्छी नहीं लगी। किन्तु वह क्षण भर की बात थी। बलरामपुर वापस जाने का कोई नाम नहीं लेता। सबके दिन ऐसे बीत रहे हैं मानो कोई जल्सा हो, हँसी-खुशी, गप्प और सैर सपाटे। हँसी दिल्लगी में सभी के साथ इतना घुलते-मिलते दयामयी को इससे पहले किसी ने कभी देखा नहीं। उनके मन में कहीं मानो आनन्द की नदी बह रही थी, उनकी आयु और स्वाभाविक गम्भीर्य को मानो वह धारा कभी-कभी बहा ले जाना चाहती है। सती से संकेत में कुछ बातचीत होती है, जिसका अर्थ केवल सास-बहू ही समझती हैं, या अन्नदा। सपत्नीक पंजाब के बैरिस्टर साहब इतने दिनों तक रहकर कल वापस घर गये। उन दोनों का ही नाम वसंत है, इसे लेकर दयामयी ने जाते समय व्यंग किया था और वचन ले लिया था कि पंजाब वापस जाने के पहले फिर भेंट करनी होगी, कलकत्ते में या बलरामपुर में। राय साहब का पैर ठीक हो गया है, अगले सप्ताह वह बम्बई रवाना हो जावेंगे। दयामयी ने कह करके वन्दना के लिए कुछ दिनों का अवकाश स्वीकृत करा लिया है। बम्बई के बजाय बलरामपुर जाकर बहिन के साथ कम से-कम एक महीना और रहेगी। इसकी निश्चिन्त रूप से व्यवस्था हो गई।

मुखोपाध्याय का मामला-मुकदमा हाइकोर्ट में लगा ही रहता है। एक बड़े मामले की तारीख निकट आ रही थी, इसीलिए विप्रदास ने निश्चय किया कि अब घर न जाकर उस तारीख के बाद सभी को साथ लेकर ही घर जायगा। भाँति-भाँति के कामों के लिए उसे सदैव बाहर रहना पड़ता है। आज रविवार था, दयामयी ने आकर हँसकर कहा—'एक मजे की बात सुनी है, विपिन ?'

विप्रदास अदालती कागजात देख रहा था, चौकी छोड़कर उठ खड़ा हुआ और पूछा—'कौन-सी बात, माँ ?'

दयामयी ने कहा—'द्विजू की आज न जाने कौन-सी सभा है—लिस न

होने देगी पर वे करेंगे ही। मारपीट, सिर फुड़व्वल की बात सुनते ही मेरे तो भय के मारे प्राण निकल पड़ते हैं।

'क्या वह गया है ?'

'नहीं। वही बात तो तुमसे बतलाने आई हूँ। किसी की बात मानी नहीं। यहाँ तक कि अपनी भाभी की भी नहीं, अन्त में वन्दना की बात माननी पड़ी।'

कितनी ही अच्छी सूचना क्यों न हो, माँ की मर्यादा को कहीं ठेस लगी थी। विप्रदास को मन-ही-मन विस्मय हुआ। लेकिन बोला—'सच ?'

हँसकर दयामयी ने उत्तर दिया—'यही तो होते देखा। न जाने उन्होंने निश्चय किया था कि यहाँ उनमें से एक भी जूता नहीं पहनेगा, चाल-चलन में इस घर के नियम का उलंघन नहीं करेगा और इसके बदले एक दूसरे को अनुरोध मानकर चलना होगा। वन्दना ने उसके कमरे में जाकर केवल कहा—'द्विजू बाबू, याद है न ? आप किसी भी दशा में आज जा नहीं सकते। द्विजू ने स्वीकार करते हुए कहा—'अच्छी बात है, न जाऊँगा।—सुनकर मेरी चिंता दूर हो गई विपिन। क्या कर बैठेगा, न जाने क्या झगड़ा होगा, मालिक जीवित नहीं, उसे लेकर किस प्रकार भयभीत रहना पड़ता है, यह नहीं बता सकती।'

विप्रदास मौन रहा। माँ कहने लगी—'पहले उसे स्कूल-कॉलेज जाना, लिखना-पढ़ना, परीक्षा पास करना था—अब इस झंझट से छुट्टी मिली। कोई काम न होने के कारण बाहर का कौन-सा झंझट कब खड़ा कर दे, कोई नहीं कह सकता। सोचती हूँ अन्त में इतने बड़े घराने को वह कलंक न बन जाय।

हँसकर सिर हिलाते हुए विप्रदास ने कहा—'नहीं-नहीं, इसका भय मत करो, द्विजू कलंक का कोई काम कभी करेगा नहीं।'

माँ ने कहा—'मान लो यदि अचानक जेल ही हो जाय! इसका भय क्या नहीं है ?'

विप्रदास ने कहा—'भय है जानता हूँ, किन्तु जेल होने से तो कोई कलंक नहीं है माँ, कलंक तो बुरे काम में हैं। वैसा काम वह कभी करेगा नहीं। मान लो, कभी मुझे ही जेल हो जाय, हो भी सकती है, तो क्या मेरे लिए तुम

लज्जित होगी ? कहोगी विपिन मेरे परिवार का कलंक है !'

दयामयी को यह बात तीर-सी लगी। इसमें कोई निहित संकेत तो नहीं है ? जिस लड़के को हृदय से लगाकर इतना बड़ा किया, वह भली-भाँति जानती हैं कि सत्य के लिए धर्म के लिए, ऐसा कोई काम नहीं जो विप्रदास न कर सकता हो। अन्याय का प्रतिवाद करने में वह किसी भी विपत्ति, किसी भी परिणाम की चिन्ता नहीं करता। जब उसकी आयु केवल अठारह वर्ष की थी, तभी एक मुसलमान घराने का पक्ष लेकर अकेले ऐसा काम किया कि जीवित कैसे लौट आया, यह आज भी दयामयी के लिए एक पहेली है। वन्दना के मुख से उस दिन की ट्रेन घटना सुनकर वह भय से एकदम मौन हो गई थी। द्विजू के लिए उसे चिन्ता है अवश्य लेकिन दिल में बहुत अधिक भय है अपने इस बड़े लड़के के लिए, मन-ही-मन ठीक इसी बात को सोच रही थी। विप्रदास ने कहा—'क्यों माँ, कलंक की दुश्चिन्ता दूर हो गई ? जेल अचानक किसी दिन मुझे भी हो सकती है ?'

अचानक व्याकुल होकर दयामयी ने कहा—'बड़ी आयु पाओ बेटा, ऐसी अशुभ बातें तुम मुख से न निकाला करो।' इसके बाद ही बोली —'मेरे जीवित रहते तुझे जेल होगी ? तो इतने दिनों तक देवी-देवताओं को मनाया क्यों ? इतना धन है किसलिए ? सब-कुछ बेच दूँगी, फिर भी ऐसा नहीं होने दूँगी, विप्रदास।'

झुककर विप्रदास ने उनकी पद्धूलि ली, दयामयी उसे छाती से लगाकर बोली—'द्विजू को जो होना हो सो हो, यदि तू मेरी आँखों से दूर हुआ तो गंगा में डूबकर प्राण दे दूँगी। यह मुझसे सहन न होगा, समझ ले।' कहते हुए उनके नेत्रों से जल की कई बूँदें टपक पड़ीं।

'माँ, इस समय क्या ?'—कहते हुए वन्दना ने कमरे में प्रवेश किया।

दयामयी ने तुरन्त आँसू पोंछ लिये और वन्दना के मुख की ओर देख हँसकर कहा—'बेटे को बहुत दिनों से हृदय से नहीं लगाया था, इसलि[illegible] हृदय से लगा लेने की इच्छा हुई।'

वन्दना ने कहा—'किन्तु लड़का बूढ़ा है, यह मैं सबसे बता[illegible]

विरोध करते हुए दयामयी ने कहा—'लेकिन बूढ़ा शब्द [illegible]

बिटिया। अभी उस दिन की बात है ब्याह कर आई थी, मेरी फुफेरी सास जीवित थी, विपिन को मेरी गोद में डालकर बोली—'यह लो अपने बड़े बेटे को। काम-काज में बहुत देर से कुछ खाने को नहीं मिला, पहले उसे खिलाकर सुलाओ, तब दूसरा काम होगा। उन्होंने शायद देखना चाहा था कि मुझसे होगा या नहीं, नहीं जानती, हो सका है या नहीं।' कहकर वह फिर हँस पड़ी।

वन्दना ने पूछा—'तब आपने क्या किया माँ ?'

दयामयी ने कहा—घूँघट के अन्दर से देखा सोने का एक जीवित खिलौना है, बड़ी-बड़ी आँखों से अचरज से मेरी ओर देख रहा है। हृदय से लगाकर दौड़ पड़ी। नेग-चार बहुत से शेष थे, सभी चिल्ला उठे किन्तु मैंने अनसुनी कर दी। घर-द्वार कुछ नहीं जानती थी। जो महरी साथ-साथ दौड़कर आई थी, उसने कमरा दिखा दिया। उसी से कहा—ला तो मेरे बेटे का दूध का कटोरा, उसे दूध पिलाये बिना मैं एक कदम भी आगे नहीं चलूँगी। उस दिन गाँव-पड़ोस की स्त्रियों में से किसी ने कहा—बेशर्म है, किसी ने और कितने ही प्रकार की बातें कहीं, किन्तु मैंने उनकी चिन्ता ही न की। मन-ही-मन कहा—कहने दो ...हें। गोद में पाये ही को अब कोई छीन तो सकेगा नहीं। मेरे उसी बेटे को ...म बूढ़ा कहती हो !'

तीस वर्ष पहले की घटना याद आते ही आँसुओं और हँसी से उनका मुख-...ण्डल वन्दना को अपूर्व दिखाई पड़ा, बनावटी स्नेह का मर्म इस प्रकार समझने ...ा सौभाग्य उसे और कभी मिला नहीं था। विस्मित नेत्रों से पल-भर देखकर ...उसने अपने को सँभाल लिया, और हँसकर बोली—'माँ, अपने दोनों बेटों में ...िसे अधिक प्यार करती हो, सच बताना ?'

दयामयी हँसकर बोली—'असम्भव सच भी हो तो नहीं कहना चाहिए ...टिया, शास्त्र निषेध है।' वन्दना बाहर की लड़की है, अभी परिचय हुआ है, ...के सामने इन सारी पुरानी बातों की आलोचना से विप्रदास बेचैनी-सी ...नुभव कर रहा था। बोला—'बतलाने पर भी तुम नहीं समझ सकोगी वन्दना, ...म्हारी कॉलेज की पुस्तकों में ये बातें नहीं हैं, उनसे मिलाकर देखने पर माँ ... बातें तुम्हें बहुत अनोखी लगेंगी। रहने दो यह आलोचना।'

वन्दना को यह अच्छा न लगा, बोली—'अंग्रेजी पुस्तकें आपने भी तो कुछ

कम नहीं पढ़ी हैं मुखोपाध्याय जी, तब आप ही कैसे समझ लेते हैं ?'

विप्रदास ने कहा—'माँ की भाषा हम नहीं समझते वन्दना। ये सब बातें मेरी इस माँ की पोथी में ही लिखी हैं, उसकी भाषा अलग है, अक्षर अलग हैं, व्याकरण अलग है। वह स्वयं ही समझती हैं और कोई नहीं। अच्छा माँ, तुम क्या कहने आई थीं, कहो न।'

वन्दना जान गई कि यह संकेत उसकी ओर है। बोली—'माँ, इस समय की रसोई की बात आपसे पूछने आई थी, मैं जा रही हूँ, आप भी तनिक जल्दी आयें। फिर सब-कुछ भूलकर बेटे को गोद में लेकर न बैठी रह जायँ।' कहकर विप्रदास पर जरा कटाक्ष करके चल पड़ी।

उसके चले जाने के पश्चात् दयामयी के मुख पर दुश्चिन्ता की छाप आ पड़ी, पलभर इधर-उधर करके बोलीं—'विपिन, तू तो बड़ा धार्मिक है, माँ को कभी ठगना नहीं चाहिए, यह जानता है न बेटा ?'

विप्रदास ने कहा—'भगवान् के लिए तुम बात न बनाओ, माँ, जो कुछ पूछना चाहती हो पूछो न।'

दयामयी ने कहा—'तूने अचानक यह कैसे कहा कि तुझे भी जेल हो सकती है। कैलाश जाने का निश्चय अभी भी नहीं त्यागा, पर अब तो मैं एक कदम भी चल फिर नहीं सकती।'

विप्रदास हँसकर बोला—'कैलाश भेजने के लिए मैं भी बेचैन नहीं, किन्तु इसका दोष अन्त में मेरे सिर मत मढ़ना वह तो केवल दृष्टान्त भर है, द्विजू की बात तुझे समझाना चाहा था कि केवल जेल जाने से ही किसी के परिवार को कलङ्क नहीं लगता।'

दयामयी ने सिर हिलाकर कहा—'इससे मैं भुलावे में नहीं आ सकती विपिन। व्यर्थ की बातें करने वाला जीव तू है नहीं। या तो तूने कुछ किया है, और या कुछ करना चाहता है। सच-सच बतला मुझे ?'

विप्रदास बोला—'सच ही बतला रहा हूँ कि मैंने कुछ भी नहीं किया माँ। किन्तु आदमी के दिमाग में कितने प्रकार की बातें चक्कर काटती रहती हैं, इसे क्या ठीक-ठीक बतलाया जा सकता है ?'

पहले की ही तरह सिर हिलाकर दयामयी बोली—'नहीं, यह

नहीं तो आज कल तुझे देखते ही क्यों मेरा मन न जाने कैसा होने लगता है ? पाल-पोसकर तुझे बड़ा किया, मेरे जीवित रहते ही इतनी वड़ी नमकहरामी करेगा, बेटा ?' कहते ही उनके दोनों नेत्र भर आये ।

विप्रदास दुविधा में पड़कर बोला—'अमंगल का विचार करके यदि तुम ही डरती हो, तो मैं इसके लिए क्या कर सकता हूँ । तुम तो जानती हो कि तुम्हारी राय लिये बिना मैंने कभी कोई काम किया नहीं ।'

दयामयी ने कहा—'नहीं किया, यह सच है, किन्तु कल द्विजू को बुलवाकर काम-काज समझ लेने के लिए क्यों कहा ?'

'बड़ा हो गया, मेरी सहायता न करेगा ?'

अप्रसन्न होकर दयामयी ने कहा—'वह किस योग्य है ? मुझे भुलावा मत दे विपिन, तू आज इतना थक गया कि तुझे उससे सहायता लेने की आवश्यकता पड़ गई तो साफ बता कि तेरे मन में क्या है ?'

विप्रदास बोला—माँ, तुम्हीं तो स्वयं अभी अभी द्विजदास के भविष्य के विषय में सोचने को कह रही थीं ।' किन्तु इसी की झलक मिली दयामयी की बाद वाली बात से । कहने लगीं—'हमारा यह घराना धर्म-कर्म का है । यहाँ अनाचार नहीं चल सकता । हमारे वंश के नियमों की कड़ाई के साथ तेरी शादी गई थी, सत्रह वर्ष की आयु में, वह भी तेरी सलाह लेकर नहीं, हमारी इच्छा थी, इसलिए । किन्तु द्विजू कहता है वह शादी नहीं करेगा । उसने एम० ए० पास किया है, अच्छा बुरा समझने की अब उसमें बुद्धि है, उस पर किसी का दबाव नहीं चल सकता । वह गृहस्थ नहीं होता तो उस पर मेरा भरोसा नहीं, मेरे ससुर की सम्पत्ति में वह दखल देने न पावे ।'

विप्रदास ने पूछा—'द्विजू ने कब कहा कि वह शादी नहीं करेगा ?'

प्राय: कहा करता है, कहता है—'शादी करने के लिए बहुत से लोग हैं, वे करें । वह केवल देश के लिए काम करेगा । तुम लोग समझते हो यहाँ आकर मैं दिन-रात घूमती फिरती हूँ, बड़े सुख में हूँ । किन्तु मैं सुखी नहीं हूँ । तिस पर तूने आज जेल का दृष्टान्त दिया, मानो मुझे समझाने के लिए तेरे सामने और कोई दृष्टान्त नहीं थे । लेकिन एक दिन तुझे मालूम हो जायगा विपिन ।'

विप्रदास ने फिर कहा—'उसकी भाभी को आदेश देने के लिए कहो न माँ ?'

'उसकी बात वह सुनेगा नहीं।'

अवश्य सुनेगा माँ। समय आने पर सुनेगा।' तनिक हँसकर बोला—'और यदि मुझे आज्ञा दो तो उसके लिए लड़की भी ढूँढ़ सकता हूँ।'

वन्दना आकर कमरे में घुसी, शिकायत के स्वर में बोली—'आप आईं नहीं माँ ? मैं इतनी देर से बैठी हुई हूँ।'

'चल बिटिया, चलती हूँ।'

विप्रदास बोला—'हमारे अक्षय बाबू की वह लड़की तुम्हें याद है माँ ? अब वह सयानी हो गई है। लड़की में जैसा रूप है वैसा ही गुण भी। घराने में भी हमारी बराबरी के हैं। कहो तो जाकर देख आऊँ, बातचीत करूँ। द्विजु को बुरी न लगेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।'

'नहीं-नहीं, अभी रहने दो।' कहकर दयामयी ने एक क्षण के लिए एक बार वन्दना के मुख की ओर देखकर कहा—'सती की इच्छा, नहीं-नहीं, विपिन, बहू से बिना पूछे कुछ करने की आवश्यकता नहीं।'

शान्त नेत्रों से दोनों की ओर निहार कर वन्दना ने कहा—'इसमें क्या दोष है माँ ? यहीं कलकत्ते में हैं, चलो न दीदी को लेकर हम देख आवें।'

विप्रदास बोला—'यह अच्छा प्रस्ताव है, माँ। अक्षय बाबू धर्मनिष्ठ ब्राह्मण, पण्डित, संस्कृत के अध्यापक हैं। लड़की को स्कूल-कालेज में तो नहीं पढ़ाया, घर पर बहुत कुछ सिखाया है। उनके यहाँ एक दिन मेरा निमन्त्रण था, उस दिन लड़की से मैंने बहुत-सी बातें पूछी थीं। जान पड़ा कि पिता की बड़ी साध से लड़की का नाम मैत्रेयी रखना असार्थक नहीं हुआ। जाओ न माँ, एक बार उसे देख आओ, तुम्हारी वड़ी बहू कम-से-कम मन-ही-मन लजायगी कि उसके अलावा भी दुनिया में रूपवती लड़कियाँ हैं।'

माँ ने हँसना चाहा, किन्तु हँसी न आई, मुख से बात भी नहीं निकली। वन्दना ने फिर अनुरोध किया—'चलिए न माँ, हम चलकर एक बार मैत्रेयी को देख आयें ? अधिक दूर भी तो नहीं है।'

दयामयी ने देखा कि वन्दना के मुख पर अब वह सुन्दरता नहीं है, मानो

नहीं तो आज कल तुझे देखते ही क्यों मेरा मन न जाने कैसा होने लगता है ? पाल-पोसकर तुझे बड़ा किया, मेरे जीवित रहते ही इतनी बड़ी नमकहरामी करेगा, बेटा ?' कहते ही उनके दोनों नेत्र भर आये।

विप्रदास दुविधा में पड़कर बोला—'अमंगल का विचार करके यदि तुम ही डरती हो, तो मैं इसके लिए क्या कर सकता हूँ। तुम तो जानती हो कि तुम्हारी राय लिये बिना मैंने कभी कोई काम किया नहीं।'

दयामयी ने कहा—'नहीं किया, यह सच है, किन्तु कल द्विजू को बुलवाकर काम-काज समझ लेने के लिए क्यों कहा ?'

'बड़ा हो गया, मेरी सहायता न करेगा ?'

अप्रसन्न होकर दयामयी ने कहा—'वह किस योग्य है ? मुझे भुलावा मत दे विपिन, तू आज इतना थक गया कि तुझे उससे सहायता लेने की आवश्यकता पड़ गई तो साफ बता कि तेरे मन में क्या है ?'

विप्रदास बोला—माँ, तुम्हीं तो स्वयं अभी अभी द्विजदास के भविष्य के विषय में सोचने को कह रही थीं।' किन्तु इसी की झलक मिली दयामयी की बाद वाली बात से। कहने लगीं—'हमारा यह घराना धर्म-कर्म का है। यहाँ अनाचार नहीं चल सकता। हमारे वंश के नियमों की कड़ाई के साथ तेरी शादी की गई थी, सत्रह वर्ष की आयु में, वह भी तेरी सलाह लेकर नहीं, हमारी इच्छा थी, इसलिए। किन्तु द्विजू कहता है वह शादी नहीं करेगा। उसने एम० ए० पास किया है, अच्छा बुरा समझने की अब उसमें बुद्धि है, उस पर किसी का दबाव नहीं चल सकता। वह गृहस्थ नहीं होता तो उस पर मेरा भरोसा नहीं, मेरे ससुर की सम्पत्ति में वह दखल देने न पावे।'

विप्रदास ने पूछा—'द्विजू ने कब कहा कि वह शादी नहीं करेगा ?'

प्राय: कहा करता है, कहता है—'शादी करने के लिए बहुत से लोग हैं, वे करें। वह केवल देश के लिए काम करेगा। तुम लोग समझते हो यहाँ आकर मैं दिन-रात घूमती फिरती हूँ, बड़े सुख में हूँ। किन्तु मैं सुखी नहीं हूँ। तिस पर तूने आज जेल का दृष्टान्त दिया, मानो मुझे समझाने के लिए तेरे सामने और कोई दृष्टान्त नहीं थे। लेकिन एक दिन तुझे मालूम हो जायगा विपिन।'

विप्रदास ने फिर कहा—'उसकी भाभी को आदेश देने के लिए कहो न माँ ?'

'उसकी बात वह सुनेगा नहीं।'

अवश्य सुनेगा माँ। समय आने पर सुनेगा।' तनिक हँसकर बोला—'और यदि मुझे आज्ञा दो तो उसके लिए लड़की भी ढूँढ़ सकता हूँ।'

वन्दना आकर कमरे में घुसी, शिकायत के स्वर में बोली—'आप आईं नहीं माँ ? मैं इतनी देर से बैठी हुई हूँ।'

'चल बिटिया, चलती हूँ।'

विप्रदास बोला—'हमारे अक्षय बाबू की वह लड़की तुम्हें याद है माँ ? अब वह सयानी हो गई है। लड़की में जैसा रूप है वैसा ही गुण भी। घराने में भी हमारी बराबरी के हैं। कहो तो जाकर देख आऊँ, बातचीत करूँ। द्विजु को बुरी न लगेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।'

'नहीं-नहीं, अभी रहने दो।' कहकर दयामयी ने एक क्षण के लिए एक बार वन्दना के मुख की ओर देखकर कहा—'सती की इच्छा, नहीं-नहीं, विपिन, बहू से बिना पूछे कुछ करने की आवश्यकता नहीं।'

शान्त नेत्रों से दोनों की ओर निहार कर वन्दना ने कहा—'इसमें क्या दोष है माँ ? यहीं कलकत्ते में हैं, चलो न दीदी को लेकर हम देख आवें।'

विप्रदास बोला—'यह अच्छा प्रस्ताव है, माँ। अक्षय बाबू धर्मनिष्ठ ब्राह्मण, पण्डित, संस्कृत के अध्यापक हैं। लड़की को स्कूल-कालेज में तो नहीं पढ़ाया, घर पर बहुत कुछ सिखाया है। उनके यहाँ एक दिन मेरा निमन्त्रण था, उस दिन लड़की से मैंने बहुत-सी बातें पूछी थीं। जान पड़ा कि पिता की बड़ी साध से लड़की का नाम मैत्रेयी रखना असार्थक नहीं हुआ। जाओ न माँ, एक बार उसे देख आओ, तुम्हारी बड़ी बहू कम-से-कम मन-ही-मन लजायगी कि उसके अलावा भी दुनिया में रूपवती लड़कियाँ हैं।'

माँ ने हँसना चाहा, किन्तु हँसी न आई, मुख से बात भी नहीं निकली। वन्दना ने फिर अनुरोध किया—'चलिए न माँ, हम चलकर एक बार मैत्रेयी को देख आयें ? अधिक दूर भी तो नहीं है।'

दयामयी ने देखा कि वन्दना के मुख पर अब वह सुन्दरता नहीं है, मानो

ाया ने ढक लिया है। अब इतनी देर के बाद उन्हें उत्तर मिला, बोली—नहीं टिया, अधिक दूर तो नहीं है—जानती हूँ, किन्तु मुझे उतना समय भी तो ीं है। चलो हम चलें, इस समय क्या बनेगा, देखें।' कहकर वह उसका हाथ ड़कर कमरे से बाहर चल दी।

: १३ :

सन्ध्या-प्रार्थना से छुट्टी पाकर विप्रदास अभी अपनी लायब्रेरी वाले कमरे में आकर बैठा ही था, सवेरे की डाक से जो दस्तावेज घर से आये हैं, उन्हें देखना आवश्यक है, इसी समय माँ ने प्रवेश किया—'क्यों रे विपिन, तू कितना बढ़ा-चढ़ाकर बातें करने लगा है बेटा?'

विप्रदास कुर्सी से उठ खड़ा हुआ—'किस विषय में माँ?'

'अक्षय बाबू की लड़की मैत्रेयी को हम जो देख आईं।'

'लड़की कैसी है?'

दयामयी तनिक इधर-उधर करके बोली—'नहीं, बुरी नहीं कहती अक्सर ·स प्रकार की लड़की दिखाई नहीं पड़ती यह सच है, किन्तु इसी से मेरी बहू से उसकी बराबरी की? बहू की बात जाने दे, क्या रूप में वह वन्दना के समान खड़ी हो सकती है?'

विप्रदास अचरज करके बोला—'तब शायद तुम लोग और किसी को दे आई हो। वह मैत्रेयी नहीं है।' दयामयी ने हँसकर कहा—'नहीं, यह बात नह है, हमने उसकी बहुत-सी बातें हुईं, कितने यत्न से उसने बहू आदि को खिलाया सके बाद कितनी ही लिखने-पढ़ने की बातें वन्दना से उसकी हुईं और तू हता है, हम किसी और को देख आई हैं!'

विप्रदास ने कहा—'शायद वन्दना ने स्कूल-कॉलेज में कितनी पुस्तकें कर कई परीक्षाएँ पास की हैं और उसने केवल पिता के पास बैठकर सीखा मुझमें और द्विजू में भी यही अन्तर है।'

सुनकर दयामयी के दोनों नेत्र कौतूहल से नाच उठे—'चुप रहो विपिन, रहो। द्विजू उस कमरे में, सुन लेगा तो लाज के मारे घर छोड़कर चला

जायगा।' तनिक ठहर कर बोली—'तेरी माँ अपढ़ है तो क्या, इतनी है कि कॉलेज में पढ़ी लड़की को ही चतुर्वर्ग समझ बैठेगी। बात ऐसी नहीं है रे, बल्कि छोटे-छोटे वाक्यों में मीठे स्वर में उसने वन्दना की सभी बातों का उत्तर दिया, गाड़ी में आते समय वन्दना ने उस लड़की की कितनी प्रशंसा की। लेकिन मैं कहती हूँ हमारे गृहस्थ के घर क्या आवश्यकता है बेटा उतने लिखने-पढ़ने की ? जैसी मेरी एक बहू है, उसी प्रकार की एक और होने से ही मेरा काम चल जायगा। नहीं तो विद्या के गुणमान से वह मन-ही-मन गुरुजनों को तुच्छ समझेगी, यह नहीं हो सकता।'

विप्रदास जान गया कि तर्क का उत्तर माँ ठीक-ठीक नहीं दे पा रही है। हँसकर कहने लगा—'इसका भय न करो माँ। जिनमें कम विद्या होती है; अभिमान उन्हीं को अधिक होता है। यदि उसने बाप से सचमुच ही कुछ सीखा है, तो सब से नम्रता का व्यवहार करेगी, देख लेना।'

तर्क को माँ अस्वीकार न कर सकी। कहने लगी—'तेरी यह बात सच है, किन्तु पहले से कैसे जान लूँ बता ? इसके सिवाय हमारे गाँव में विद्या की कमी-बेसी की परीक्षा करने कोई नहीं आता, किन्तु दुलहिन को देखने वाली सभी नाक-भौं सिकोड़ कर कहेंगी, बुढ़िया के क्या नेत्र नहीं थे कि वैसी बहू की बगल में इस बहू को लाकर खड़ा किया। भैया यह मुझसे सहन नहीं किया जायगा।

पल भर चुप रहकर विप्रदास बोला—'किन्तु अक्षय बाबू को उत्तर तो देना होगा माँ। उस दिन उन्हें विश्वास दिलाया था कि मेरी माँ को शायद ना पसन्द न होगी।'

दयामयी सुनकर चिन्तित होकर बोली—'बात न कहते तभी ठीक होता विपिन। कुछ भी हो, बहू की क्या साध है, सुनूँ, उसके बाद उनसे कह दिया जायगा।'

विप्रदास ने कहा—'अक्षय बाबू हमारे एकदम बेगाने नहीं हैं, अब तक परिचय नहीं था इसीलिए यह बात खुली नहीं थी। आत्मीयता के लिए कुछ भी नहीं कहता, लेकिन अपने एक लड़के की जब शादी की थी, अपनी ही इच्छा से की, दूसरे किसी से पूछने नहीं गईं; और अब इसी के लिए ही राय जानने-सुनने की कौन-सी आवश्यकता आ पड़ी है माँ ?'

तर्क में हारकर दयामयी हँसकर बोली—'किन्तु अब बूढ़ी जो हो गई हूँ बेटा, और कितने दिनों तक जीवित रहूँगी बताओ तो सही। किन्तु जिसे लेकर हमेशा के लिए गृहस्थी चलाना होगा, उसकी राय न लेकर कैसे शादी कर सकती हूँ ? नहीं-नहीं हमें विचारने के लिए तू दो दिन का समय दे।' कहकर वह बाहर चली गई। बाहर आकर दयामयी अपने कमरे की ओर न जाकर समधी के कमरे की ओर चल पड़ी, इन्हीं कई दिनों की घनिष्टता से वन्दना के पिता के सामने उनका संकोच बहुत कुछ दूर हो गया था, प्रायः स्वयं आकर उनका समाचार पूछ जाती। इधर सन्ध्या पार हो चुकी है, सन्ध्या करने बैठ जायँगी तो शीघ्र उठ न सकेंगी, सोचकर उनके कमरे में प्रविष्ट हुई और बोली—'क्या हाल है······?'

बात समाप्त नहीं हो पाई थी। कमरे के दूसरे किनारे पर एक सुन्दर युवक वन्दना से धीरे-धीरे बातचीत कर रहा था। सुन्दर साहबी पोशाक वाले इस अपरिचित आदमी के सामने अचानक आ पड़ने के कारण दयामयी लज्जा के कारण पीछे हटना ही चाहती थी कि राय साहब बोल उठे—'कहाँ भागी जा रही हैं समधिन जी, वह तो अपना सुधीर है। उससे शर्म की कौन-सी बात है ? वह तो विप्रदास और द्विजदास के समान ही आपका बेटा है। मेरी बीमारी की सूचना पाकर मद्रास से देखने आया है। सुधीर, आप वन्दना की दीदी की सास हैं, विप्रदास की माता। प्रणाम करो इन्हें।'

प्रणाम करने की सुधीर को अभ्यास नहीं है, उस पोशाक में करना भी कठिन है, उसने पास आकर सिर झुकाकर किसी प्रकार आज्ञा का पालन किया।

उनकी सन्तान का सम्बन्ध इस लड़के से कैसे हुआ, यही समझाने के लिए राय साहब कहने लगे—उसका बाप और मैं हम दोनों एक ही साथ विलायत में पढ़ते थे, तभी से हम घनिष्ट-मित्र हैं। सुधीर स्वयं भी विलायत से बहुत-सी परीक्षा पासकर मद्रास के शिक्षा-विभाग में नौकरी करता है। इनकी शादी के बाद वह कुछ दिनों की छुट्टी लेकर वन्दना के साथ फिर विलायत जायेगा, वहाँ तबीयत हुई तो वन्दना कॉलेज में भर्ती होगी, नहीं तो केवल देश घूमकर दोनों लौट आयेंगे। देखना सुधीर, यदि तुम लोग इसी अगस्त-

सितम्बर में ही जाना निश्चय कर सको तो हो सकेगा कि मैं भी तीन महीने की छुट्टी लेकर एक वार घूम आऊँगा। कैसा रहेगा वेटी, ठीक होगा न ?'

वहीं से धीरे-धीरे वन्दना ने कहा—'क्यों न होगा पिता जी, तुम्हारे साथ रहने से तो ठीक ही रहेगा।'

राय साहब ने उत्साहित होकर कहा—'उससे एक और आसानी यह रहेगी कि तुम्हारी शादी के बाद महीने भर का समय मिलेगा, किसी प्रकार की जल्दबाजी नहीं करनी पड़ेगी। समझ लिया न सुधीर, आसानी को ?'

सुधीर तथा वन्दना दोनों ने ही इसमें सम्मति-सूचक सिर हिलाया। दयामयी इतनी देर के बाद जान सकी कि यह लड़का राय साहब का भावी दामाद है। इसलिए उनका भी पुत्र स्थानीय है। उनका हृदय अचानक आनन्द से भर उठा; लेकिन वह विप्रदास की माँ हैं, जो वलरामपुर के प्रसिद्ध मुखोपाध्याय जी हैं, घर की मालकिन हैं, पल भर में अपने को सँभालकर लड़के से पूछा—'सुधीर तुम्हारा मकान कहाँ है बेटा ?'

सुधीर ने कहा—'इस समय बम्बई में, किन्तु पिताजी से सुना है कि पहले दुर्गापुर में था, लेकिन अब शायद हमारा कुछ भी नहीं रह गया।'

'कौन-सा दुर्गापुर, सुधीर ? जो वर्द्धमान जिले में है ?'

सुधीर ने कहा—'हाँ, पिताजी से सुना तो यही है। कलकत्ते के पास कोई छोटा-सा गाँव है,अब शायद वह इलाका मैलेरिया से नष्ट हो गया है।'

दयामयी ने आश्चर्य से पूछा—'तुम्हारे बाबा का नाम हरिहरबसु था ?'

यह प्रश्न सुनकर राय साहब भी आश्चर्य-चकित हो गये। बोले—'आप उन लोगों को जानती हैं क्या ?

'हाँ, जानती हूँ। मेरा ननिहाल दुर्गापुर में है। बालपन में नानी ने ही मेरा लालन-पालन किया था, इसीलिए उस गाँव के प्रायः सभी को जानती हूँ। उनका मकान हमारे मुहल्ले में था। किन्तु इस समय बातचीत करने का अवसर नहीं है, मेरी सन्ध्या में विलम्ब होता जा रहा है। लेकिन बिना कुछ खाये-पिये ही तुम चले न जाना—अभी मैं सब कुछ करने के लिए बता रही हूँ।'

हँसकर सुधीर ने कहा—'वह अब तक शेष नहीं है, विप्रदास बाबू ने पहले

ही वह काम समाप्त कर दिया है।'

'कर दिया है ? अच्छा तो अब मैं चलूं।' कहकर दयामयी चल दी। वन्दना की ओर एक बार भी देखा नहीं, एक बात भी की नहीं।

अगले दिन सवेरे स्नान-संध्या करके विप्रदास ने नित्य के अभ्यास के अनुसार माँ की पद-धूलि के लिए आज भी उनके कमरे में प्रवेश करके अत्यन्त आश्चर्य से देखा कि उनकी चीज-वस्तुएं बांधी जा रही हैं।

'कहीं जाओगी क्या, माँ ?'

दयामयी ने कहा—'तू नहीं मिला, इसीलिए दत्त महाशय से पूछकर जान लिया कि साढ़े नौ बजे की गाड़ी से रवाना हो जाने से संध्या के पहले ही घर पहुँच जाऊँगी। किन्तु परसों तेरे मुकदमे की तारीख है, तू तो साथ नहीं जा सकेगा, द्विजू से हमें पहुंचा देने के लिए कह दे।'

माँ के दोनों नेत्र लाल, और मुँह सूखा है, देखने से विप्रदास ने जान लिया कि सारी रात उन्हें गहरी चिन्ता में बितानी पड़ी।

भयभीत विप्रदास ने पूछा—'अचानक क्या कोई आवश्यकता पड़ गई है, माँ ?'

माँ ने कहा—'आई थी दो दिन के लिए, आठ-दस दिन हो गये, उधर ठाकुर जी की पूजा का क्या हो रहा है, नहीं मालूम। पाँच-छः गायों के व्याने का समय हो गया है, देखूं उनका क्या हुआ, कोई सूचना मिली नहीं है। वासू स्कूल से अनुपस्थित हो रहा है—अब तो देर की नहीं जा सकती, विपिन।

दयामयी के लिए ये सारी बातें छोटी नहीं हैं। यह सच है, किन्तु असल कारण उन्होंने नहीं बतलाया यह समझकर ही विप्रदास ने कहा—'फिर भी क्या आज ही गये बिना काम चलेगा नहीं ?'

'नहीं भैया, मुझे तू रोके नहीं। द्विजू को साथ जाने के लिए कह दे, न हो तो और कोई हमें पहुँचा आवे।'

'ऐसा ही होगा माँ।' कहकर विप्रदास पद-धूलि सिर से लगाकर कमरे से बाहर निकल गया। अपने सोने के कमरे में आकर देखा कि सती बहुत व्यस्त है और पास ही बैठी अन्नदा मिठाई की हांड़ी, फल-मूल और लड़के के दूध का लोटा संभालकर टोकरी में रख रही है।

घूँघट खींचकर सती उठ खड़ी हुई। विप्रदास ने कहा—'अन्नदा बहिन, बात क्या है, मालूम है ?'

'नहीं तो, कुछ भी नहीं जानती। सवेरे माँ ने मुझे बुलवाकर कह दिया कि वहू को खाने-पीने का कष्ट न हो, नौ बजे की गाड़ी से वह घर जायँगे।'

विप्रदास ने सती से कारण पूछा—'उसने भी सिर हिलाकर बतलाया कि उसे भी कुछ नहीं मालूम।'

सुनकर विप्रदास चुप रह गया। अन्नदा को न मालूम हो; लेकिन वहू नहीं जानती है, सास की ऐसी कौन-सी बात है ? पल भर चुप खड़ा रहकर वह नीचे चला गया। परेशान होकर यही सोचते हुए गया कि ये सारी बातें माँ के स्वभाव के विरुद्ध हैं। क्या जाने कौन-सा गहरा दुःख उनके इस बेतुके आचरण के भीतर छिपा रह गया, जिसे उन्होंने किसी पर भी प्रकट नहीं किया।

दयामयी तैयारी करके जब नीचे आईं तब भी गाड़ी में बहुत देर थी, किन्तु आज उनसे देरी नहीं सही जाती, किसी प्रकार घर छोड़ने से ही मानो उन्हें विश्राम मिलेगा। सामने मोटर तैयार खड़ी है, दूसरी में चीज-वस्तु लाद कर नौकर-चाकर जा बैठे हैं, हाथ में बैग लिये विप्रदास को आते देखकर उन्होंने भारी कण्ठ से पूछा—'द्विजू कहाँ गया ?'

विप्रदास ने कहा—'वह नहीं जायगा माँ, मैं ही तुम्हें पहुँचा दूँगा।'

'शायद जाने के लिये प्रस्तुत नहीं हुआ ?'

नम्रता से विप्रदास ने कहा—'उसके लिए ऐसी बात तुम्हें नहीं कहनी चाहिए, माँ। तुम्हारी आज्ञा को उसने कब नहीं माना, बतलाओ तो ?'

'तो हुआ क्या ? क्यों नहीं जायगा ?'

'माँ, मैंने ही उसे जाने के लिए नहीं कहा।' विप्रदास कुछ हँसकर बोला—'जिस लिए तुम इतनी बेचैन हो गई हो तुम्हारे उन्हीं ठाकुर जी का, तुम्हारी उन्हीं गायों के झुंड का क्या हुआ, अपने नेत्रों से देखूँगा इसीलिए साथ चल रहा हूँ और कोई बात नहीं।'

किसी दूसरे अवसर पर दयामयी स्वयं भी हँसकर शायद बहुत-सी बातें लड़के से करतीं; किन्तु इस समय चुप रह गईं।

वन्दना को बुलाने अन्नदा गई थी, वह अभी-अभी नहाकर पिता के कमरे में जा रही थी। अन्नदा के बुलाने पर जल्दी से नीचे आई और यह सब देखकर स्तब्ध रह गई।

दयामयी ने कहा—'आज घर जाने की तैयारी है वन्दना।'

'घर ? वहाँ हुआ क्या है माँ ?'

'कुछ भी तो नहीं हुआ। पर दो दिन के लिए आई थी और दस-बारह दिन हो गये, देर हो गई, अब घर छोड़कर रहा नहीं जाता। तुम्हारे पिता जी से भेंट नहीं हुई, वह सोकर जगे नहीं थे। समधी जी से मेरी ओर से क्षमा माँग लेना। द्विजू है, अन्नदा है, तुम भी देखना उन्हें किसी बात का कष्ट न होने पाये।' चलो बहू, अब देर न करो।'—इतना कह वह गाड़ी में जा बैठी।

सती जो पीछे थी, वह पास आकर बहिन का हाथ पकड़ कर रो पड़ी—'हम चल रही हैं बहिन !' और अधिक उसके मुँह से न निकला, आँसू पोंछते हुए वह अपनी सास की बगल में जा बैठी।

वन्दना हतबुद्धि-सी मौन भाव से पत्थर की मूर्ति के समान खड़ी रही, अचानक यह हुआ क्या !

जब बासू ने आकर उसको प्रणाम करके कहा—'मैं जा रहा हूँ मौसी !' तब उसे चेत हुआ कि अभी तक उसने भी किसी को प्रणाम नहीं किया। शीघ्रता से बासू का मुख चूमकर उसने गाड़ी के फाटक के पास आकर हाथ बढ़ा दयामयी और मझली दीदी की पद-धूली ली। सती ने चुपचाप उसकी ठुड्डी पकड़ी, माँ ने मन-ही-मन आशीर्वाद दिया किन्तु क्या बोलीं, यह समझ में नहीं आया। मोटर चल पड़ी।

अन्नदा ने कहा—'चलो दीदी, हम ऊपर चलें।'

उसके स्नेह मिश्रित कण्ठ स्वर से वन्दना लज्जित हुई, पल भर की विह्वलता को दृढ़ता से दूर कर बोली—'तुम चलो अन्नदा, मैं रसोई घर का काम सँभाल कर आ रही हूँ।' यह कह वह उसी ओर चल दी।

कल सन्ध्या को भी बातें हुई थीं कि राय साहब के बम्बई चले जाने के बाद सभी एक साथ बलरामपुर जायँगे। लेकिन आज उसका जिक्र तक नहीं, और भविष्य में किसी एक दिन का बुलावा भी नहीं।

वन्दना घण्टे भर बाद चाय का सामान लेकर पिता के कमरे में गई तो वह बहुत दुख के साथ बोल उठे—'समधिन जी बिना मिले चली गईं, सवेरे उठ न सका बिटिया, छिः! छिः! न जाने मेरे विषय में उन्होंने क्या सोचा होगा!'

वन्दना ने कहा—'हम बम्बई कब जायेंगे पिता जी?'

पिता ने कहा—'तुम्हारी बलरामपुर जाने की बात थी बिटिया, क्यों नहीं गई?'

वन्दना ने कहा—'तुम्हें अकेला छोड़ कर कैसे जाऊँ पिता जी, तुम तो आज तक अच्छे भी नहीं हो पाये।'

'चंगा तो हो गया हूँ बिटिया। समधिन जी को वचन जो दिया है कि तुम जाओगी, न हो तो, मैं जाते हुए तुम्हें बलरामपुर में उतारता जाऊँगा। कैसा रहेगा बिटिया?'

'नहीं, यह नहीं होगा पिता जी। इतनी दूर अकेले तुम्हें जाने नहीं दूँगी।'

वन्दना की बात सुनकर पिता ने प्रसन्न होकर कहा—'दुर पगली, भेंट होने पर, समधिन कहेंगी कि बूढ़े बाप को बेटी नेत्रों से दूर नहीं करना चाहती। छिः! छिः!

'इतने तुम चाय पियो पिताजी, मैं अभी आती हूँ।' इतना कहकर वन्दना वहाँ से चल दी।

: १४ :

सन्ध्या अब समाप्त हो रही थी कि द्विजदास के कमरे के सामने खड़ी होकर वन्दना ने पुकारा—'क्या एक बार आ सकती हूँ द्विजू बाबू?'

अन्दर से आवाज आई—'आ सकती हो! एक बार नहीं, सौ, हजार बार, असंख्य बार!'

वन्दना ने द्वार के किवाड़ों को बिलकुल खोलकर प्रवेश किया और कमरे की सभी बत्तियाँ जलाकर खुले द्वार के सामने एक कुर्सी डालकर

द्विजदास हाथ की पुस्तक को एक ओर रख सीधा बैठकर बोला—'क्या आज्ञा है ?'

'क्या पढ़ रहे थे ?'

'भूत की कहानी।'

'अतिथि बड़ा है या भूत की कहानी ?'

'भूत की कहानी बड़ी है।'

वन्दना झल्लाकर बोली—'सदा हँसी अच्छी नहीं ! हम आपके घर में अतिथि हैं, क्या आप नहीं समझते ?

द्विजदास ने कहा—'तुम लोग बड़े भैया के घर में अतिथि हो, इसे मैं भली भाँति जानता हूँ। और मकान-मालिक आज्ञा दे गये हैं कि तुम लोगों को किसी बात का कष्ट न होने पावे। कष्ट अवश्य न होता, किन्तु इस भूत की कहानी में खो जाने से कर्त्तव्य में किंचित् ढिलाई आ गई थी। इसलिए अतिथि से क्षमा चाहता हूँ।'

'जानते हो सारा दिन मुझे कितने कष्ट से बिताना पड़ा ?'

'अवश्य जानता हूँ।'

'अवश्य जानते हैं ? किन्तु दूर करने का कोई प्रयत्न किया है ?'

द्विजदास ने कहा—'नहीं, करने का पहला सबब पहले ही निवेदन किया है। दूसरा कारण है—दूर करना शक्ति से बाहर है।'

'क्यों ?'

'यह मुझे बतलाना न चाहिए।'

वन्दना पूछा—'माँ और मझली दीदी अचानक घर क्यों चली गईं ?'

मझली दीदी गई प्रबल शक्तिशालनी सास की आज्ञा से ही, वर्ना वह बिल्कुल निर्दोष हैं।'

'और माँ क्यों गईं ?'

'माँ को ही मालूम है।'

'क्या आप नहीं जानते ?'

द्विजदास ने कहा—'बिल्कुल नहीं जानता, यह कहना असत्य बोलना होगा, क्योंकि भाभी ने कुछ अनुमान किया है और मैंने भी उसको ठीक ही समझा है।'

वन्दना ने कहा—'वह अनुमान ही आपको मुझे बतलाना होगा।'

पल भर चुप रहकर द्विजदास ने कहा—'तब तो बड़ी कठिनाई में डाल दिया वन्दना। क्या इस बात को बिना सुने नहीं बनेगा।'

'नहीं, यह नहीं हो सकता। आपको बतलाना ही पड़ेगा।'

'यदि न सुनोगी तो क्या होगा?'

वन्दना ने कहा—'देखिए द्विजू बाबू, हमने तय किया था कि इस घर में मैं आपकी सभी बातें सुनूँगी आप भी मेरी सारी बातें सुनेंगे। आप जानते हैं कि आपकी एक भी आज्ञा का उलंघन मैंने नहीं किया। कहते हुए उसके नेत्रों से आँसू आ रहे थे और एक ओर देखकर उसने किसी प्रकार अपने को संयत लिया।'

दुखी होकर द्विजदास ने कहा—'एकदम बेतुकी-सी बात है; इसीलिए कहने की मेरी इच्छा नहीं थी। माँ तुम्हीं पर अप्रसन्न होकर चली गई हैं सही, किन्तु तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है। सारा दोष माँ का ही है। भाभी का भी कुछ है, क्योंकि प्रत्यक्ष न भी हो, परोक्ष रूप में षड्यन्त्र में शामिल हुई थीं, ऐसा मेरा सन्देह है। लेकिन सबसे निर्दोष है बेचारा द्विजदास।'

वन्दना चिन्तित हो उठी—'षड्यन्त्र किस बात का है बतलाइए न?

द्विजदास ने कहा—'षड़यन्त्र शब्द शायद उचित नहीं है। माँ ने मन-ही-मन हवाई किले बनाये थे, किन्तु हिसाब में गड़बड़ होने से जब भाग्य में शून्य ही हाथ लगा, तो सारे संसार पर बिगड़ उठीं। अप्रसन्न होना ठीक न होगा, बहुत कुछ आशा टूटने से उत्पन्न चोट खाया कह सकते हैं।'

चुपचाप वन्दना देखती रही। द्विजदास कहता गया—अवश्य जानती हो कि एक दिन तुम्हारे प्रति उनका जैसा बड़ा विराग था और किसी दिन उसी प्रकार गहरा स्नेह उत्पन्न हुआ। रूप, गुण, विद्या, काम-काज, एक भाभी को छोड़कर तुम माँ के सामने अद्वितीय हो गईं। तुम्हें मलेच्छ कहे, यह किसका साहस? उसी दम माँ कमर कसकर प्रणाम करने बैठ जातीं कि इतनी बड़ी शिष्ठवान् ब्राह्मण-कन्या, सारे भारतवर्ष को छान डालने से नहीं मिलेगी।' इतना कहकर द्विजदास अपने व्यंग के आनन्द में मजाक कर हँसने ल

यह हँसी वन्दना को बहुत बुरी लगी; लेकिन फिर भी वह

द्विजदास ने कहा—'असल में वही तो सबके लिए भयानक बात हो गई।'

वन्दना ने कहा—'किस कारण से इतना खतरा ?'

द्विजदास ने कहा—'मन लगाकर सुनो। दयामयी के दो बेटे हैं—बड़ा और छोटा। बड़े के प्रति जिस प्रकार अगाध आशा और भरोसा है, छोटे के प्रति उसी प्रकार असीम सन्देह और भय है। उनका विचार है कि निकम्मेपन में छोटे के बराबर संसार में कोई नहीं। किन्तु माँ हैं न ? गर्भ में धारण करके सन्तान को आसानी से तिलांजलि नहीं दे सकतीं, इसलिए मन-ही-मन पुत्र की भलाई का उपाय निकाला, तुम्हारे कन्धों पर उसे बिठाकर संसार की मरुभूमि निश्चिन्त होकर पार करा देंगी। लेकिन विधाता वाम हैं, अचानक कल शाम को जान पड़ा कि कन्धा खाली है नहीं।'

'माँ दयामयी के विचारों, सभी स्वप्न जालों को छिन्न-भिन्न कर कोई सुधीरचन्द्र वहाँ पहले ही से बैठे हैं, किसका साहस है जो उन्हें हिलाये ?' इतना कह उसने एक बार फिर अट्टाहास से कमरे को भर दिया।

वन्दना कुछ देर चुपचाप उसके मुख की ओर देखती रही, फिर पूछा—'इस प्रकार की विकट हँसी से आपका क्या तात्पर्य है ? माँ को नीचा देखना पड़ा है इससे या आपको छुटकारा मिल गया, उसी की प्रसन्नता है ? कौन-सा ?' मुस्कराते हुए द्विजदास ने कहा—'यद्यपि इन दोनों में एक भी नहीं, तब भी स्वीकार करने में संकोच नहीं कि अचानक इस प्रकार पैर फिसलने से माता धराशायनी हुई हैं। इससे दर्शन के तौर पर किंचित विशुद्ध आनन्द रस का उपभोग किया है। पर उनकी विशेष हानि नहीं होगी, यदि इससे कम-से-कम उन्होंने इतनी शिक्षा ली हो कि संसार में बुद्धि नाम की वस्तु उन्हीं की ही निजी सम्पत्ति नहीं है, उस पर और लोगों का अधिकार भी हो सकता है, क्योंकि मुझे न सही बड़े भैया को भी यदि माँ अपने षड्यन्त्र का आभास दे देतीं, तो और कुछ भले ही न होता, यह कर्म दण्ड तो उन्हें मिलता। बड़े भैया और मैं दोनों जानते थे कि तुम दूसरे की वाग्दत्ता तो, परस्पर-प्रणय शृंखला में आबद्ध हो, इसलिए इस व्यवस्था में हेरफेर होना सम्भव भी नहीं। और उचित भी नहीं।

वन्दना ने पूछा—'आप लोगों ने कब और किससे सुना ?'

द्विजदास ने कहा—'तुम्हारे पिता से। हमारे यहाँ आने के दिन ही राय साहब ने तुम्हारे प्रेम, वाग्दान और शीघ्र ही ब्याह की मनभावनी आलोचना से हम दोनों भाइयों के चार कानों में अमृत घोला था। नहीं-नहीं, अप्रसन्न मत होना वन्दना, सीधे-सादे निरीह आदमी हैं, अप्रसन्नता के कारण यह सुसंवाद आत्मीय जनों से छिपा रखने का प्रयोजन अनुभव नहीं किया।'

कुछ देर तक चुप रहकर वन्दना ने पूछा—'क्या इसीलिए मुखोपाध्यायजी ने मैत्रेयी को देखने के लिए हमें भेजा था?'

द्विजदास ने कहा—'यह मैं ठीक-ठीक नहीं जानता क्योंकि बड़े भैया के मन की सभी बातें देवताओं को भी मालूम नहीं। केवल इतना जानता हूँ कि उनके मन में मैत्रेयी देवी सर्वगुण सम्पन्ना कन्या है। बलरामपुर के धनी और महामाननीय मुखोपाध्याय घराने के लिए अयोग्य नहीं है।'

वन्दना ने पूछा—'मैत्रेयी देवी के बारे में आपका क्या विचार है?'

द्विजदास ने कहा—'इस घराने में यह प्रश्न अवैध है। मैं अन्य पुरुष हूँ; प्रथम और द्वितीय पुरुष अर्थात् माँ और बड़े भैया किसी भी लड़की के गले में मुझे बाँध देंगे, उसी के गले में मैं बड़ी प्रसन्नता से लटकता रहूँगा। यही इस घर की सनातन रीति है इसमें गड़बड़ नहीं हो सकती।'

उसके बोलने के ढंग से वन्दना हँस पड़ी और कहा—'और मान लीजिए, मैत्रेयी के बदले वन्दना के गले से ही आपको बाँध दें तो?'

माथे को ठोकर द्विजदास ने कहा—'हाय वन्दना यह आशा व्यर्थ है। [illegible] दुष्ट राहु ने पूर्णचन्द्र को ग्रस लिया है, कहाँ के सुधीरचन्द्र ने कलकत्ते में [illegible] ा मूसलचन्द बनकर सारा गुड़-गोबर कर दिया है। द्विजदास की [illegible] र के सामने जल कर राख हो गई। इस प्रसंग को बन्द करो, [illegible] तने [illegible] कर का हृदय टूक-टूक हो जायगा।' [illegible] माँ

उसकी नाटकीय भंगि से वन्दना एक बार हँसकर बोली—[illegible] सब कुछ तो नहीं जल गया था द्विजू बाबू, क्योंकि [illegible] उसने हृदय टूट भी नहीं सकता।' [illegible] र वह

द्विजदास ने सिर हिलाकर कहा—'यह मनोरमा [illegible] र बै [illegible] भाग्य बलवान था; लेकिन मैं सर्वसम्मति से हा [illegible]

घुल-मिलकर ही मेरे बने रहें।'

द्विजदास अचरज करके बोला—'ये सारी धारणाएँ तो तुम लोगों की हैं नहीं, यह तुमने सीखा किससे, वन्दना ?'

वन्दना ने कहा—'मुझे तो किसी ने भी नहीं सिखाया, द्विजू बाबू किन्तु माँ को, मुखोपाध्याय जी को देखकर ये बातें मेरे दिल में स्वयं ही आई हैं। इस परिवार में सभी मामलों में सबसे माँ बड़ी हैं, उसके बाद मुखोपाध्याय जी, उसके बाद दीदी, उसके बाद आप, यहाँ आनन्द का भी विशेष स्थान है। अगर इस घर में कभी स्थान मिला, तो इनसे नीचे ही मिलेगा, किन्तु यह मुझे कुछ भी अनुचित लगेगा नहीं।' यह सुनकर द्विजदास को जैसा अच्छा लगा उसी तरह मन व्यथा से भर गया। लेकिन वन्दना के दिल की बात को इस प्रकार जान लेना अन्याय है, इस आलोचना का बन्द होना आवश्यकता है। अपने को सख्त करके उसने कहा—'किन्तु माँ को हमारी इन बातों के बतलाने से कोई लाभ नहीं है वह तुम्हें बेटी के समान स्नेह करती हैं—यह मैं जानता हूं, इसीलिए सोलहो आने उन्हें आशा थी कि तुम इस घर की छोटी बहू होगी, तुम दोनों बहिनों के हाथों में अपने दोनों बेटों को सौंपकर वह कैलास जयेंगी, अगर वापस न आ सकीं, इसी दुर्गम-पथ में ही यदि मृत्यु का बुलावा आया, इस बात को मन में लेकर तब निश्चिन्त होकर जा सकेंगी कि उनके विशाल कुटुम्ब के उत्तरदायित्व के हस्तान्तरित करने में कहीं कोई भूल तो नहीं हैं। किन्तु अब यह नहीं हो सकता, उनके मतानुसार वाग्दान का अभिप्राय है सम्प्रदान। प्यार करके जिसे राय दी है, वही तुम्हारा स्वामी है। विवाह का मन्त्र पढ़ा नहीं गया है; इसीलिए उसे छोड़ भी सकती हो, किन्तु उस खाली आसन पर दयामयी का पुत्र बैठ नहीं सकेगा।'

यह सुनकर वन्दना का मुख पीला पड़ गया, पूछा—'द्विजू बाबू, माँ यह सब क्या कह गई हैं ?'

द्विजदास ने कहा—'कम-से-कम कहना असम्भव नहीं समझता वन्दना। भाभी ने कहा था कि माँ को सबसे अधिक चोट लगी है कि सुधीर हमारी जाति का नहीं है—तुम लोग जाति मानते नहीं। इतनी बड़ी खाई तो किसी प्रकार भरी न जा सकेगी।'

'क्या आप भी यही बात कहते हैं ?'

'मैं तो गैर आदमी हूँ वन्दना, मेरे कहने से क्या होता है ?'

राय साहब के भोजन का समय निकट आ रहा था। वन्दना उठ खड़ी हुई। बाहर जाने के पहले बोली—'पिता जी की छुट्टी समाप्त हो गई, कल वह चले जायंगे। क्या मैं भी उनके साथ चली जाऊँ, द्विजू बाबू ?'

द्विजदास ने कहा—यह भी क्या मुझसे ही पूछोगी वन्दना ? यदि जाती हो तो मुझे गलत न समझ बैठना। तुम्हारे जाने के बाद तुम्हारी ओर से अब सब बातें माँ को बतलाऊँगा, शरमाऊँगा नहीं। इसके बाद रह गई हमारी आज सन्ध्या समय की याद, रहा वन्देमातरम् का हमारा मन्त्र।

वन्दना मौन हो बिना उत्तर दिये कमरे से बाहर चल दी।

: १५ :

जब वन्दना अपने कमरे में लौटकर आई तो उसे अत्यन्त दुःख का अनुभव होने लगा। वह कैसी मतवाली हो गई थी कि निर्लज्ज भिक्षुक के समान अपने हृदय को खोलकर, सारी आत्म-मर्यादा को तिलांजलि दे आई ? लेकिन द्विजदास मर्द होकर भी जैसा रहस्यमय था, उसी प्रकार बना रहा। उसके चेहरे के हाव-भाव में न तो आग्रह था और न हर्ष, उसने न तो आशा दी और न धीरज बँधाया। वरन् इसी के बहाने बार-बार यही कहा कि वह गैर आदमी है। उसकी इच्छा-अनिच्छा इस कुटुम्ब में अप्रासंगिक है। केवल इतना ही माँ के नाम पर कहा कि वाग्दान का तात्पर्य है कन्यादान, निरपराध सुधीर के खाली आसन पर दयामयी का पुत्र नहीं बैठेगा ! किन्तु अपमान पात्र इतने से भी भरा नहीं। उसके नेत्रों में आँसू देखकर उसने आखिर में दयालु होकर इतना ही वचन दिया है कि वह वन्दना के निर्लज्जता की कहानी की चर्चा माँ के सामने करेगा।

लेकिन क्या बात यहीं समाप्त हुई ! द्विजदास की बात के उत्तर में उसने स्वयं ही कहा था, इस कुटुम्ब में जहाँ भी कोई है, सबसे छोटी होकर वह आना चाहती है। इसके आगे उससे सोचा नहीं गया, वहीं मौन होकर बैठी

घुल-मिलकर ही मेरे बने रहें।'

द्विजदास अचरज करके बोला—'ये सारी धारणाएँ तो तुम लोगों की हैं नहीं, यह तुमने सीखा किससे, वन्दना ?'

वन्दना ने कहा—'मुझे तो किसी ने भी नहीं सिखाया, द्विजू बाबू किन्तु माँ को, मुखोपाध्याय जी को देखकर ये बातें मेरे दिल में स्वयं ही आई हैं। इस परिवार में सभी मामलों में सबसे माँ बड़ी हैं, उसके बाद मुखोपाध्याय जी, उसके बाद दीदी, उसके बाद आप, यहाँ आनन्द का भी विशेष स्थान है। अगर इस घर में कभी स्थान मिला, तो इनसे नीचे ही मिलेगा, किन्तु यह मुझे कुछ भी अनुचित लगेगा नहीं।' यह सुनकर द्विजदास को जैसा अच्छा लगा उसी तरह मन व्यथा से भर गया। लेकिन वन्दना के दिल की बात को इस प्रकार जान लेना अन्याय है, इस आलोचना का बन्द होना आवश्यकता है। अपने को सख्त करके उसने कहा—'किन्तु माँ को हमारी इन बातों के बतलाने से कोई लाभ नहीं है वह तुम्हें बेटी के समान स्नेह करती हैं—यह मैं जानता हूं, इसीलिए सोलहो आने उन्हें आशा थी कि तुम इस घर की छोटी बहू होगी, तुम दोनों बहिनों के हाथों में अपने दोनों बेटों को सौंपकर वह कैलास जयेंगी, अगर वापस न आ सकीं, इसी दुर्गम-पथ में ही यदि मृत्यु का बुलावा आया, बात को मन में लेकर तब निश्चिन्त होकर जा सकेंगी कि उनके विशाल कुटुम्ब के उत्तरदायित्व के हस्तान्तरित करने में कहीं कोई भूल तो नहीं है। किन्तु अब यह नहीं हो सकता, उनके मतानुसार वाग्दान का अभिप्राय है सम्प्रदान। प्यार करके जिसे राय दी है, वही तुम्हारा स्वामी है। विवाह का मन्त्र पढ़ा नहीं गया है; इसीलिए उसे छोड़ भी सकती हो, किन्तु उस खाली आसन पर दयामयी का पुत्र बैठ नहीं सकेगा।'

यह सुनकर वन्दना का मुख पीला पड़ गया, पूछा—'द्विजू बाबू, माँ यह सब क्या कह गई हैं ?'

द्विजदास ने कहा—'कम-से-कम कहना असम्भव नहीं समझता वन्दना। भाभी ने कहा था कि माँ को सबसे अधिक चोट लगी है कि सुधीर हमारी जाति का नहीं है—तुम लोग जाति मानते नहीं। इतनी बड़ी खाई तो किसी प्रकार भरी न जा सकेगी।'

'क्या आप भी यही बात कहते हैं ?'

'मैं तो गैर आदमी हूँ वन्दना, मेरे कहने से क्या होता है ?'

राय साहब के भोजन का समय निकट आ रहा था। वन्दना उठ खड़ी हुई। बाहर जाने के पहले बोली—'पिता जी की छुट्टी समाप्त हो गई, कल वह चले जायंगे। क्या मैं भी उनके साथ चली जाऊँ, द्विजू बाबू ?'

द्विजदास ने कहा—यह भी क्या मुझसे ही पूछोगी वन्दना ? यदि जाती हो तो मुझे गलत न समझ बैठना। तुम्हारे जाने के बाद तुम्हारी ओर से अब सब बातें माँ को बतलाऊँगा, शरमाऊँगा नहीं। इसके बाद रह गई हमारी आज सन्ध्या समय की याद, रहा वन्देमातरम् का हमारा मन्त्र।

वन्दना मौन हो बिना उत्तर दिये कमरे से बाहर चल दी।

: १५ :

जब वन्दना अपने कमरे में लौटकर आई तो उसे अत्यन्त दुःख का अनुभव होने लगा। वह कैसी मतवाली हो गई थी कि निर्लज्ज भिक्षुक के समान अपने हृदय को खोलकर, सारी आत्म-मर्यादा को तिलांजलि दे आई ? लेकिन द्विजदास मर्द होकर भी जैसा रहस्यमय था, उसी प्रकार बना रहा। उसके चेहरे के हाव-भाव में न तो आग्रह था और न हर्ष, उसने न तो आशा दी और न धीरज बँधाया। वरन् इसी के बहाने बार-बार यही कहा कि वह गैर आदमी है। उसकी इच्छा-अनिच्छा इस कुटुम्ब में अप्रासंगिक है। केवल इतना ही माँ के नाम पर कहा कि वाग्दान का तात्पर्य है कन्यादान, निरपराध सुधीर के खाली आसन पर दयामयी का पुत्र नहीं बैठेगा ! किन्तु अपमान पात्र इतने से भी भरा नहीं। उसके नेत्रों में आँसू देखकर उसने आखिर में दयालु होकर इतना ही वचन दिया है कि वह वन्दना के निर्लज्जता की कहानी की चर्चा माँ के सामने करेगा।

लेकिन क्या बात यहीं समाप्त हुई ! द्विजदास की बात के उत्तर में उसने स्वयं ही कहा था, इस कुटुम्ब में जहाँ भी कोई है, सबसे छोटी होकर वह आना चाहती है। इसके आगे उससे सोचा नहीं गया, वहीं [illegible] हो[illegible] बैठी

सोचती रही कि वह वास्तव में बहुत छोटी हो गई है—इतनी छोटी कि आत्म-हत्या करने पर भी इस हीनता का प्रायश्चित नहीं हो सकेगा।

किसी ने बाहर आकर सूचना दी कि राय साहब उसे बुला रहे हैं। उठकर वह पिता के कमरे में गई, वहाँ बार-बार हट करके उन्हें राजी किया कि कल ही उन लोगों को बम्बई चल देना होगा, यद्यपि तय था विप्रदास के वापस आने पर रात की गाड़ी से रवाना होने का। एक दम इस प्रकार से चला जाना उचित नहीं होगा। इसमें राय साहब को संशय नहीं था—छुट्टी भी थी, खुशी से रहा भी जा सकता था, तो भी बेटी की बात उन्हें माननी पड़ी।

बिस्तर पर पड़े-पड़े वन्दना के नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली, इसके बाद न जाने वह कब सो गई। सवेरे उठकर उसने अपनी और पिता की चीज-वस्तुएँ बाँध डालीं, फोन करके सीट रिजर्व कराई और बम्बई तार भेज दिया। शाम की गाड़ी थी, परन्तु किसी प्रकार भी विलम्ब उससे सहा नहीं जा रहा था।

इस समय नौ बजे थे, अन्नदा कमरे में आकर आवाक् हो गई 'यह क्या ?' वन्दना मैले कपड़ों की तह लगाकर एक बक्स में रख रही थी, बोली—ज हम जायँगे।'

'आज तो नहीं जाना है दीदी। जाना तो कल है।'

'नहीं, आज ही जायँगे।' कहकर बिना मुँह उठाये वह काम करने लगी।

अन्नदा पलभर चुप रहकर बोली—'आप उठिए, मैं सँभालकर धर देती हूँ। आपको कष्ट हो रहा है।'

'कष्ट करने की आवश्यकता नहीं, अपने काम पर जाओ।' इस घर के ाभी लोगों से मानो उसे कुछ घृणा हो गई थी।

कारण न ज्ञात होने पर भी अन्नदा यह जानती थी कि कुछ क्रोध में हैं। ाचानक कल माँ घर चली गई, आज वन्दना भी उसी प्रकार अचानक चली ाने के लिए प्रस्तुत है। किन्तु क्रोध के बदले क्रोध करना अन्नदा का स्वभाव हीं है, वह जैसी सहनशील है वैसी सौम्य। कुछ देर तक मौन खड़ी रहकर टूटे ार में बोली—'मुझसे भूल हो गई है दीदी, आज समय पर न उठ पाई।

सिर उठाकर वन्दना बोली—'मैंने तो उसका कारण पूछा नहीं अन्नदा,

आवश्यकता हो तो इसका उत्तर अपने मालिक को देना। द्विजू बाबू से कहो, वे अपने कमरे में ही हैं।' कहकर वह फिर काम में लग गई। वन्दना पिता की अकेली सन्तान होने के कारण कुछ अधिक लाड़-प्यार में ही पली थी। इसलिए सहन-शक्ति उसमें बिल्कुल भी नहीं थी। साथ ही कड़वी बातें कहने की कुशिक्षा भी उसे नहीं मिली थी और शायद जीवन में इतनी कड़ी बात भी उसने किसी को नहीं कही थी। इसलिए उक्त बात कहकर वह मन-ही-मन लज्जित हो रही थी, इसी समय अन्नदा ही सलज्ज कोमल स्वर में कहने लगी—'डॉक्टर लोग गये, पौ फटने वाला था, सोचा कि अब नहीं सोऊँगी सोई भी नहीं, किन्तु दीवार के सहारे बैठते ही कैसे नींद लग गई, कब सवेरा हो गया, कुछ भी जान न सकी। और मालिक की बात कह रही हैं दीदी, लेकिन क्या आप भी मेरी मालकिन नहीं हैं? बतलाइये तो, यह गलती मुझसे और कभी क्या हुई है? उठिये, मैं सँभाल कर रख दूं।' शायद अन्तिम बातें वन्दना के कानों में नहीं गईं, अन्नदा की ओर देखकर बोली—'डॉक्टर लोग चले गये, इसका मतलब क्या?' अन्नदा ने कहा—'कल रात को द्विजू बहुत बीमार हो गया था। यहाँ आने के पश्चात् ही उसकी तबीयत खराब है, लेकिन कुछ परवाह ही नहीं करता। कल माँ आदि के घर जाने की बात सुन मुझे बुलाकर कहा—माँ को ज्ञात न होने पावे, किन्तु बड़े भैया से कहकर मेरा जाना ही रुकवा दो अनु, मानो आज इतना दुर्बल हूँ कि मुझसे उठा नहीं जाता।'

'उसे पाला-पोसा है, वह सब बातें मुझसे कहता है।' वन्दना बोली—'यह क्या कहती हो? तबीयत खराब है तो छिपाती क्यों हो?' उसका स्वभाव ही है हँसकर टाल देना। चाहे बात कितनी भी गम्भीर क्यों न हो। उसी प्रकार तनिक हंसकर बोला—'तुम उन लोगों को रवाना तो करो, तब अपने आप अच्छा हो जाऊंगा।' माँ से उसकी पटती नहीं है, कहीं साथ नहीं जाना चाहता है, शायद उससे बचने का ही यह एक उपाय है।'

इसी कारण और कुछ कहा नहीं। बड़े भैया उन्हें साथ लेकर चले गये। इसके बाद सारा दिन उसने सोकर बिताया, कुछ नहीं खाया। दोपहर को जाकर पूछा—'द्विजू, कैसे हो?' बोला—'अच्छा हूँ।' 'लेकिन उसका मुख इस बात की साक्षी नहीं दे रहा था। डॉक्टर बुलवाना चाहा, द्विजू ने किसी प्रकार

बुलाने नहीं दिया, बोला—'क्यों व्यर्थ भैया का पैसा खर्च कराओगी, तुम्हारी फिजूलखर्ची सुनकर मालकिन अप्रसन्न होंगी।' माँ से उसका यह नाराज होना नहीं सहा गया। सारा दिन नहीं खाया, विस्तर पर पड़ा रहा, सन्ध्या को जाकर पूछा—'द्विजू, तबीयत यदि सचमुच में खराब नहीं है, तो सारा दिन विस्तर पर पड़े पड़े क्यों विता रहे हो?' वह उसी प्रकार हँसकर बोला—'अनु, शास्त्र में लिखा है कि विस्तर पर पड़े रहने से बढ़कर कोई पुण्य कार्य संसार में नहीं है, इससे मुक्ति होती है। तनिक पारलौकिक मंगल की चेष्टा में हूँ। तुम भय मत करो। सभी बातों में उसे व्यंग सूझता है, बातचीत में उससे पार पाना कठिन है, गुस्सा होकर चली आई; किन्तु मन का भय हटा नहीं।' एक पुस्तक लेकर उसने पढ़नी आरम्भ कर दी।

कुछ रुककर अन्नदा फिर कहने लगी—'शायद तब रात के बारह बजे थे, मेरे किवाड़ पर थपकी सुनाई दी। पूछा, कौन है?' बाहर से उत्तर मिला—मैं हूँ अनु। दरवाजा खोलो। द्विजू इतनी रात को क्यों बुला रहा है, जल्दी से द्वार खोलकर बाहर निकल आई—'द्विजू, यह कैसी सूरत है! आँखें अन्दर धँस गई हैं, कण्ठ बैठ गया है, शरीर थरथरा रहा है, फिर भी हँसी!' वह बोला—अनु, तुमने ही मुझे बड़ा किया है इसलिए तुम्हारी नींद नष्ट की। अगर नेत्र मूँदने ही पड़े तो तुम्हारी गोद में ही सिर रखकर मूँदूँगा।'—कहकर वह रो पड़ा और उसके नेत्रों से आँसुओं की धारा बह निकली। मानो उसका रोना थमना ही न चाहता था, ऐसा अटूट था उसका भीतरी भावावेश। स्वयं को सँभालने में उसे बहुत देर लगी तब उसके मुख से आवाज निकली। हृदय से लगाकर उसे कमरे में ले गई, किन्तु जैसी खुश्क कै थी, उसी प्रकार पेट की पीड़ा—ऐसा मालूम होता था जैसे रात्रि व्यतीत न हो पायगी, कब दम निकल जायगा। डॉक्टरों को सूचना दी गई, सब आ पहुँचे। इन्जेक्शन तथा दवा दी, गरम पानी की गर्मी से सेंकना शुरू हुआ—सब नौकर जाग उठे। सवेरे द्विजू सो गया। डॉक्टर बोले—अब भय की बात नहीं। किन्तु रात्रि कैसे बीती दीदी, यह सोचने से ज्ञात होता है, कोई बुरा सपना देख रही हूँ—यह सब-कुछ नहीं हुआ था!' कहकर फिर अन्नदा ने आँचल से अपने नेत्र पोंछे।'

वन्दना ने धीरे-धीरे कहा—'मुझे कुछ भी मालूम न हो सका, मुझे क्यों

नहीं जगाया ?'

अन्नदा ने कहा—'सुबह इसी परेशानी में बीती, आपको कष्ट नहीं दिया। नहीं तो द्विजू ने कहा था—वन्दना ने इस बात को छोड़ दिया, बोली—'कैसे हैं अब द्विजू बाबू ?'

अन्नदा बोली—'ठीक है, नींद में है। डॉक्टर लोग कह गये हैं कि शायद शाम के पहले नींद न टूटेगी। बड़े बाबू आ जायँ तो भय दूर हो दीदी।'

'उस कमरे में तो आदमी हैं न ?'

'हाँ दीदी, दो आदमी बैठे हैं।'

'अब डॉक्टर फिर कब आवेंगे ?'

'शाम के पहले ही आवेंगे। कह गये हैं कि अब भय की बात नहीं।' डॉक्टर निडर कर गये हैं, वन्दना के लिए यही एक भरोसे की बात है। इसके अतिरिक्त उसके लिए करने को और रखा ही क्या है ?

द्विजदास की बीमारी की खबर वन्दना ने जाकर पिताजी को दी, किन्तु अधिक बोली नहीं। उन्होंने इतना ही सुना तो बेचैन होकर कहा—'मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम हुआ ? नहीं, हमें नींद से जगाना किसी ने उचित न समझा, किन्तु यह तो ठीक नहीं हुआ !'

वन्दना चुप रही। बहुत देर के बाद वह स्वयं ही बोले—'टिकट खरीदने के लिए भेजा है—सीट रिजर्व हो गई। देखता हूँ कि हमारे जाने में कुछ विघ्न हुआ।'

वन्दना ने कहा—'विघ्न क्यों होगा पिताजी, हम ठहरकर ही उन लोगों का कौन-सा उपकार कर सकेंगे ?'

'नहीं, उपकार नहीं, किन्तु फिर भी...।'

'नहीं पिताजी, इसी प्रकार बराबर विलम्ब होता जा रहा है, अब तुम अपनी राय न बदलो। इतना कहकर वन्दना बाहर आ गई।'

दोपहर के बाद वन्दना के कमरे में जाकर अन्नदा फर्श पर बैठ गई। उनके जाने में अभी दो घण्टे की देर थी। वन्दना ने पूछा—'अच्छे हैं न द्विजू बाबू ?'

अन्नदा ने कहा—'अच्छे हैं, लेकिन निद्रा में हैं।'

वन्दना ने कहा—'जाते समय किसी से हमारी भेंट न हुई। शायद तब तक द्विजू की नींद नहीं खुलेगी और बड़े बाबू जब घर पहुँचेंगे तब हम बहुत दूर गए होंगे।'

हुङ्कारी भरती हुई अन्नदा बोली—'हाँ, बड़े भैया रात के नौ बजे के लगभग आयेंगे। वह आ जायँ तो सभी को छुटकारा मिले। सभी का भय हटे।'

'किन्तु भय की तो कोई बात नहीं अन्नदा।'

अन्नदा ने कहा—'नहीं, यह सच है, लेकिन बड़े भैया का घर में रहना ही दूसरी बात है दीदी, तब किसी का भी कोई उत्तरदायित्व नहीं, सब उनका ही है। जैसी बुद्धि है वैसा ही विचार, वैसा ही साहस और वैसी ही गम्भीरता। सभी ऐसा अनुभव करते हैं मानो उन पर बरगद की छाया है।'

वही पहले की बात। मालकिन के विषय में यह भावना मानो इसकी नस-नस में समा गई है। दूसरा अवसर होता तो वन्दना ताना देने से बाज न आती किन्तु इस समय चुप रह गई। अन्नदा कहने लगी—'और यह द्विजू—मानो दोनों भाई दुनिया के दो अंग हैं।'

अचरज में वन्दना ने पूछा—'क्यों?'

अन्नदा ने कहा—'और नहीं तो क्या दीदी, न है उत्तरदायित्व का विचार, न है झञ्झट, न है गम्भीरता, वह जाड़े का बादल है, न है बिजली न है पानी, उड़ता फिरता है, मामला कितना भी पेचीदा क्यों न हो हँस-खेलकर वह समय काट ही लेगा। न गृहस्थ है, न वैरागी। कितने कर्जदारों ने उससे 'चुकता पाया' लिखवाकर मुक्ति पाई, इसका लेखा नहीं।'

वन्दना ने कहा—'मुखोपाध्याय जी क्रोधित नहीं होते?'

'होते जरूर हैं, खूब होते हैं, विशेष कर माँ। किन्तु उसका पता चलेगा कहाँ? कुछ दिनों के लिए इस प्रकार लापता हो जाता है कि भाभी रोना-पीटना शुरू कर देती है। तब ढूँढ़कर उसे पकड़ लाते हैं। लेकिन इस प्रकार से तो सदा नहीं चल सकता दीदी, उसकी शादी होगी, बाल बच्चे होंगे, तब तो ऐसा करने से दिवा लिया ही होगा।

वन्दना ने कहा—'यह तुम लोग उनसे कहते क्यों नहीं?'

अन्नदा ने कहा—'बहुत कुछ कहा सुना गया; किन्तु वह सुनता कहाँ है !'

वह कहता है—तुम लोग चिन्ता क्यों करते हो ? यदि दिवालिया हुआ तो मैं हूँगा, भाभी तो दिवालिया होंगी नहीं। तब सब मिलकर उनके कन्धे पर सवार होंगे।

वन्दना ने हँसकर पूछा—'क्या कहती हैं मझली दीदी !'

अन्नदा ने कहा—'देवर के लिए उनका प्रेम का ठिकाना नहीं। कहती हैं—हम खायेंगे द्विज क्या भूखा रहेगा ? पाँच सौ रुपयों की मेरी आमदनी को तो कोई रोक नहीं सकेगा, गरीबी ढंग से हमारा उसी से चल जायेगा। अपने लाखों रुपये लेकर बड़े बाबू सुख से रहें, हम उनसे माँगने नहीं जायँगे।'

यह सुनकर वन्दना को कितना अच्छा लगा, इसकी सीमा नहीं। जिसने कहा है वह उसी की बहिन है। किन्तु जिस समाज, जिस वायु मण्डल में वह बड़ी हुई है, वहाँ ऐसी बात कोई न कहता है, और न शायद सोच ही सकता हैं। कहने की कभी आवश्यकता पड़ती है या नहीं, यही किसे मालूम !

किन्तु अन्नदा जो कुछ कह रही थी मानो वह पुराने समय की कोई कहानी थी। ये एक ही परिवार में रहते हैं, केवल बाहरी आकार नहीं भीतरी प्रकार भी वैसा ही है। अन्नदा यहाँ केवल महरी ही नहीं है, वह द्विजदास की दीदी है। जवानी ही नहीं, आज भी उनकी सारी बातें इसी से होती हैं। इसी अन्नदा के पति इसी कुटुम्ब का काम करते-करते स्वर्ग सिधारे। उसका बेटा यहीं बड़ा होकर अपना जीवन-यापन कर रहा है। अन्नदा को काम की कमी नहीं है, फिर भी माया का बन्धन नहीं तोड़ा जाता। इस बड़े धनी परिवार से ऐसे कितने ही परिवार पीढ़ियों से जुड़े हैं। दयामयी की शरारती सन्तान द्विजदास ने भी कल कहा था—उसको माँ, बड़े भैया, भाभी, अपनी गृहदेवता अतिथिशाला सभी लेकर ही वह है—उनसे पृथक करके वन्दना किसी दिन उसे पायेगी, इसकी आशा नहीं हैं। तब वन्दना ने अस्वीकार नहीं किया था फिर आज ही एक बार उसके वास्तविक अर्थ को समझी।

बात समाप्त नहीं हुई थी, बहुत कुछ जानने के लिए उनकी इच्छा बलवती हो उठी, किन्तु बाधा पड़ी। नौकर ने आकर सूचना दी कि राय साहब बेचैन

हो रहे हैं, छः बजे हैं। रवाना होने के लिए एक घण्टे से अधिक का समय नहीं है। वन्दना को प्रस्तुत होने के लिए उठना पड़ा।

ठीक समय पर राय साहब नीचे उतरे, उतरते हुए बेटी का नाम लेकर एक बार पुकारा, वन्दना के कानों में उनकी आवाज पहुँची। चाहे वह काम कितना ही अनुचित हो, चाहे कितनी ही अनिच्छा हो, जाना पड़ेगा ही। बार-बार हठ करके यह प्रवन्ध उसने स्वयं ही कराया है, उसमें हेर-फेर अब नहीं हो सकता। कमरे से जब बाहर निकली तो यही बात सबसे पहले मन में आई कि भविष्य में जहाँ तक दृष्टि जाती है, कभी किसी वहाने से यहाँ लौटने की आशा नहीं है, किन्तु उसके कितने ही सुखद स्वप्नों से यह घर भरा रहा, इसे वह कभी भुला नहीं सकेगी, सीधे रास्ते को छोड़कर द्विजदास के बगल वाले बरामदे से घूमकर उतरते हुए उसने कमरे के अन्दर एक दृष्टि डाली। लेकिन जो खिड़की खुली हुई थी, उसके अन्दर द्विजदास दिखाई नहीं दिया।

दत्त जी मोटर के पास खड़े हुए थे, राय साहब ने उन्हें बुलाकर नौकरों को देने के लिए बहुत से रुपये दिये और अचानक चले जाने के लिए दुःख करके द्विजदास के समाचार शीघ्र ही भेजने के लिए प्रार्थना की।

गाड़ी में बैठने के पहले अन्नदा को एक बार लेजाकर वन्दना ने कहा—'द्विजू की तुम बहिन हो, उन्हें पालपोस कर बड़ा किया है—अनु दीदी, यह अँगूठी उनकी बहू को पहनने के लिए दे देना।' यह कह अँगूठी निकाल कर उसके हाथ में देकर पिता की बगल में जा बैठी। मोटर चल पड़ी। वहाँ पर खड़े नौकर और दत्तजी ने नमस्कार किया।

अचानक वन्दना ने आँखें ऊपर उठाईं। लेकिन आज वहाँ विदा करने के लिए द्विजदास नहीं था। आज वह बीमार है, और नींद में बेहोश।

: १६ :

दयामयी के व्यवहार में वन्दना के प्रति जो गुप्त लांछना तथा अपमान था, सती के हृदय में यह बात जम गई थी, लेकिन सास को कुछ कहना सुगम नहीं है, इसीलिए उसने एक पत्र लिखकर बहिन के हाथ में देने के लिए स्वामी

को कमरे में बुलाया। दोपहर की गाड़ी से विप्रदस कलकत्ता वापस जावेगा। इसी समय दयामयी आ उपस्थित हुई। ऐसा तो कभी करती नहीं हैं—बेटा और बहू दोनों को आश्चर्य हुआ—सती सिर पर आँचल खींच कर बाहर जाने को थी, माँ ने मना करते हुए कहा—'नहीं बहू, जाना नहीं। तुम्हारी अनुपस्थिति में तुम्हारी बहिन की बुराई न करूँगी, जरा ठहरो। इतनी दुखी होकर घर क्यों चली आई, यह विपिन को मालूम है?'

विप्रदास ने कहा—'अच्छी तरह नहीं मालूम माँ, किन्तु कहीं कुछ गड़बड़ी हुई है इतना ही अनुमान लगाया है।'

माँ ने कहा—'गड़बड़ी हुई नहीं, किन्तु हो सकती थी इससे दुर्गा माता ने मेरी रक्षा की है। कल समधी जी बम्बई चले जायँगे, बात थी उसके बाद वन्दना आकर कुछ दिनों अपनी मझली दीदी के पास रहेगी, लेकिन लड़की के मस्तिष्क में यदि कुछ भी बुद्धि होगी तो यहाँ अब वह आना पसन्द न करेगी, पिता के साथ सीधी बम्बई चली जायगी। यदि जाती नहीं है तो जाने के लिए कह देना। मन में दुःख न करो बहू, ऐसी बहिन को बनवास दिया जा सकता है, लेकिन घर में लाकर नहीं रखा जा सकता।'

विप्रदास चुपचाप देखता रहा, उसके आश्चर्य की सीमा न थी। दयामयी कहती गईं—'मेरा अभाग्य है कि उसे प्यार करने गई थी, समझा था कि वह हम ही लोगों में से एक है। उसके आचरण में त्रुटियाँ हैं—सोचा था वह सब स्कूल-कॉलेज में पढ़ने का फल है—चन्द्रमा के सामने उड़ते बादलों के समान वायु लगने पर वह उड़ जायगा—ठहरेगा नहीं, कुछ भी सही, सती की बहिन तो है! किन्तु उसने कायस्थ के घर से वर चुन लिया, किसे मालूम था, विपिन, ब्राह्मण के घर में जन्म लेकर उनका इतना अधःपतन होगा!'

विप्रदास ने कहा—'बात यही है। यह खबर तो तुमने सुनी थी माँ कि जात-पाँत वे नहीं मानते!'

दयामयी ने कहा—'सुना तो था; लेकिन आँख से देखा नहीं था, शायद नानी की कहानी के समान भी न समझ सकी। किन्तु आँख से देखने से किसी पर किसी को इतना क्रोध हो जाता है यह बिलकुल नहीं जानती थी।' इतना कहते-कहते मानो वह घृणा से काँप उठीं। कहा—'चूल्हे में जाय। जो मन हो

करे, मेरी वह है कौन; लेकिन अब मेरे घर में आ नहीं सकती।'

विप्रदास को चुप देखकर बोलीं—'उत्तर क्यों नहीं दिया विपिन ?'

'उत्तर तो तुमने माँगा नहीं, माँ। आदेश दिया कि वन्दना न आवे—ऐसा ही होगा।'

दयामयी ने उसकी बात सुनी तो बोली—'क्या मैं अनुचित आज्ञा दे रही हूँ ?'

'अनुचित क्यों नहीं मालूम होता माँ! वन्दना ने अनुचित कुछ नहीं किया, सामाजिक आचार-व्यवहार में हमसे उनका मेल नहीं खाता, वे जाति नहीं मानते, इस बात को जानते हुए ही उसे तुमने आने के लिए बुलाया था, प्यार भी किया था, शायद तुम्हें आशा थी वे मुँह से कहते ही हैं, काम में जाते नहीं—यही तो तुमने भूल की, इसीलिए मन को चोट भी लगी है।'

दयामयी ने कहा—'सम्भव है सच हो; किन्तु उसकी शादी की बात सुनकर मुझे भी घृणा नहीं मालूम होती ? सुना तो कहता क्या है तू ?'

मुस्कराते हुए विप्रदास ने कहा—'उसकी शादी अभी हुई नहीं है, किन्तु होने पर भी मुझे क्रोध करना उचित नहीं माँ। बल्कि यह सोच कर श्रद्धा ही करूँगा उनका विश्वास अटल है। उन्होंने किसी को धोखा नहीं दिया, लेकिन कलकत्ते में बहुतेरों को देखा है जो शब्द-जाल में कुछ नहीं मानते, जाति-भेद का भरोसा भी नहीं करते, गालियाँ भी देते हैं, लेकिन काम के समय खोजने पर दर्शन नहीं होते। सबसे अधिक अश्रद्धा मैं उन्हें ही करता हूँ!' अप्रसन्न न हो माँ तुम्हारा द्विजू ऐसा ही है।'

दयामयी सुनकर मन-ही-मन अप्रसन्न हुईं, ऐसी बात नहीं। द्विजू के विषय में कहा—'वह ऐसा ही चकमेबाज है। किन्तु अच्छा विपिन, यदि वन्दना से तू घृणा नहीं करता तो उसका छुआ कुछ क्यों नहीं खाता ? उसे रसोई घर में भेजती थी, इसीलिए तू खाना छोड़कर मेरे घर में खाने लगा। कोई दूसरा भले न समझे, क्या तू सोचता है कि मैं नहीं जानती ?'

विप्रदास ने कहा—'तुम नहीं जानोगी तो माँ क्यों हुई थीं ? किन्तु मैं तो सचमुच ही जाति मानता हूँ माँ; मैं तो उसका छुआ खा नहीं सकता। जिस दिन नहीं मानूँगा उसी दिन सबके सामने उसके हाथ का खाऊँगा, तनिक भी

छिपाऊँगा नहीं।'

दयामयी ने कहा—'तू नहीं समझा विपिन कि किस प्रकार मैं उससे यह बात छिपाये फिरती थी। यहाँ लड़की आये चाहे न आये लेकिन देखना यह बात वह कभी न जान पाये। उसे गहरी चोट लगेगी। तुम पर वह बहुत भरोसा करती है।' उनकी अन्तिम बातें मानो एकाएक स्नेह सिंचित हो गईं।

हँसकर विप्रदास ने कहा—'वह मुझ पर विश्वास करती है या नहीं, मैं नहीं जानता, लेकिन उसका छुआ नहीं खाता, यह उसे मालूम है।'

'ऐसी अभिमानी लड़की, यह जानते हुए भी तुझ पर इतना विश्वास करती है!'

'विश्वास करने की बात तो तुम्हीं लोग जानती हो माँ, किन्तु मैं जानता हूँ कि वह बहुत बुद्धिमती है, तुम्हारी सारी लुकाछिपी वहाँ व्यर्थ हो गई।'

क्षण भर चुप रहकर दयामयी ने न जाने क्या सोचकर कहा—'शायद इसीलिए वह इतनी विनती करती थी?'

'इसका तात्पर्य?'

दयामयी ने कहा—'मैं विधवा हूँ, मेरा भात-भत्ते से ही काम चल जाता है, वह ऐसा कभी होने न देगी। बाजार से भाँति-भाँति की नई तरकारियाँ मँगावेगी, अपने हाथों से उसे धोकर काटेगी, महाराजिन बुआ से बरबस बनवाकर ही छोड़ेगी। वह जानती थी कि जिसे सामने आकर नहीं दिया जा सकता उसे दूसरे के हाथों से ही घूस भेजना चाहिए। क्यों, खाकर भी नहीं जान सका विपिन, उस प्रकार की रसोई महाराजिन के पुरखे भी नहीं बनाना जानते।'

हँसते हुए विप्रदास ने उत्तर दिया—'नहीं माँ, उतना ध्यान नहीं दिया। केवल बीच-बीच में सन्देह होता था कि तुम्हारे अतिथियों के उस रसोई-घर के विशाल आयोजन के कुछ टुकड़े शायद हमारे इस रसोई-घर में आ पहुँचे हैं। लेकिन यह दैवकृत नहीं, एक आदमी का इच्छाकृत है। यह तुम्हीं ने बता[illegible] है। लेकिन अपनी अन्तिम आज्ञा बता दो माँ, गाड़ी का समय हो गया, मुझे अभी दौड़ना पड़ेगा, उसे बुलाती हो या नहीं?'

दयामयी ने सती से पूछा—'तुम्हारी क्या राय है बहू ?'

लड़कपन में सती सास के सामने पति से बोला करती थी, किन्तु अब नहीं बोलती। अवसर कतराकर चल देती है, या चुप रह जाती हैं, लेकिन आज धीरे से बोली—'रहने दो माँ, अब यहाँ लाने की उसे कोई आवश्यकता नहीं है।'

उत्तर सुनकर सास प्रसन्न न हो सकी। उसकी इच्छा दूसरी थी, लेकिन अपने मुंह से प्रकट भी नहीं कर सकती थी। कहने लगी—'बड़े आदमी की बेटी क्या अप्रसन्न हो गई ?'

'अप्रसन्न नहीं माँ; किन्तु जो कुछ करके हम चली आई हैं, उसके बाद अब उसे बुलाया नहीं जा सकता।'

'क्यों बहू, यदि त्रुटि एक हो ही गई, तो क्या उसका सुधार नहीं हो सकता ?'

'सुधार नहीं हो सकता यह नहीं कहती, किन्तु आवश्यकता क्या है ? पहले भी उसने कई बार आने की इच्छा की हैं, किन्तु कभी राजी नहीं हो सकी, अब भी सारी बाधाएँ वैसी ही बनी हुई हैं। वह घुसती थी इसीलिए उन्होंने रसोई का जाना छोड़ दिया था, उसे यहाँ लाने की क्या आवश्यकता है ?'

विप्रदास ने कहा—'उसी की यह शिकायत है, तुम्हारी नहीं।' हँसकर कहा—'फिर भी वन्दना मुझ पर बहुत विश्वास करती है, माँ स्वयं इसकी साक्षी हैं।'

सिर उठाकर सती ने देखा शायद भूल गई कि सास हैं, कहने लगी—'केवल माँ क्यों, मैं भी उसकी गवाह हूँ। लड़कियाँ जब विश्वास करती हैं, तब शिकायत नहीं करतीं। देवी-देवता भी कम कष्ट नहीं देते, फिर भी पूजा बन्द नहीं करतीं, कहती हैं—उन्होंने अच्छाई के लिए ही दु:ख दिया है।' सास ने कहा—'तुम पर भी वन्दना ने कम विश्वास नहीं किया है माँ, कम प्यार नहीं किया है, तुम्हारा विचार है तुम्हारे घर में भोजन का प्रबन्ध करती थी, केवल उनके लिए ? किन्तु बात ऐसी नहीं, वह करती थी तुम दोनों के लिए ही—तुम दोनों को प्यार करती थी, उस पर तुमने भी किया था। रसोई-घर का भार—

सभी को खिलाने का काम लेकिन तुम्हारी उपेक्षा करके वह और सभी को पुलाव कलिया नहीं खिला सकती थी माँ, भात-भर्ता सभी को निगलना पड़ता, किन्तु अब उसे लेकर खींचतान क्यों ? जो हम लोगों ने चाहा था उसकी आशा समाप्त हो गयी—वह अब नहीं लौटेगी !'—इतना कहकर सती जल्दी से चली गई ।

अचरज से विप्रदास और दयामयी दोनों मौन रह गये । ऐसी उक्ति, ऐसा आचरण सती के स्वभाव के लिए ऐसी अनहोनी है कि सोचा ही नहीं जा सकता कि वह अपने होश में है ! विप्रदास ने पूछा—'क्या मामला है माँ ?'

दयामयी ने कहा—'मालूम तो है मुझे ।'

'तुम लोगों ने किस लिए वन्दना की चाह की थी माँ ? कैसी आशा की समाप्ति हो गई ?'

मन-ही-मन दयामयी लज्जा से भर गई, किसी भी प्रकार अपने संकल्प को प्रकट न कर सकीं । केवल बोलीं—'वे बातें आज नहीं किसी और दिन बताऊँगी ।'

'अक्षय बाबू की कन्या के सम्बन्ध में क्या कुछ तय किया, माँ, कोई उत्तर तो उन्हें देना चाहिए ?'

'मुझे उज्र नहीं विपिन, तुम लोगों की सलाह हो तो ठीक है ! द्विजू से भी पूछना, वह क्या कहता है ।' इतना कहकर वह भी घर से बाहर चली गई । विप्रदास उधेड़बुन में पड़ा रहा । बात कुछ विशेष स्पष्ट नहीं हुई, किन्तु स्पष्ट कर लेने के लिए अब समय भी नहीं था ।

जब विप्रदास कलकत्ता गया तो देखा कि मकान खाली है । वन्दना और उसके पिता कुछ ही घण्टे पहले चले गये हैं । इसकी आशंका उसे बिल्कुल नहीं थी ऐसी बात नहीं, किन्तु इतनी आशंका भी उसने की नहीं थी । अन्नदा को मालूम नहीं, केवल इतना जानती है कि राय साहब का जाने का उतना मन नहीं था, लड़की हठ करके पिता को घसीट ले गई है । वन्दना पर कोई दबाव नहीं है, रहने की जिम्मेवारी भी उसकी नहीं है, वह केवल मेहमान है, फिर भी वह भेंट किये बिना ही पीड़ित द्विजदास को अचेत छोड़कर अकारण व्यस्तता से चली गई सोचकर उन्हें खेद हुआ । क्रोध में जैसे निर्दय कठोर कहकर मानो

दयामयी ने सती से पूछा—'तुम्हारी क्या राय है बहू ?'

लड़कपन में सती सास के सामने पति से बोला करती थी, किन्तु अब नहीं बोलती। अक्सर कतराकर चल देती है, या चुप रह जाती है, लेकिन आ धीरे से बोली—'रहने दो माँ, अब यहाँ लाने की उसे कोई आवश्यकता नहीं है।'

उत्तर सुनकर सास प्रसन्न न हो सकी। उसकी इच्छा दूसरी थी, लेकि अपने मुंह से प्रकट भी नहीं कर सकती थी। कहने लगी—'बड़े आदमी की बेटी क्या अप्रसन्न हो गई ?'

'अप्रसन्न नहीं माँ; किन्तु जो कुछ करके हम चली आई हैं, उसके बाद अ उसे बुलाया नहीं जा सकता।'

'क्यों बहू, यदि त्रुटि एक हो ही गई, तो क्या उसका सुधार नहीं ह सकता ?'

'सुधार नहीं हो सकता यह नहीं कहती, किन्तु आवश्यकता क्या है पहले भी उसने कई बार आने की इच्छा की है, किन्तु कभी राजी नहीं ह सकी, अब भी सारी बाधाएँ वैसी ही बनी हुई हैं। वह घुसती थी इसीलि उन्होंने रसोई का जाना छोड़ दिया था, उसे यहाँ लाने की क्या आवश्यकत है ?'

विप्रदास ने कहा—'उसी की यह शिकायत है, तुम्हारी नहीं।' हँसक कहा—'फिर भी वन्दना मुझ पर बहुत विश्वास करती है, माँ स्वयं इसक साक्षी हैं।'

सिर उठाकर सती ने देखा शायद भूल गई कि सास हैं, कहने लगी— 'केवल माँ क्यों, मैं भी उसकी गवाह हूँ। लड़कियाँ जब विश्वास करती हैं, त शिकायत नहीं करतीं। देवी-देवता भी कम कष्ट नहीं देते, फिर भी पूजा ब नहीं करतीं, कहती हैं—उन्होंने अच्छाई के लिए ही दुःख दिया है।' सास कहा—'तुम पर भी वन्दना ने कम विश्वास नहीं किया है माँ, कम प्यार नह किया है, तुम्हारा विचार है तुम्हारे घर में भोजन का प्रबन्ध करती थी, केव उनके लिए ? किन्तु बात ऐसी नहीं, वह करती थी तुम दोनों के लिए ही—तु दोनों को प्यार करती थी, उस पर तुमने भी किया था। रसोई-घर का भार—

सभी को खिलाने का काम लेकिन तुम्हारी उपेक्षा करके वह और सभी को पुलाव कलिया नहीं खिला सकती थी माँ, भात-भर्ता सभी को निगलना पड़ता, किन्तु अब उसे लेकर खींचतान क्यों ? जो हम लोगों ने चाहा था उसकी आशा समाप्त हो गयी—वह अब नहीं लौटेगी !'—इतना कहकर सती जल्दी से चली गई।

अचरज से विप्रदास और दयामयी दोनों मौन रह गये। ऐसी उक्ति, ऐसा आचरण सती के स्वभाव के लिए ऐसी अनहोनी है कि सोचा ही नहीं जा सकता कि वह अपने होश में है ! विप्रदास ने पूछा—'क्या मामला है माँ ?'

दयामयी ने कहा—'मालूम तो है मुझे।'

'तुम लोगों ने किस लिए वन्दना की चाह की थी माँ ? कैसी आशा की समाप्ति हो गई ?'

मन-ही-मन दयामयी लज्जा से भर गई, किसी भी प्रकार अपने संकल्प को प्रकट न कर सकीं। केवल बोलीं—'वे बातें आज नहीं किसी और दिन बताऊँगी।'

'अक्षय बाबू की कन्या के सम्बन्ध में क्या कुछ तय किया, माँ, कोई उत्तर तो उन्हें देना चाहिए ?'

'मुझे उज्र नहीं विपिन, तुम लोगों की सलाह हो तो ठीक है। द्विजू से भी पूछना, वह क्या कहता है।' इतना कहकर वह भी घर से बाहर चली गई। विप्रदास उधेड़बुन में पड़ा रहा। बात कुछ विशेष स्पष्ट नहीं हुई, किन्तु स्पष्ट कर लेने के लिए अब समय भी नहीं था।

जब विप्रदास कलकत्ता गया तो देखा कि मकान खाली है। वन्दना और उसके पिता कुछ ही घण्टे पहले चले गये हैं। इसकी आशंका उसे बिल्कुल नहीं थी ऐसी बात नहीं, किन्तु इतनी आशंका भी उसने की नहीं थी। अन्नदा को मालूम नहीं, केवल इतना जानती है कि राय साहब का जाने का उतना मन नहीं था, लड़की हठ करके पिता को घसीट ले गई है। वन्दना पर कोई दबाव नहीं है, रहने की जिम्मेवारी भी उसकी नहीं है, वह केवल मेहमान है, फिर भी वह भेंट किये बिना ही पीड़ित द्विजदास को अचेत छोड़कर अकारण व्यस्तता से चली गई सोचकर उन्हें खेद हुआ। क्रोध में जैसे निर्दय कठोर कहकर मानो

दण्ड देने का मन होता है; लेकिन जाहिर करना उनका स्वभाव नहीं, वह मन
भाव उनके मन में ही रह गया।

भयानक बुखार लेकर चार दिन के बाद विप्रदास हाईकोर्ट से लौट
शायद मलेरिया है, अथवा और कुछ। नेत्र लाल हैं, सिर में पीड़ा भी व
अधिक है, अन्नदा के पास आने पर वह बोला—'अनु बहिन, बीमार तो क
होता नहीं, बहुत दिनों तक बीमारी को चकमा देता आया हूं, इस बार शा
वह ब्याज के साथ वसूल करेगी। जान पड़ता है भुगतना पड़ेगा, सरलता
छुटकारा न मिलेगा।'

अन्नदा ने दशा देखी तो चिन्तित हो गई, किन्तु निर्भय स्वर में साहस
हुए कहा—'नहीं भैया, तुम्हारा पुण्य का शरीर है, इसमें दैत्य-दानव का ज
चलेगा नहीं, तुम दो दिन में चंगे हो जाओगे। डॉक्टर को बुलवाऊँ। मुझसे
असावधानी नहीं हो सकती।'

'ऐसा ही करो बहिन!' कहकर विप्रदास बिस्तर पर लेट गया।

अन्नदा विपत्ति में पड़ गई। उधर वासुदेव की बीमारी का समाचार
कर कल द्विजदास घर गया है, दत्त शहर में नहीं हैं, मालिक के कार्य से वह
ढाका में हैं। अकेली क्या करे, यह न समझकर विप्रदास के पास आकर बोली-
'भाई विपिन, एक बात कहूँ, अप्रसन्न तो न होगे?'

'कभी तुम्हारी बात पर अप्रसन्न हुआ हूं अनु बहिन?'

बगल में बैठी अन्नदा सिर हाथ से सहलाते हुए बोली—जान दे
बीमार की सेवा कर सकती हूं, कुछ जानती तो नहीं, घर भी सूचना नहीं भे
सकती, लड़का बीमार है, उसे छोड़कर वह कैसे आयेगी, लेकिन क्या वन्दना
सूचना नहीं भेजी जा सकती?'

हँसकर विप्रदास ने कहा—'बम्बई क्या आस-पास का मुहल्ला है बहिन
समाचार पाकर वह देखने आ जायगी! शायद उसके नमक-मिर्च लाते-ल
इधर चबैना समाप्त हो जायगा। इसकी आवश्यकता नहीं।'

जीभ को दाँतों से काटकर अन्नदा ने कहा—'तुम्हारी बलैया लूं भै
ऐसी बात मुख पर नहीं लाई जाती। वन्दना दीदी कलकत्ते में है, अभी
बम्बई नहीं गई।'

'कलकत्ते में ही है !'

'हाँ, बालीगंज में अपनी मौसी के घर है, मौसा पञ्जाब में बड़े डॉक्टर हैं, बेटी की शादी करने घर आये हैं। हावड़ा स्टेशन पर अचानक भेंट हो गई। वे गाड़ी से उतर रहे थे और ये लोग बम्बई जा रहे थे। मौसी जबर्दस्ती घर लौटा लाकर बोलीं—अचानक जब मिल गई तो बेटी की शादी न होने तक किसी भी दशा में जाने नहीं देंगी। केवल एक दिन रोककर उसके पिता को उन्होंने बिदा कर दिया।

विप्रदास ने पूछा—'क्या मौसी को पहचानती हो ?'

'हाँ, अपनी बड़ी मौसी हैं और दूर रहती हैं। सदा मिलाप नहीं होता, लेकिन आदमी हैं अपने ही।'

'अनु बहिन, इतनी बात तुमने कैसे जान ली ?'

'वे कल घूमने आई थीं, द्विजू का समाचार जानने। दोपहर के समय ऊपर के बरामदे में बैठी नाती के लिए कथरी सी रही थी, देखा बाहर के आँगन में दो गाड़ियों में बहुत से औरत-मर्द आये हैं। कौन हैं ये ? झाँककर देखा अपनी वन्दना दीदी हैं ! लेकिन पोशाक ऐसी बदल गई है कि एकाएक पहचान में नहीं आती। जैसे वह लड़की ही नहीं है। कैसे करूँ, कहाँ बैठाऊँ, परेशान हो गई। थोड़ी देर बाद दीदी ऊपर आई, सबका कुशल-मंगल पुछा, बतलाया—उनके मुंह से ही सुना कि कम-से-कम एक महीना कलकत्ते में ही रहेंगी। बोलीं—'सब अच्छी प्रकार हैं। थियेटर, सिनेमा, बागान-बाड़ी जाने का ठिकाना नहीं, नित्य नये-नये प्रबन्ध होते रहते हैं।'

क्षण-भर चुप रहकर विप्रदास ने कहा—'अनु बहिन, उसे सूचित करने से होगा क्या ? मैं भी चंगा हो ही जाऊँगा। इतने दिनों तक तुम अकेली मेरी देखभाल न कर पाओगी ?'

जोर देकर अन्नदा ने कहा—'क्यों नहीं कर पाऊँगी भैया, किन्तु फिर भी सोचती हूं कि सूचना देनी चाहिए, वर्ना बहू जी को शायद दुःख होगा। कुछ भी क्यों न हो, फिर भी है तो बहिन ही।'

'पता मालूम है ?'

'हमारा सोफर उन्हें पहुँचा आया था। उसे मालूम है।'

देर तक चुप रहकर विप्रदास बोला—'अच्छा, सूचित कर दो, किन्तु इ
ऐश-आराम छोड़कर क्या वह आवेगी ? विश्वास तो नहीं पड़ता बहिन ।'

कुछ ठीक विश्वास तो मुझे भी नहीं पड़ता भैया । उसकी पहनावे की ;
ही स्मरण हो आती है । फिर भी समाचार भेज देती हूँ ।'

अनुत्सुक भाव से विप्रदास बोला—'यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो सूच
भेज दो ।'

: १७ :

एकाएक हावड़ा स्टेशन पर बड़ी मौसी से जब भेंट हो गई तो बम्बई जान रोककर वन्दना को घर लौटा लाने में मौसी को कोई कठिनाई नहीं हुई । व लड़की के विवाह के सिलसिले में स्वामी के कार्य-स्थल उत्तर पश्चिमांचल से घर आ रही थी । मौसी की बात को मानने के असल कारण के अलावा और एक बात थी, जिसे यहाँ बताना आवश्यक है । वन्दना के इतने दिन परदेश में ही व्यतीत हुए हैं, उसकी शिक्षा-दीक्षा सभी वहीं की है, किन्तु जिस समाज के अन्दर वह है, उसका बड़ा अंश कलकत्ते ही में है, इससे आज भी उसका अधिक परिचय नहीं है । थोड़ा-सा परिचय जो है वह केवल समाचार-पत्र, मासिक पत्र तथा साधारण साहित्य कहानी-उपन्यास के द्वारा । जिनका सदा कलकत्ते आना-जाना होता है, उनकी जबानी बहुत-सी बातें बीच-बीच में उनके कानों में पड़ती हैं—अनिता चटर्जी एम० ए०, विनीता बैनर्जी बी० ए०, अनुसूया, चित्रलेखा, प्रियम्बदा आदि बहुतेरे आडम्बरमय नाम और विचित्र कहानियाँ— बीसवीं सदी के नवीनतम मनोभाव तथा रोमांचिक जीवन यात्रा का विवरण । किन्तु इसमें कितना अंश सही है और कितना बनावटी, दूर से निःसंशय अनुमान करना उसके लिए कठिन था । इसीलिए अपने समाज का एक चित्र उसके मन में था अतिरंजित, पेचीदा, और एक था बिल्कुल फीका, इन्हीं तस्वीरों को प्रत्यक्ष परिचय से स्पष्ट और सत्य कर लेने का अवसर मौसी की लड़की प्रकृति के विवाह के सिलसिले में जब मिला, तो

वन्दना इसकी उपेक्षा न कर सकी, सहज ही में प्रसन्न होकर अपनी मौसी के बालीगंज वाले घर में आकर उपस्थित हुई। अपने दल के बहुतेरों से उसका परिचय है, विशेषकर प्रकृति ने यहीं के स्कूल-कॉलेजों में पढ़कर बी० ए० उत्तीर्ण किया है, उसकी अपनी सखी-सहेलियों की तादाद भी एकदम कम नहीं है। अपने आने के पश्चात् इस दल के बीच ही वन्दना के कितने ही दिन बीते। पिता बम्बई लौट गये लेकिन सुधीर कलकत्ते में ही रहा। निकट आये विवाह का आनन्दोत्सव नित्य ही चलता रहा, उस दिन बेलघरिया के एक बगीचे में पिकनिक समाप्त करके दल के साथ घर लौटने के मार्ग में वह द्विजदास का समाचार लेने के लिए इस घर में आ उपस्थित हुई थी। उस दिन विप्रदास को यही सूचना अन्नदा ने दी थी।

समाज के लोगों का मौसी के घर में आना-जाना, खाना-पीना, बातचीत की कमी नहीं। आज भी बहुतेरों की चाय की दावत थी। मेहमान लोग आ पहुँचे हैं, ऊपर के कमरे में धूमधाम के साथ चाय-पानी चल रहा है, इसी वक्त विप्रदास की शानदार मोटर आकर अन्दर दाखिल हुई। नौकर चौकन्ने हो गये, किन्तु शोफर के फाटक खोलने पर जो प्रौढ़ महिला उतरी उसकी साधारण वेशभूषा और साधारण पहनावा देखकर सभी अचम्भित और परेशान थे। मोटर से महिला का सामंजस्य नहीं है। अन्नदा बिना किनारी की सफेद धोती पहने हुए थी, शरीर पर उसी प्रकार की एक सफेद मोटी चादर थी, पैर नंगे, सिर पर के कपड़े ने आधे माथे को ढँक लिया था—मानो वह खुद भी लज्जा-संकोच से कुछ घबराई थी। नौकर बेयरों की अँगरखा-पगड़ी की सजावट देखकर वह बतलाना कठिन है कि कौन कहाँ का है, तब भी सामने वाले आदमी को बंगाली समझकर अन्नदा ने पूछा—वन्दना दीदी घर में हैं?'

वह बंगाली ही था, बोला—'ऊपर चाय पी रही हैं, आप बैठिए।'

'नहीं, मैं यहीं खड़ी हूँ, क्या तनिक सूचना दे सकोगे ?'

'अवश्य, कहना क्या होगा ?'

'जाकर कहना कि विप्रदास के घर से अन्नदा आई है।'

बेयरा चला गया। वन्दना ने तुरन्त नीचे अन्नदा को हाथ पकड़कर घर में ला बैठाया। ऐसा उसने कभी किया नहीं है, भूल गई कि सामाजिक स्तर

देर तक चुप रहकर विप्रदास बोला—'अच्छा, सूचित कर दो, किन्तु इतना ऐश-आराम छोड़कर क्या वह आवेगी ? विश्वास तो नहीं पड़ता बहिन।'

कुछ ठीक विश्वास तो मुझे भी नहीं पड़ता भैया। उसकी पहनावे की बात ही स्मरण हो आती है। फिर भी समाचार भेज देती हूँ।'

अनुत्सुक भाव से विप्रदास बोला—'यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो सूचना भेज दो।'

: १७ :

एकाएक हावड़ा स्टेशन पर बड़ी मौसी से जब भेंट हो गई तो बम्बई जाना रोककर वन्दना को घर लौटा लाने में मौसी को कोई कठिनाई नहीं हुई। वह लड़की के विवाह के सिलसिले में स्वामी के कार्य-स्थल उत्तर पश्चिमांचल से घर आ रही थी। मौसी की बात को मानने के असल कारण के अलावा और एक बात थी, जिसे यहाँ बताना आवश्यक है। वन्दना के इतने दिन परदेश में ही व्यतीत हुए हैं, उसकी शिक्षा-दीक्षा सभी वहीं की है, किन्तु जिस समाज के अन्दर वह है, उसका बड़ा अंश कलकत्ते ही में है, इससे आज भी उसका अधिक परिचय नहीं है। थोड़ा-सा परिचय जो है वह केवल समाचार-पत्र, मासिक पत्र तथा साधारण साहित्य कहानी-उपन्यास के द्वारा। जिनका सदा कलकत्ते आना-जाना होता है, उनकी जबानी बहुत-सी बातें बीच-बीच में उनके कानों में पड़ती हैं—अनिता चटर्जी एम० ए०, विनीता बैनर्जी बी० ए०, अनुसूया, चित्रलेखा, प्रियम्वदा आदि बहुतेरे आडम्बरमय नाम और विचित्र कहानियाँ—बीसवीं सदी के नवीनतम मनोभाव तथा रोमांचिक जीवन यात्रा का विवरण। किन्तु इसमें कितना अंश सही है और कितना बनावटी, दूर से निःसंशय अनुमान करना उसके लिए कठिन था। इसीलिए अपने समाज का एक चित्र उसके मन में था अतिरंजित, पेचीदा, और एक था बिल्कुल फीका, इन्हीं तस्वीरों को प्रत्यक्ष परिचय से स्पष्ट और सत्य कर लेने का अवसर मौसी की लड़की प्रकृति के विवाह के सिलसिले में जब मिला, तो

वन्दना इसकी उपेक्षा न कर सकी, सहज ही में प्रसन्न होकर अपनी मौसी के बालीगंज वाले घर में आकर उपस्थित हुई। अपने दल के बहुतेरों से उसका परिचय है, विशेषकर प्रकृति ने यहीं के स्कूल-कॉलेजों में पढ़कर बी० ए० उत्तीर्ण किया है, उसकी अपनी सखी-सहेलियों की तादाद भी एकदम कम नहीं है। अपने आने के पश्चात् इस दल के बीच ही वन्दना के कितने ही दिन बीते। पिता बम्बई लौट गये लेकिन सुधीर कलकत्ते में ही रहा। निकट आये विवाह का आनन्दोत्सव नित्य ही चलता रहा, उस दिन बेलघरिया के एक बगीचे में पिकनिक समाप्त करके दल के साथ घर लौटने के मार्ग में वह द्विजदास का समाचार लेने के लिए इस घर में आ उपस्थित हुई थी। उस दिन विप्रदास को यही सूचना अन्नदा ने दी थी।

समाज के लोगों का मौसी के घर में आना-जाना, खाना-पीना, बातचीत की कमी नहीं। आज भी बहुतेरों की चाय की दावत थी। मेहमान लोग आ पहुँचे हैं, ऊपर के कमरे में धूमधाम के साथ चाय-पानी चल रहा है, इसी वक्त विप्रदास की शानदार मोटर आकर अन्दर दाखिल हुई। नौकर चौकन्ने हो गये, किन्तु शोफर के फाटक खोलने पर जो प्रौढ़ महिला उतरी उसकी साधारण वेशभूषा और साधारण पहनावा देखकर सभी अचम्भित और परेशान थे। मोटर से महिला का सामंजस्य नहीं है। अन्नदा बिना किनारी की सफेद धोती पहने हुए थी, शरीर पर उसी प्रकार की एक सफेद मोटी चादर थी, पैर नंगे, सिर पर के कपड़े ने आधे माथे को ढँक लिया था—मानो वह खुद भी लज्जा-संकोच से कुछ घबराई थी। नौकर बेयरों की अँगरखा-पगड़ी की सजावट देखकर वह बतलाना कठिन है कि कौन कहाँ का है, तब भी सामने वाले आदमी को बंगाली समझकर अन्नदा ने पूछा—वन्दना दीदी घर में हैं?'

वह बंगाली ही था, बोला—'ऊपर चाय पी रही हैं, आप बैठिए।'

'नहीं, मैं यहीं खड़ी हूँ, क्या तनिक सूचना दे सकोगे?'

'अवश्य, कहना क्या होगा?'

'जाकर कहना कि विप्रदास के घर से अन्नदा आई है।'

बेयरा चला गया। वन्दना ने तुरन्त नीचे अन्नदा को हाथ पकड़कर घर में ला बैठाया। ऐसा उसने कभी किया नहीं है, भूल गई कि सामाजिक स्तर

में यह विधवा उससे बहुत छोटी है—उस घर की दासी मात्र है। अकारण ही उसके नेत्रों में जल भर आया, बोली—'अनु दीदी, यह मैंने नहीं सोचा था कि मेरी सुध लेने आओगी। सोचा था, तुम लोग मुझे भूल गये होगे।'

'क्यों भूलूं दीदी, भूली नहीं हूँ। बड़े बाबू ने आपके पास मुझे यह कहने भेजा है कि...।'

'नहीं अनु दीदी, मुझे 'आप' कहने से अब बोलूंगी नहीं।'

अन्नदा ने उत्तर नहीं किया, केवल हँसकर बोली—'उन लोगों को पाला-पोसा है इसीलिए 'तुम' कहकर बुलाती हूँ, नहीं तो उस घर की सेविका ही तो हूँ।'

वन्दना ने कहा—'भले ही हो, किन्तु मुखोपाध्याय जी को कलकत्ते आये तो पाँच-छः दिन हो गये, स्वयं क्या एक बार आ नहीं सकते थे? उन्हें मालूम है कि मैं बम्बई नहीं गई।'

'हाँ, उन्होंने यह समाचार मेरे द्वारा ही सुना है। किन्तु जानती तो हो दीदी कि उन्हें कितना काम रहता है बिल्कुल भी अवकास नहीं था।'

वन्दना को यह सुनकर प्रसन्नता नहीं हुई, बोली—'काम तो सभी को रहता हैं अनु दीदी। हम गये थे इसीलिए भद्रता के बहाने तुम्हें उन्होंने भेजा है वर्ना मेरी याद भी न आती। उनसे जाकर कहो कि मेरी मौसी के पास उन लोगों जैसा ऐश्वर्य नहीं है, फिर भी मेरी सुध लेने यदि एक बार इस घर में पैर धरते तो उनकी जात चली न जाती। मर्यादा भी कम न हो जाती।'

इन सब उलाहनों का उत्तर देना अन्नदा का काम नहीं है। यह उस घर में वन्दना से जाने की प्रार्थना करने गई, लेकिन सुनने का सब्र वन्दना में नहीं है, अन्नदा की अधूरी बातों के बीच ही बोली—'नहीं अनु दीदी, यह हो नहीं सकता। मुझे कहीं जाने के लिए अवकाश नहीं है। परसों मेरी बहिन का विवाह है।'

'परसों?'

'हाँ परसों।'

इस अवसर पर बीमारी की सूचना देना उचित है या नहीं अन्नदा सोच रही थी किन्तु वन्दना उसी समय पूछ उठी—'मुझे आने की आज्ञा किसने दी?

छोटे बाबू ने तो नहीं, शायद बड़े बाबू ने ? जाकर उनसे कहना कि आज्ञा करते-करते उनकी आदत बिगड़ गई है। मैं कर्जदार भी नहीं हूँ, उनकी जमींदारी की प्रजा भी नहीं हूं। स्वयं आकर मुझसे आग्रह करना चाहिए। मझली दीदी अच्छी हैं न ?'

'हाँ, अच्छी हैं।'

'और लोग ?'

अन्नदा ने कहा—गाँव से समाचार आया है कि लड़का बीमार है।'

'कौन बीमार है—बासु ? उसे हुआ क्या है ?'

'मुझे ठीक तरह मालूम नहीं।'

चिन्तित होकर वन्दना ने कहा···'लड़का बीमार है फिर भी मुखोपाध्याय जी स्वयं न जाकर यहाँ कैसे बैठे हुए हैं ? अदालत-मुकद्दमे और रुपये पैसे के प्रति आकर्षण ही उनका इतना अधिक है अनु दीदी ! कुछ हिताहित ज्ञान भी तो होना चाहिए।'

अन्नदा ने कहा···'रुपये का मोह नहीं दीदी, आज दो रोज से वह स्वयं भी खाट पकड़े हुए हैं। लड़के की बीमारी से लोग वहाँ परेशान हैं, खबर नहीं दी जा सकती, किन्तु यहाँ दत्तजी भी नहीं हैं···वह ढाका गये हैं, मैं अकेली मूर्ख औरत कुछ जानती-बूझती नहीं, डरती हूँ कि कहीं रोग बढ़ न जाय। शादी हो जाने पर तनिक जा सकोगी नहीं दीदी ?'

वन्दना ने आशंका से पूछा···'डॉक्टर आये हैं ? वह क्या कहते हैं ?'

'कहा है कि भय की बात नहीं, लेकिन साथ ही डॉक्टर बुलाने के लिए भी कह गये।' अन्नदा के नेत्र जल से भर गए, वन्दना का हाथ दबाकर बोली··· ये दोनों दिन किसी भी प्रकार बिता लूंगी, लेकिन शादी हो जाने पर भी क्या जाओगी नहीं ? हम लोगों पर अप्रसन्न ही रहोगी ? तुम लोगों का कहाँ क्या हो रहा है, यह मेरे जानने की बात नहीं है, जानती भी नहीं, किन्तु यह जानती हूँ कि भूल चाहे और किसी ने क्यों न की हो, लेकिन विपिन ने कभी नहीं की। उससे अनजान में भूल हो सकती है, लेकिन जान लेने पर नहीं हो सकती।'

क्षण-भर चुप रहकर वन्दना उठ खड़ी हुई, बोली···'चलो मैं अभी चलती हूं।'

'अभी चलती हो?'

'हाँ, अभी नहीं तो फिर?'

'घर में कहकर नहीं जाओगी? लोग चिन्तित होंगे तो?'

'कहने जाऊँगी तो देर हो जायगी। तुम चलो अनु दीदी।' कहकर वह प्रतीक्षा न करके मोटर में जा बैठी। संकेत से बेयरे को बुलाकर कह दिया मौसी से कहने के लिए कि वह मझली दीदी के घर गई, वहाँ विप्रदास बाबू बीमार हैं।'

विप्रदास के कमरे में आकर जब वन्दना ने प्रवेश किया, तब दिन ढल चुका, किन्तु दीपक-बत्ती का समय नहीं हुआ था। विप्रदास तकियों को इकट्ठा करके दीवार के सहारे बिस्तर पर बैठा हुआ था। चेहरा देखकर ऐसा नहीं जान पड़ता था कि अधिक बीमार है। मन-ही-मन चैन की साँस लेकर कहा—'मुखोपाध्याय जी, प्रणाम स्वीकार करें। मझली दीदी उपस्थित होतीं तो अप्रसन्न होतीं, कहतीं—गुरुजनों की पदधूलि लेकर ही प्रणाम करना चाहिए। किन्तु छूने में भय लगता है कि कहीं छू न जायें!'

विप्रदास चुप रहा, केवल थोड़ा हँस दिया। वन्दना बोली—'क्यों बुलावा भेजा है—सेवा करने के लिए? अनु दीदी कह रही थी, दवा पीने का समय हो गया है। किन्तु यह मामला क्या है? डॉक्टरी दवा की शीशी क्यों? वैद्य की गोली कहाँ? आपको डॉक्टर बुलाने की सलाह किसने दी?'

विप्रदास ने कहा—'हमारी भाषा में 'प्रगल्भ' नाम का एक शब्द है। उसका अर्थ मालूम है वन्दना?'

वन्दना ने कहा—'मालूम है जी मालूम है। आदमी होकर जो आदमी को घृणा से नहीं छूते, उन्हीं को कहते हैं।'

'क्या उनसे बढ़कर भी प्रगल्भ दुनिया में और कोई है?'

विप्रदास ने कहा—'है। जिनमें झूठ-सच के परख करने का सन्तोष नहीं है, बेकार ही निर्दोष को डंक मारकर जो वाहवाही चाहते हैं, उस दल की प्रधान मुखिया तुम स्वयं हो।'

'जरा बतलाइए तो किस निर्दोष व्यक्ति को डंक मारा है। सुनूं तो?'

'बतलाने की मुझे आवश्यकता न होगी वन्दना, समय आने पर तुम स्वयं

ही जान जाओगी।'

'अच्छा, उसी दिन की प्रतीक्षा में रही।' कहकर वन्दना पलंग के पास कुर्सी खींचकर बैठ गई, बोली—'बतलाइए।'

'अच्छा हूँ, किन्तु ज्वर अभी है। जान पड़ता है, रात को कुछ और बढ़ेगा।'

'फिर मुझे क्यों बुलवाया ? मेरी क्या आवश्यकता है ?'

'आवश्यकता मुझे नहीं, अनु बहिन को है, वह डर गई है। उससे मालूम हुआ कि परसों तुम्हारी बहिन की शादी है। शादी समाप्त हो जाने पर एक दिन आना। तुम्हारी मझली दीदी ने कुछ कहा है वह सुना दूंगा।'

'क्या आज नहीं सुना सकेंगे ?'

'आज नहीं।'

दो-एक मिनट तक वन्दना मौन बैठी रही, फिर बोली—'मुखोपाध्याय जी, आपकी बीमारी भयंकर नहीं है, दो दिन में ही अच्छे हो जाओगे। मैं जानती हूँ कि मेरी आवश्यकता नहीं है, फिर भी आपकी सेवा के लिए ही मैं रहूँगी, वहाँ वापस नहीं जाऊँगी। अपना बक्स लाने के लिए आदमी भेज दिया है, आपत्ति नहीं कर सकेंगे ?'

हँसकर विप्रदास बोला—'किस बात की आपति वन्दना, तुम्हारे रहने की, लेकिन बहन की शादी है न ?'

'मेरे साथ तो शादी है नहीं—मेरे न जाने पर भी बहन की शादी रुक नहीं सकती।'

'क्या सचमुच ही शादी में नहीं रहोगी ?'

'नहीं।'

'लेकिन इसी के लिए तो कलकत्ते में ठहर गई हो ?'

वन्दना ने कहा—'बम्बई जा रही थी, स्टेशन से लौट आई, किन्तु एकदम इसी के लिए ही नहीं। दूर रही हूं, अपने समाज के प्रायः किसी को पहचानती नहीं, लोगों के मुँह से कितनी बातें सुनती हूँ, कहानी-उपन्यासों में क्या-क्या पढ़ती हूँ, उनसे अपना मेल नहीं बैठा सकी हूँ, लगता है जैसे हम समाज से निकाले गये हैं। मौसी ने बुलाया, सोचा प्रकृति की शादी के उपलक्ष में

अचानक जो अवसर मिल गया और नहीं मिलेगा। इसीलिए वापस चली आई।'

हँसकर विप्रदास ने कहा—'किन्तु वही शादी तो अभी शेष है, अभी समाज के लोगों को पहचानने का अवसर कहाँ मिला ?'

'पूरा अवसर नहीं मिला है, यह सच है, किन्तु जितना मिला है, मेरे लिए उतना ही बहुत है।'

'इनसे अपने साथ कितना मेल हुआ वन्दना ? बता सकती हो ?'

वन्दना हँसकर बोली—'आप ठीक हो जायें, तब खुलासा बताऊँगी।'

नौकर चिराग जला गया। सिरहाने की खिड़की बन्द करके वन्दना ने औषधि पिलाई। बोली—'अब बैठना नहीं, लेट जाइये।' इतना कहकर सिकुड़े बिस्तर को झाड़कर तकियों को ठीक कर दिया। विप्रदास के लेट जाने पर पैर से छाती तक चादर से ढँककर बोली—'अच्छे हो जाने पर अपने को पवित्र करने के लिए न जाने कितना गोबर-गंगाजल आपके लिए लगेगा।'

दोनों हाथों को फैलाकर विप्रदास ने कहा—'इतना ! लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि सेवा-शुश्रूषा करना कुछ जानती हो देखता हूँ।'

'थोड़ा जानती हूँ। लेकिन नहीं मुखोपाध्याय जी, यह हो नहीं सकता ? इस विषय में आपको तनिक और खबर लेनी होगी।'

'यानी···?'

'यानी हमारी बुराई ही यदि करते हैं को पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके ही करनी ८ । इस प्रकार आँखें बन्द कर मनमाना मैं बोलने नहीं दूँगी।'

विप्रदास ने परिहास की दबी हुई हँसी-हँसकर कहा—'यह 'हमारे' कौन हैं वन्दना ? किसके विषय में और जानकारी हासिल करनी होगी ? जिनके यहाँ से अभी-अभी भाग आई, उनके विषय में ?'

'मैं भाग आई हूँ, कहता कौन है ?'

'मैं कहता हूँ।'

'कैसे मालूम हुआ आपको ?'

'तुम्हारा मुँह देखकर।'

क्षण भर वन्दना उसके मुख की ओर देखकर बोली—'द्विजू बाबू ने एक दिन कहा था कि भैया की आँखों से कुछ छूटता नहीं। बात कितनी सच है,

मैंने विश्वास नहीं किया था। आपकी बीमारी मैं नहीं चाहती थी, किन्तु इसने सचमुच ही मेरा उद्धार किया है। सचमुच ही भागकर मैंने रक्षा पाई है। जितने दिन आप बीमार रहेंगे, मैं आपके ही पास रहूँगी, इसके बाद सीधी पिता जी के पास चली जाऊँगी।—मौसी के घर अब नहीं जाऊंगी। दूर से जिन्हें देखने की इच्छा थी, अब ऐसी इच्छा नहीं है कि एक दिन भी उनके यहाँ बिता आऊँ।'

विप्रदास चुपचाप देखता रहा। वन्दना कहती गई—'वे साड़ी, गाड़ी और झूठे प्रेम की गप्प मारती हैं। कहाँ नैनीताल और कहाँ मंसूरी के वे होटल! उनके मुख पर उनके कैसे बेहूदे इशारे रहते हैं, सुनते-सुनते भाग जाने की इच्छा होती थी। आज इस घर में बैठे यही जान पड़ रहा है कि ये कई दिन मानो बराबर अस्त-व्यस्त, गर्द-रेत की आँधी में बीते हैं। वे कैसे जीवित रहती हैं, मुखोपाध्याय जी?'

विप्रदास ने कहा—'यह रहस्य मैं कैसे जान सकता हूँ। शायद उसी प्रकार जैसे रेगिस्तान में कब्र बनी रहती है।'

लम्बी साँस लेकर वन्दना ने कहा—'दुःख का जीवन है। उनमें न तो धैर्य है और न किसी धर्म की परवाह। कुछ भी भरोसा नहीं करतीं, केवल सन्देह करती हैं।' थोड़ा रुककर बोली—'समाचार पत्र पढ़ती हैं, वे जानती हैं बहुत कुछ। दुनिया में कहाँ क्या हो रहा है, सब कुछ उन्हें मालूम है। किन्तु उन्हें तो मैं पढ़ती नहीं। इसी कारण आधी बातें तो समझ ही में न आती थीं। सुनते-सुनते जब सिर में पीड़ा होने लगती थी, तब वहाँ से हट जाने पर चैन पड़ती थी। किन्तु वे थकती नहीं, बकते-बकते वे मानो मतवाली हो जाती थीं।'

'लेकिन वन्दना, यदि तुम्हारे पिता जी साथ होते तो सुविधा होती। अख-बार की सारी खबरें उनसे पूछकर जान लेती—उनके सामने लज्जित न होना पड़ता।'

हँसकर समर्थन करते हुए वन्दना ने कहा—'हाँ, पिता जी को यह बीमारी है। सारी खबरें पढ़े बिना उन्हें शान्ति नहीं मिलती। किन्तु हम लड़कियों को आवश्यकता क्या है बतलाइए न? दुनिया में दिन-रात, कहाँ क्या

यह जान कर क्या मिलेगा ?'

'तुम्हारी मझली दीदी को यह शोभा देती है, वन्दना, तुम्हारे मुख से नहीं।' हँसकर विप्रदास ने कहा।

वन्दना बोली—क्या वे मेरी मझली दीदी से अधिक जानती हैं ऐसा आप समझते हैं ? कुछ भी नहीं ! गगरी आधी भरी होने के कारण से ही झलकती है। उनके विषय में और कुछ न जान सकी होऊँ लेकिन यह जान लिया मुखोपाध्याय जी।'

'आखिर ज्ञान तो चाहिए।'

'नहीं, न चाहिए। ज्ञान के ढोंग से उनके मुख का शहद विष बन रहा रहा। मालूम है तुम्हें मेरी मझली दीदी की तरह सबको प्यार करना जानती नहीं। क्या मझली दीदी की तरह श्रद्धा कर सकती हैं ? नहीं कर सकतीं। कोई मित्र भी है ? शायद कोई है नहीं, ऐसा है आपस में विद्वेष। उनको कमी भी क्या है यह बाहरी आडम्बर से जान ही न पड़ेगा कि अन्दर से वे इतनी खोखली हैं। उछल-कूद वे क्यों मचाती हैं ? उनका सारा भेदभाव तो घुन से जर्जरित हो गया है।'

हँसकर विप्रदास ने कहा—'बस ठहरो वन्दना, इतना क्रोध क्यों ? किसी ने रकम तो नहीं ठग ली है ?'

'नहीं, ठग नहीं ली, उधार ली है।'

'कितनी ?'

'अधिक नहीं, चार-पाँच सौ।'

'जानती हो न उनका नाम ?'

'पहले याद था, लेकिन अब भूल गई।' हँसकर वन्दना ने कहा—'छि: ! छि: ! इतनी थोड़ी जान-पहचान में भी कोई किसी से रुपये माँग सकता है, यह मैं सोच भी नहीं सकती। बोलने में जबान रुकती नहीं, शर्म रेखा नेत्रों में नहीं दिखाई देती, मानो वह उनके लिए नित्य की बात है ! यह संभव होता है मुखोपाध्याय जी !'

विप्रदास का मुख गम्भीर हो गया। थोड़ी देर तक चुप रहकर बोला—'उन्होंने तुम्हारे मन को बहुत विषैला बना दिया है वन्दना, किन्तु सभी ऐसे

नहीं हैं, मौसी जी का दल ही तुम्हारा सारा दल नहीं है। जो बाहर रह गये, शायद उन्हें भी किसी दिन खोजने पर पाओगी।'

वन्दना ने कहा—'पाऊँगी तो शायद अच्छा ही होगा, तब अपनी धारणा में संशोधन कर लूंगी, किन्तु जिन्हें देखा वे सभी शिक्षित हैं, सभी पदस्थ लोगों के सम्बन्धी हैं। कहानी-उपन्यास की रंगीन भाषा में सजकर ये दूर से मेरी दृष्टि में कैसी आश्चर्यमय मालूम होती थीं! मन में सीमा नहीं थी, सोचती थी हमारी लड़कियों के पिछड़े रहने का कलंक अब दूर हुआ। अब मेरा वह भ्रम दूर हुआ मुखोपाध्याय जी।'

हँसते हुए विप्रदास ने कहा—'किस बात का मोह? ये तेजी से बढ़ चली हैं, यह तो असत्य नहीं हैं।'

वन्दना ने कहा—'नहीं, असत्य क्या होगा सत्य ही है। फिर भी मेरे लिए संतोष की बात यह है कि इनकी गिनती बहुत ही कम है, इनका किले के मैदान से मनुमेंट पर चढ़कर शोर-गुल मचाना जितना व्यर्थ है, उतना ही हास्यकर।'

विप्रदास ने कहा—'और एक प्रकार की यह तुम्हारी कट्टरता है। अपना धर्म छोड़ने में भय है वन्दना—सावधान!'

इस बात पर वन्दना ने ध्यान नहीं दिया, कहती गई—'इस तुच्छ दल के बाहर है बंगाल का विशाल महिला-समाज। आज भी मैंने उसे नहीं देखा शायद बाहर देखा भी नहीं जा सकता, फिर मालूम होता है कि वायु के समान वे ही बंगालियों की साँस में घुली-मिली हैं। जानती हूँ, इनमें छोटी-बड़ी हैं—बड़ा उदाहरण है मेरी मझली दीदी, उनकी सास, इस बार कलकत्ता आना मेरा सार्थक हुआ मुखोपाध्याय जी। क्यों हँस रहे हैं?'

'रुपये का शोक आदमी को किस प्रकार वक्ता बना देता है यही सोचता हूँ। मुझमें भी यह दोष है।'

'किन रुपयों का शोक—उन पाँच सौ का?'

'जान तो यही पड़ता है।'

हँसकर वन्दना बोली—'रुपये के लिए अब घबराहट नहीं। आपकी सेवा करके पारिश्रमिक में दूना वसूल करके रहूँगी। यदि आप न देंगे तो माँ से

वसूल करूँगी ।'

कमरे में घुसकर वन्दना ने कहा—'आठ बज रहे हैं, विपिन के भोजन का समय हो गया ।'

परेशान होकर अन्नदा ने कहा—'चलो अनु बहिन, चल रही हूं, क्यों रे, जाऊँ मुखोपाध्याय जी ?'

हंसकर विप्रदास ने कहा—'जाओ, किन्तु सेवा में त्रुटि होने पर मजदूरी काट ली जायगी ।'

'त्रुटि नहीं होगी ।' इतना कहकर वह बाहर निकल गई ।

: १८ :

वन्दना ने पूछा—'भोजन तैयार है, ले आऊं ?'

हँसकर विप्रदास बोला—'तुम निरन्तर मेरा प्राण लेने का प्रयन्त कर रही हो । लेकिन सन्ध्या-प्रार्थना अभी तक नहीं की, पहिले उसका प्रबन्ध करवा दो ।'

'मैं स्वयं कर दूं मुखोपाध्याय जी ?'

'तो यहाँ और कौन है जो करे ? लेकिन माँ के पूजा घर में नहीं जा सकता, शरीर में शक्ति नहीं है—इसी कमरे में कर देना होगा । पहले मैं स्वयं देखूंगा कैसा प्रबन्ध करती हो, कोई त्रुटि रहती है या नहीं, तब विचार कर देखूंगा कि भोजन तुम लाओगी या हमारे महाराज ।'

वन्दना सुनकर फूली न समाई, बोली—'मैं इसी शर्त पर राजी हूँ । यदि परीक्षा में पास हो जाऊँ तो झूठे बहाने से फेल नहीं कर पावेंगे । वचन दीजिए ।'

वचन दिया ! लेकिन मुझे अपने हाथों का बना खिलाने से तुम्हें क्या लाभ होगा ?'

'यह मैं बतलाऊँगी नहीं ।' कहकर वन्दना तेजी से चली गई । दस मिनट के भीतर उसने स्नान कर अन्दर प्रवेश किया । कमरे के जिस ओर खुली

खिड़की से पूरब की धूप आकर पड़ रही है, उसी स्थान को जल से अच्छी प्रकार धोकर अपने आँचल से पोंछ दिया। पूजा-घर से आसन आदि लाकर सजाया, धूपदानी लाकर धूप जलाई, फिर विप्रदास की धोती अँगोछा और हाथ मुँह धोने के वर्तन ला उसके पास रखकर वोली—'आज फूल तोड़ कर माला गूंथने का समय नहीं मिला है, वर्ना गूंथ देती, कल यह त्रुटि नहीं होगी। किन्तु आधा घण्टा समय दिया इससे अधिक नहीं। अभी नौ वजे हैं। ठीक साढ़े नौ वजे फिर आऊँगी। इसके बीच आपको कोई कष्ट नहीं देगा।' कहकर वह द्वार वन्द कर चल दी।

विप्रदास कुछ नहीं बोला—'केवल देखता रह गया। आध घण्टे के बाद वन्दना जब लौट करआई, तब सन्ध्या प्रार्थना समाप्त करके विप्रदास एक आराम कुर्सी के सहारे बैठा हुआ था।

'पास या फेल, मुखोपाध्याय जी ?'

'पहली श्रेणी में पास। मेरी माँ को पराजित कर दिया है। किसका साहस है जो तुम्हें मलेच्छ कहे, केवल मलेच्छों के स्कूल-कॉलेज में पढ़कर बी० ए० पास किया है।'

'तो अब भोजन लाऊँ ?'

'लाओ, किन्तु उसके पहले इन्हें यथा स्थान धर आओ।' कहकर विप्रदास ने कोश-कोशी आदि को दिया—'यह मुझे कहना नहीं होगा, महाशय जी, जानती हूँ।' कहकर पूजा के वर्तनों को हाथों में उठा लिया। ऐसे समय कमरे के वाहर वरामदे में ऊँची एड़ी के जूतों का खट्खट् स्वर एकाएक कानों में पड़ा और दूसरे क्षण अन्नदा द्वार से गर्दन बढ़ाकर बोली—'वन्दना दीदी, तुम्हारी मौसी···।'

इतने में ही मौसी और दो-तीन लड़कियाँ एकदम आ पहुँची, विप्रदास ने उठकर कहा—'बैठिए !'

मौसी बोलीं—'नीचे ही सूचना मिली थी, अच्छे हैं—विप्रदास वावू ।'

विप्रदास ने कहा—'हाँ अच्छा हूँ।'

आगन्तुक लड़कियों ने वन्दना को देखा तो वहुत आश्चर्य हुआ, पैरों में जूते नहीं हैं, वदन पर कुर्त्ता नहीं, भीगे वालों से कन्धे की साड़ी तर हो गई

है। खुले काले बाल पीठ पर फैले हुए हैं, दोनों हाथों में पूजा की सामग्री। उसकी यह मूर्ति उनकी केवल पहले की अनदेखी अपरिचित ही नहीं है, अचिन्त-नीय भी है। वन्दना बोली—'द्वार छोड़कर आप लोग जरा हट जायँ, मैं जाकर इन्हें रख आऊँ।'

एक लड़की बोल पड़ी—'छू जायगा।'

'हाँ!' कहकर वन्दना चल दी।'

पलभर के बाद उसी वेश में ही आकर विप्रपास की कुर्सी से लगकर खड़ी हो गई। मौसी ने कहा—'हमें बिना कहे ही तुम चली आईं, इसके लिए बड़ा क्रोध आया किन्तु आज तुम्हारी बहिन की शादी है, तुम्हें चलना पड़ेगा।'

दोनों लड़कियों ने कहा—'आपको पकड़कर ले जाने के लिए हम आई हैं।'

वन्दना ने कहा—'नहीं मौसी जी, मेरा जाना न हो सकेगा।'

'क्या कह रही हो वन्दना! न जाने से जानती हो प्रकृति को कितना दुःख होगा?'

आश्चर्य और दुःख से बेचैन होकर मौसी ने कहा—'किन्तु इसी कारण तुम्हारा बम्बई जाना नहीं हो सका, इसीलिए तुम्हारे पिता तुम्हें मेरे पास छोड़ गये। बतलाओ तो, वे सुनेंगे तो क्या कहेंगे?'

उस लड़की ने कहा—'इसके अलावा सुधीर बाबू—मिस्टर डाटा—बहुत अप्रसन्न हुए हैं। आपका चला आना बिलकुल भी उचित नहीं लगा।'

उसकी ओर वन्दना ने देखा। लेकिन उत्तर दिया मौसी जी को—मेरे न जाने से प्रकृति की शादी रुक न सकेगी, पर जाने से मुखोपाध्याय जी की सेवा-शुश्रुषा में कमी होगी। यहाँ उनकी देख-भाल करने के लिए कोई है नहीं।'

'किन्तु वह तो ठीक हो गये हैं अब। तुम्हें जाने के लिए उन्हें कहना चाहिए।' कहकर मौसी ने विप्रदास की ओर देखा। विप्रदास ने हँसकर कहा—'ठीक है। मुझे जाने के लिए कहना चाहिए, वन्दना को भी जाना चाहिए। बल्कि न जाना ही अनुचित होगा।'

सिर हिलाकर वन्दना ने कहा—'नहीं, मैं नहीं समझती कि अनुचित होगा। आप जाने के लिए कह रहे हैं अच्छी बात है, मैं जाऊँगी लेकिन रात को ही चली आऊंगी, वहाँ रह न सकूंगी। यही सलाह मौसी जी को भी देना।'

'एक रात भी न रह सकोगी?'

'नहीं।'

'यही अच्छा होगा।' कहकर मौसी मन-ही-मन अप्रसन्न होकर दलवल बहित चल दीं।

विप्रदास बोला—'देख लिया न तुम्हारी मौसी अप्रसन्न होकर चल दीं। अचानक यह लहर कैसे आगई?'

वन्दना ने कहा—'यह जानती हूँ, अप्रसन्न होकर गईं लेकिन केवल तरङ्ग में आकर जाना चाह रही हूँ, ऐसी बात नहीं है। उनके सब कुछ से मुझे घृणा हो गई है। इसलिए अब वहाँ जाना नहीं चाहती।'

'वन्दना, यह तो तुम्हारा अत्याचार है।'

'अत्यचार है या नहीं, यह कहना कठिन है। मैं सदैव अपने आप से पूछती हूँ, लेकिन भली प्रकार समझती हूँ, कि उनके घर जाने से मुझे न तो खुशी मिलती है और न शान्ति। एकबार बम्बई में कपड़े की मिल देखने गई थी, मुझे केवल वही बात स्मरण आती है। उसकी कितनी मशीनें, कितने पहिए, इधर-उधर आगे-पीछे बिना रुके घूम रहे हैं जरा भी चूक जाने से मानो सिर से पैर मरोड़कर उनके अन्दर खींचकर निगल जावेंगे। देखने में वे अच्छे नहीं लगते ऐसा नहीं, फिर भी लगता है कि बाहर जायँ तो जान में जान आये। किन्तु अब देर न करूँगी। आपका भोजन लाऊँ?' कहकर बाहर निकलने के लिए प्रस्तुत होते ही द्वार के पैरों की गर्द, जूतों का चिन्ह दिखाई पड़ा, रुककर खड़ी होकर बोली—भोजन लाना नहीं हुआ मुखोपाध्यायजी, तनिक धैर्य धरना होगा। नौकर से पहले यहाँ धुलवा लूँ। कहकर वह कमरे से बाहर जाने लगी तो विप्रदास ने आश्चर्य से प्रश्न किया—'इतनी बातें किससे सीखी हैं वन्दना?'

वन्दना को सुनकर भी आश्चर्य हुआ। बोली—'किसने सिखाया यह मुझे स्मरण नहीं है मुखोपाध्यायजी।' कहकर तनिक चुप रहकर बोली—'शायद

'किसी ने भी नहीं सिखाया। मुझे स्वयं ही जान पड़ रहा है कि आपकी सेवा करने के ये अभिन्न अंग हैं, नहीं करने से त्रुटि होगी।' कहकर वह चल दी।

सन्ध्या को ठीक समय सज-धज करके, वन्दना विप्रदास के कमरे के खुले द्वार के सामने खड़ी होकर बोली—'मुखोपाध्याय जी, अब मैं जा रही हूँ बहिन की शादी देखने ! मौसी ने छोड़ा नहीं इसीलिए जाना पड़ रहा है।'

विप्रदास ने कहा—'तुम जल्द ही इस अत्याचार का बदला ले सको यही आशीर्वाद देता हूँ। तब उस मौसी को पंजाब से घसीटकर बम्बई ले जाना।'

'मौसी पर क्रोध नहीं है, पर आपको घसीटकर खींच ले जाऊँगी। डरिए नहीं। किराया हम ही देंगे, आपको नहीं देना पड़ेगा। किन्तु सब प्रबन्ध किये जाती हूँ अन्याय होने पर आकर अप्रसन्न होऊँगी।'

'होगी क्यों नहीं। न होने से ही सबको आश्चर्य होगा। सोचोगी, तबीयत अच्छी नहीं है ! शादी दावत खाकर शायद बीमार होगया हूँ।'

वन्दना हँस पड़ी। सिर हिलाकर बोली—'रहने दीजिए मेरा गुण वर्णन करने को। लेकिन यह जाने दीजिए, आप सन्ध्या करने के लिए नीचे न जाइए, इसी कमरे में अनु दीदी सब ला देंगी। उसके आधा घण्टे के बाद ही महाराज जन दे जायगा, एक घण्टे के बाद झण्डू दवा देकर बत्ती बढ़ाकर द्वार बन्द जायगा। यह सबको समझाये जाती हूँ समझ गये न ?'

'हाँ, समझ लिया।'

'तो जाती हूँ।'

'जाओ। किन्तु बहुत अच्छी लग रही हो वन्दना, यह बात माननी ही गी। बात यह है कि जो पोशाक पहनी है, यही तुम्हारी असली है, जो यहाँ ने रहती हो वह नकली है।'

'यह क्या कहते हैं मुखोपाध्याय जी, वे कहते हैं कि लड़कियों का जूता नना आप देखना भी पसन्द नहीं करते ?'

'वे गलत कहते हैं, जैसा कि वे कहते हैं कि मैं तुम्हारे हाथ का नहीं खा ता।'

आश्चर्य करके वन्दना ने पूछा—'गलत क्यों है मुखोपाध्याय जी, सचमुच मेरे हाथ का खाने में इन्कार था ?'

विप्रदास ने कहा—'इन्कार था, किन्तु यदि इन्कार सच्चा होता तो वह आज भी रहता, दूर न हो जाता।'

वन्दना की समझ में बात न आई, पर विप्रदास की बात को झूठ समझना भी कठिन है। बोली—'द्विजु बाबू ने एक दिन कहा था कि भैया की मन की बात कोई जान नहीं सकता, जो बाहरी है उसी को ही लोग जान सकते हैं, लेकिन जो अन्तर का है, वह अन्तर में ही दबा रहता है। क्या यह सच है मुखोपाध्याय जी?'

उत्तर में विप्रदास ने केवल थोड़ा-सा हँस दिया, फिर बोला—'वन्दना, तुम्हें देर हुई जा रही है। यदि सचमुच ही इच्छा नहीं है, तो न रहना, चली आना।'

'आ ही जाऊँगी मुखोपाध्याय जी, वहाँ नहीं रह सकूँगी!' यह कहकर वन्दना अब देर न करके नीचे चली गई।

अगले दिन सवेरे भेंट होने पर विप्रदास ने पूछा—'बहिन का ब्याह निर्विघ्न समाप्त हो गया न?'

'हो गया—कुछ विघ्न नहीं हुआ।'

'तुमने अपनी ही हठ बनाये रखी, मौसी की बात नहीं मानी? कितनी रात गये लौटीं?'

'तीन बजे थे रात के। मौसी की बात न मान सकी, रात ही को लौटना पड़ा।' तनिक रुककर शायद वन्दना ने सोच लिया कि बोलना उचित है या नहीं, उसके बाद ही कहने लगी—'कुछ ही घण्टे वहाँ रही, लेकिन काम बहुत अधिक कर आई हूँ। एक साल में जो नहीं कर सकी, पाँच-छः मिनटों में ही वह हो गया। सुधीर से समाप्त कर आई हूँ। कल आई।'

आश्चर्य से विप्रदास ने पूछा—'क्या कहा?'

'यही तो। लेकिन उसे मँझधार में नहीं छोड़ आई हूँ। कल सवेरे जिस लड़की को देखा था, उसका नाम है हेम। हेमनलिनी राय। उसी के हाथ सुधीर को सौंप आई। फिर मुझे बम्बई के उसी कारखाने की याद हो आती है, उसी प्रकार उनके यहाँ भी प्रेम की ताना पाई देखते-देखते मनुष्य के भविष्य का निर्माण हो जाता है! और उसी प्रकार टूटता भी है।'

विप्रदास ने उसी प्रकार विस्मय से पूछा—'मामला क्या हुआ ? सुधी से अचानक समाप्त कर आने का क्या तात्पर्य है ?'

वन्दना ने कहा—'समाप्त कर आने का मतलब है समाप्त करना। किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि वहाँ अचानक नाम की कोई चीज है। उनकी चाल बहुत तेज़ होने के कारण ही बाहर से 'अचानक' होने का शक होता है। पर वास्तव में ऐसा नहीं। सुधीर ने मुझे बुलाकर कहा—'मुझसे बहुत बड़ी भूल हो गई है', पूछा—'क्या भूल हुई है सुधीर ?' वह बोला—'किसी को बताए बिना सूचना दिये अचानक इस घर में, मेरा चला आना निन्दित कार्य है। विशेष कर वहाँ जब विप्रदास के अलावा और कोई नहीं है। मैं बोली—'वहाँ अन्नदा दीदी है।' सुधीर ने कहा—लेकिन वह महरी के अलावा तो और कुछ नहीं है।' मैंने कहा—'उस कुटुम्ब में सभी उन्हें बहिन कहते हैं सुनकर वह हेम नाम की लड़की जरा दबी हुई हँसी में हंसकर बोली—बम्बई में उस प्रकार बुलाने की रीति है सुना है, लेकिन उससे महरी-नौकरों का घमण्ड बढ़ने के अलावा और कुछ नहीं होता। वे स्वयं भी बड़े नही हो जाते।' सुधीर ने कहा—'इन लोगों से तुमने कहा है कि यहाँ नहीं रह सकोगी, रात ही को लौट जाओगी। लेकिन उस घर में तुम्हारा अकेले रहना हममें से कोई पसन्द नहीं करता। तुम्हारे पिता जी सुनेंगे तो क्या कहेंगे ?' बोली—'पिता जी क्या कहेंगे, यह चिन्ता तुम्हारी नहीं, मेरी है। किन्तु आज भी जो पसन्द नहीं करते उनमें क्या तुम स्वयं भी हो ?' हेम ने कहा—'अवश्य हैं! सबको छोड़कर वह प्रथक तो नहीं हैं। इस लड़की के बिना पूछे मन्तव्य का उत्तर देने की इच्छा नहीं हुई, इसीलिए सुधीर ने कहा—तुम्हारी इस बात के उत्तर में मैं भी यह कह सकती थी कि व्यर्थ छुट्टी लेकर तुम्हारा कलकत्ते में रहना मैं भी पसन्द नहीं करती। किन्तु यह मैं नहीं कहूँगी। हेम ने जो भद्दा इशारा किया, वह साधारण असभ्य समाज में ही चलता है, किन्तु तुम्हारे बड़े दल में भी वह इसी प्रकार चलता है, यह मैं नहीं जानती थी, पर मुझे अब अवकाश नहीं है, गाड़ी तैयार है, मैं चली। उस लड़की ने कहा—'जो अशोभन है, अनुचित है उसकी आलोचना छोटे-बड़े सभी दलों में चलती है।' बोली—'आप लोगों की जितनी इच्छा हो आलोचना करें, उज्र नहीं। मैं चली।' सुधीर अचानक कैसा

हो गया—चेहरा पीला पड़ गया—अपने को सँभालकर बोला—'अपनी मौसी जी को भी न बताकर जाओगी ?' —'उनको कह ही रखा है, शादी हो जाने पर ही मैं जाऊँगी, रात कितनी भी क्यों न हो।'

सुधीर ने कहा—'क्या कल तुम से एक बार भेंट हो सकती है ?'

बोली—'नहीं।' वह बोला—'परसों ?' बोली—'परसों भी नहीं।'

'उसके अगले दिन ?'

'नहीं, उस दिन भी नहीं !'

'तुम्हें कब समय मिलेगा।'

'मुझे समय नहीं मिलेगा।'

'किन्तु मुझे जो एक आवश्यक बात कहनी है ?'

'शायद तुम्हें आवश्यक है, लेकिन मुझे नहीं है।' कहकर चल दी।

'मुझे सुधीर नहीं जानता, साथ आगे बढ़ आने का साहस न हुआ। वहीं चुचाप खड़ा रहा। मैं आकर गाड़ी में बैठ गई।'

विपदास जरा हँसकर बोला—'इसका मतलब क्या समाप्त कर देना है वन्दना ? तनिक-सा झगड़ा। यदि सन्देह है तो भेंट होने पर अपनी मझली दीदी से पूछ लेना।'

वन्दना हंसी नहीं, गम्भीर होकर बोली—'किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं मुखोपाध्याय जी। मैं जानती हूँ कि हमारा मामला समाप्त हो गया है, अब यह पलटेगा नहीं।'

उसके मुख की ओर देखकर विप्रदास हतबुद्धि हो गया—'क्या कहती हो वन्दना' इतनी बड़ी चीज क्या इतने थोड़े में ही समाप्त हो सकती है ?' एक बार सुधीर के आघात को ही विचार कर देखो न ?'

वन्दना ने कहा—'सोच देखा है, मुखोपाध्याय जी, यह आघात सँभालने में सुधीर को अधिक दिन नहीं लगेंगे, मैं जानती हूं वह हेम नाम की लड़की ही उसे मार्ग दिखा देगी। किन्तु मैं अपनी बात सोच रही थी। केवल गाड़ी में ही बैठकर सोचा है ऐसा नहीं, कल बिछौने पर लेट कर सारी रात मैं सो न पाई। बेचैनी अनुभव की है अवश्य लेकिन मुझे कष्ट बिलकुल नहीं हुआ है।'

क्रोध उतर जाने पर कष्ट होगा। तब इसी सुधीर के लिए ही फिर प्रतिक्षा

नहीं है, यह मृगतृष्णा है, मुखोपाध्याय जी !'

उसी प्रकार विप्रदास चुप रहा। वन्दना की लज्जा तो खुल गई है। कहने लगी—'पिछले वर्ष सुधीर ही के साथ मेरी शादी तय हो गई थी, केवल उसकी माँ की बीमारी की वजह से ही न हो सकी। कल घर जाकर सोच रही थी कि अगर तब शादी हो जाती तो आज क्या मेरा मन उसे इसी प्रकार ठोकर लगा देता ? कैसे मन को वश में रखती ? धर्म बुद्धि से ? संस्कार से ? लेकिन मन यदि वश में नहीं रहता, तब जिनके अन्दर ये कई दिन बिता आई क्या बिल्कुल उन्हीं के समान ? इस प्रकार के षड्यन्त्र और लुकाछिपी से मन को भर कर सूखी हँसी हँसकर लोगों को भुलावा देती फिरती ? इसी प्रकार आपस की बदनामी करके, डाह करके, शत्रुता करके ? किन्तु आप क्यों नहीं बोल रहे हैं मुखोपाध्याय जी ?'

विप्रदास ने कहा—'तुम्हारे हृदय के भीतर जो तूफान बह रहा है, उसकी भयानक गति के साथ मैं कैसे चल सकूँगा वन्दना, इसीलिए चुप हूँ।' वन्दना ने कहा—'नहीं, ऐसा नहीं होगा. इस प्रकार कतराकर मैं आपको न जाने दूंगी, दीजिए न उत्तर।'

किन्तु बिना शान्त हुए उत्तर देने से क्या लाभ ? तुम्हारी आज की दशा स्वाभाविक नहीं है, अतः तुम ठीक प्रकार न समझ पाओगी।'

'समझ क्यों नहीं सकूंगी मुखोपाध्याय जी, बुद्धि तो मेरी कहीं चली नहीं गई।'

'चली नहीं गई है लेकिन चकरा गई है। अभी रहने दो, सन्ध्या के बाद सब काम-धाम से अवकाश पाकर जब मेरे पास आकर निश्चिन्त होकर बैठोगी, तब बताऊँगा, तब इसका उत्तर दे सकता हूँ।'

'तब तो यही ठीक है, इस समय मुझे भी तो अवकाश नहीं है।' कहकर वन्दना बाहर चली गई। असल में उसके कामों की गिनती नहीं। अन्नदा सवेरे छुट्टी लेकर कालीघाट गई है, आज उसके काम उसी के कन्धे पर आ पड़े हैं। कितने नौकर-चाकर, कितने ही लड़के यहाँ रहकर स्कूल कॉलेज में पढ़ते हैं। उनकी कितनी ही प्रकार की आवश्यकताएँ हैं। अधिक काम के कारण उसे याद भी नहीं रहा कि वह सारी रात नहीं सोई है, आज बहुत थकी हुई है।

सन्ध्या के बाद विप्रदास का भोजन समाप्त हुआ, नीचे का सारा प्रबन्ध पूरा करके वन्दना उनके विस्तर के पास एक कुर्सी पर बैठकर बोली—'क्या एक बात का सही-सही उत्तर दे सकेंगे मुखोपाध्याय जी ?'

विप्रदास ने कहा—'प्रायः उत्तर तो दिया ही करता हूँ। क्या प्रश्न है ?'

वन्दना ने कहा—'आप मझली वहिन को क्या सचमुच ही प्रेम करते हैं' लड़कपन में आप लोगों की शादी हुई, बहुत दिनों की बात है, इसमें अभी कमी तो नहीं हुई है ?'

विप्रदास चुप रह गया। ऐसी बात किसी के मन में आ सकती है, यह उसने सोचा भी नहीं था। किन्तु अपने को सँभालकर हँसकर बोला—'अपनी मझली वहिन से ही पूछना यह प्रश्न।'

वन्दना ने कहा—'वह कैसे जानेंगी ? सुना है आपके हृदय की ठीक बात कोई नहीं जान सकता। न बतलाना चाहते हों तो न बतलाएँ, मैं किसी प्रकार समझ लूँगी, यदि बतलाएँ तो सत्य बात ही आपको बतलानी पड़ेगी।'

तब सत्य ही बताऊँगा, लेकिन क्या तुम मुझ पर सन्देह करती हो ?'

'अवश्य। आप बहुत बड़े आदमी हैं, लेकिन फिर भी आदमी हैं। जान पड़ता है कहीं मानो आप एकदम अकेले हैं, वहाँ आपका कोई भी साथी नहीं। क्या यह बात सत्य नहीं ?'

विप्रदास ने इस प्रश्न का उत्तर ठीक-ठीक नहीं दिया, बोला—'स्त्री को प्रेम करना तो मेरा धर्म है वन्दना।'

वन्दना ने कहा—'जहाँ तक धर्म फैला हुआ है वहाँ तक आप खड़े हैं, किन्तु क्या संसार में उससे भी बड़ा कुछ है नहीं ?'

'दृष्टि में तो नहीं आता वन्दना।'

वन्दना ने कहा—'मेरी दृष्टि में आता है, मुखोपाध्याय जी! क्या बतलाऊँ।'

विप्रदास का मुँह सहसा ही पीला पड़ गया, भरे गोरे मुँह पर मानो खून का नाम भी नहीं, दोनों हाथों को सामने बढ़ाकर बोला—'नहीं, एक बात भी नहीं वन्दना। तुम अपने कमरे में जाओ, कल हो, परसों हो, जब तुम्हारी आलोचना की बुद्धि लौट आयेगी तब इसका उत्तर दूँगा। तब शायद स्वयं ही

जान जाओगी कि जिन्होंने मौसी के घर में तुम्हारी बुद्धि को छिपाया है, वे ही सब कुछ नहीं हैं। धर्म जिनके लिए सर्वोपरि है वे भी हैं, इसी संसार में वे भी रहते हैं। नहीं, नहीं अब जाओ, तर्क न करो।'

वन्दना जान गई कि इस आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। यह तो वही चीज है जिससे घर के सब लोग डरते हैं। वन्दना बिना बोले कमरे से बाहर निकल गई।

: १६ :

अगले दिन सन्ध्या समय वन्दना ने आकर कहा—'मुखोपाध्याय जी, फिर जा रही हूँ मौसी जी के यहाँ! अब की बार कई घण्टे के लिए नहीं, बल्कि जब तक मौसी मुझे बम्बई भेजने का प्रबन्ध नहीं कर देतीं उतने समय के लिए।'

'यानी।'

'यानी आवश्यक तार आया है, पिताजी की आज्ञा है, कल ही सवेरे मौसी मुझे ले जाने के लिए गाड़ी भेजेंगी।'

विप्रदास ने कहा—'यानी मालूम हुआ कि तुम्हारी मौसी में प्रतिशोध का उत्साह और बुद्धि है। शायद यह उन्हीं के जवाबी तार का उत्तर है। तार को देखूँ तो जरा।'

'नहीं, इसे मैं आपको नहीं दिखा सकती।'

विप्रदास ने सुना तो पल-भर चुप रहा, फिर थोड़ा हँसकर बोला—'भगवान् किसी का घमण्ड सहन नहीं करते, यह उसी का उदाहरण है। इतने दिनों तक मुझे धारणा थी मुझे कि समेटा नहीं जा सकता, लेकिन देखता हूँ कि समेटा जा सकता है। कम-से-कम ऐसे आदमी भी हैं। तुम्हारी मौसी की बुद्धि में फन्द सूझा है। दीजिए न, पढ़ देखूँ जुर्म कितना गम्भीर है।' कहकर उसने हाथ बढ़ाया। अबकी बार वन्दना ने तार उसे दे दिया।

राय साहब का लम्बा-चौड़ा तार है—तार को आदि से अन्त तक पढ़कर उसे लौटाकर विप्रदास बोला—'कुछ भी सही, लेकिन तुम्हारे पिता ने अनुचित कुछ भी नहीं लिखा है। निःस्वार्थ परोपकार में भय रहता है। बीमार आत्मीय की सेवा करने आना भी दुनिया में सरल काम नहीं।'

'वन्दना ने पूछा— 'क्या आप मुझे मौसी के घर ही लौट जाने की राय देते हैं ?'

'तुम्हारे पिता की आज्ञा तो यही है वन्दना। यह तो बलरामपुर के मुखोपाध्यायों का परिवार नहीं है—आदेश देने वाले मालिक यहाँ तुम्हारे मुखोपाध्याय नहीं हैं—मौसी हैं—और आदेश दिया है दूसरे के मुँह से; इसलिए पालन करना ही होगा।'

वन्दना ने कहा—'आप तो यह कहेंगे ही। पिताजी को कुछ भी नहीं मालूम, फिर भी यह आज्ञा, उचित-अनुचित कुछ भी हो, माननी पड़ेगी।' मौसी का घर कहाँ है यह तो आपको मालूम ही है।'

विप्रदास ने कहा—'नहीं मालूम, लेकिन तुम्हारी ही जबानी सुना है, अच्छी जगह नहीं है। मैं ठीक होता तो स्वयं बम्बई जाकर तुम्हें पहुँचा आता, परन्तु इतनी शक्ति है कहाँ!'

'क्या इस दशा में ही आपको छोड़कर चली जाऊँ! जिस मौसी को पहचानती भी नहीं, उसी का हठ बना रहेगा।'

'किन्तु उपाय क्या है।'

'उपाय यह है कि मैं जाऊँगी नहीं।'

'तब तो रहो। एक तार पिता जी को भेज दो। किन्तु मौसी ले जाने के के लिए आवें तो उनसे क्या कहोगी ?'

वन्दना ने कहा—'केवल यही कहूँगी कि मैं जा नहीं सकती। इससे अधिक नहीं।'

विप्रदास ने कहा—'किन्तु मौसी इतने ही से चुप न होंगी। शायद इस बार घर पर मेरी माँ के पास तार भेजेंगी।'

कुछ करने में मौसी ने बचा नहीं रखा है। लेकिन मालूम है क्यों?'

विप्रदास ने कहा—'जानना तो संभव नहीं है, किन्तु इतने का अनुमान लगाया जा सकता है कि उनका यह प्रयत्न व्यर्थ भी नहीं है, केवल तुम्हारी भलाई ही के लिए भी नहीं है। उनके मान में शायद कोई बात है।'

वन्दना ने कहा—'जो है वह मैं जानती हूँ। भतीजा बैरिस्टरी पास करके आया—'मौसी ने हमारी बातचीत, तथा परिचय करा दिया है। उनका पक्का विश्वास है कि वही मेरे लिए योग्य वर है। क्योंकि पिता की मैं अकेली बेटी हूँ, जो जायदाद वह छोड़ जायँगे, उसकी आमदनी से कुछ न कमाने पर भी भतीजे का काम मजे में चल जायगा।'

विप्रदास ने कहा—'भतीजे की भलाई की बात सोचना बुआ के लिए कोई दोष की बात नहीं है। लड़का कैसा है देखने में?'

'अच्छा है।'

'मेरे जैसा ही होगा?'

वन्दना ने हँसकर कहा—'यह तो आप गर्व की बात कह रहे हैं। मन-ही-मन अच्छी तरह जानते हैं कि इतना रूप दुनिया में नहीं है। किन्तु इसकी बराबरी करने पर तो संसार की सभी लड़कियों को ही कुँवारी रहना पड़ेगा मुखोपाध्याय जी। केवल आपकी ही ओर देखकर उन्हें दिन बिताने पड़ेंगे। फिर भी कह सकती हूँ कि अशोक देखने में अच्छा ही है। दोष देखते फिरना मुझे अच्छा नहीं लगता।'

'तो यह कहो कि पसन्द आ गया?'

'यदि आया भी है, तो उस पसन्दगी को कोई दोष नहीं समझेगा, इतना कह सकती हूँ।' यह कहकर वन्दना हँसकर उठ खड़ी हुई। बोली—'पाँच बज गये। आपका बार्ली पीने का समय हो गया है—जाकर ले आऊँ। इस बीच में अशोक की बात जरा और सोच लें।' कहकर वह चली गई। पाँच मिनट के बाद जब वह लौट आई, उसके हाथों में चाँदी के कटोरे में बार्ली थी—बरफ पर रखकर ठण्डी की हुई—बार्ली में नींबू का रस निचोड़कर कहा—'यह सब पी लेना होगा। रखने से काम नहीं बनेगा। सेवा की त्रुटि दिखाकर कोई मुझसे विवरण माँगेगा, वह मैं न होने दूँगी।'

राय साहब का लम्बा-चौड़ा तार है—तार को आदि से अन्त तक पढ़कर उसे लौटाकर विप्रदास बोला—'कुछ भी सही, लेकिन तुम्हारे पिता ने अनुचित कुछ भी नहीं लिखा है। निःस्वार्थ परोपकार में भय रहता है। बीमार आत्मीय की सेवा करने आना भी दुनिया में सरल काम नहीं।'

'वन्दना ने पूछा— 'क्या आप मुझे मौसी के घर ही लौट जाने की राय देते हैं?'

'तुम्हारे पिता की आज्ञा तो यही है वन्दना। यह तो बलरामपुर के मुखोपाध्यायों का परिवार नहीं हैं—आदेश देने वाले मालिक यहाँ तुम्हारे मुखोपाध्याय नहीं हैं—मौसी हैं—और आदेश दिया है दूसरे के मुँह से; इसलिए पालन करना ही होगा।'

वन्दना ने कहा—'आप तो यह कहेंगे ही। पिताजी को कुछ भी नहीं मालूम, फिर भी यह आज्ञा, उचित-अनुचित कुछ भी हो, माननी पड़ेगी।' मौसी का घर कहाँ है यह तो आपको मालूम ही है।'

विप्रदास ने कहा—'नहीं मालूम, लेकिन तुम्हारी ही जबानी सुना है, अच्छी जगह नहीं है। मैं ठीक होता तो स्वयं बम्बई जाकर तुम्हें पहुँचा आता, परन्तु इतनी शक्ति है कहाँ!'

'क्या इस दशा में ही आपको छोड़कर चली जाऊँ! जिस मौसी को पहचानती भी नहीं, उसी का हठ बना रहेगा।'

'किन्तु उपाय क्या है।'

'उपाय यह है कि मैं जाऊँगी नहीं।'

'तब तो रहो। एक तार पिता जी को भेज दो। किन्तु मौसी ले जाने के के लिए आवें तो उनसे क्या कहोगी?'

वन्दना ने कहा—'केवल यही कहूँगी कि मैं जा नहीं सकती। इससे अधिक नहीं।'

विप्रदास ने कहा—'किन्तु मौसी इतने ही से चुप न होंगी। शायद इस बार घर पर मेरी माँ के पास तार भेजेंगी।'

इसकी आशा वन्दना को नहीं थी, सुनकर चिन्तित हो उठी। बोली—'आप ठीक ही कह रहे हैं मुखोपाध्याय जी, शायद सब समाप्त हो ही गया है—

कुछ करने में मौसी ने बचा नहीं रखा है । लेकिन मालूम है क्यों ?'

विप्रदास ने कहा—'जानना तो संभव नहीं है, किन्तु इतने का अनुमान लगाया जा सकता है कि उनका यह प्रयत्न व्यर्थ भी नहीं है, केवल तुम्हारी भलाई ही के लिए भी नहीं है । उनके मान में शायद कोई बात है ।'

वन्दना ने कहा—'जो है वह मैं जानती हूँ । भतीजा बैरिस्टरी पास करके आया—'मौसी ने हमारी बातचीत, तथा परिचय करा दिया है । उनका पक्का विश्वास है कि वही मेरे लिए योग्य वर है । क्योंकि पिता की मैं अकेली बेटी हूँ, जो जायदाद वह छोड़ जायँगे, उसकी आमदनी से कुछ न कमाने पर भी भतीजे का काम मजे में चल जायगा ।'

विप्रदास ने कहा—'भतीजे की भलाई की बात सोचना बुआ के लिए कोई दोष की बात नहीं है । लड़का कैसा है देखने में ?'

'अच्छा है ।'

'मेरे जैसा ही होगा ?'

वन्दना ने हँसकर कहा—'यह तो आप गर्व की बात कह रहे हैं । मन-ही-मन अच्छी तरह जानते हैं कि इतना रूप दुनिया में नहीं है । किन्तु इसकी बराबरी करने पर तो संसार की सभी लड़कियों को ही कुंवारी रहना पड़ेगा मुखोपाध्याय जी । केवल आपकी ही ओर देखकर उन्हें दिन बिताने पड़ेंगे । फिर भी कह सकती हूँ कि अशोक देखने में अच्छा ही है । दोष देखते फिरना मुझे अच्छा नहीं लगता ।'

'तो यह कहो कि पसन्द आ गया ?'

'यदि आया भी है, तो उस पसन्दगी को कोई दोष नहीं समझेगा, इतना कह सकती हूँ ।' यह कहकर वन्दना हँसकर उठ खड़ी हुई । बोली—'पाँच बज गये । आपका बार्ली पीने का समय हो गया है—जाकर ले आऊँ । इस बीच में अशोक की बात जरा और सोच लें ।' कहकर वह चली गई । पाँच मिनट के बाद जब वह लौट आई, उसके हाथों में चाँदी के कटोरे में बार्ली थी—बरफ पर रखकर ठण्डी की हुई—बार्ली में नींबू का रस निचोड़कर कहा—'यह सब पी लेना होगा । रखने से काम नहीं बनेगा । सेवा की त्रुटि दिखाकर कोई मुझसे विवरण माँगेगा, वह मैं न होने दूंगी ।'

विप्रदास ने कहा—'जीतने की विद्या सोलहो आने सीख ली है, देख रहा हूँ किसी से भी हारना न पड़ेगा।'

वन्दना ने कहा—'नहीं, कोई पूछेगा तो कहूँगी, मुखोपाध्याय जी पर हाथ साफ करके पक्की हो गई हूँ।'

पानी समाप्त होने पर जूठे वर्तन को लेकर वन्दना चली जा रही थी, लौटकर पूछा—'मेरी एक वात का उत्तर देंगे मुखोपाध्याय जी ?'

'किस बात का उत्तर ?'

'आपको संसार में सबसे अधिक कौन प्यार करता है बता सकते हैं ?'

'बता सकता हूँ।'

'तो जरा उसका नाम बतलाइये ?'

'नाम है वन्दना देवी।'

सुनकर वन्दना क्षण भर में बाहर चली गई, लेकिन लगभग पन्द्रह मिनट के बाद ही फिर लौटकर खाट के पास एक कुर्सी खींचकर बैठ गई। हँसकर विप्रदास ने पूछा—'इस प्रकार क्यों भाग गई थीं; बोलो ?'

पहले तो वन्दना उत्तर न दे सकी। फिर धीरे-धीरे बोली—'बात न जाने अचानक सहन न कर सकी मुखोपाध्याय जी, सोचा कि मानो मेरी कोई भद्दी चोरी अचानक आपने पकड़ ली है।'

'शायद इसीलिए इस समय भी सिर उठाकर देख नहीं पा रही हो ?'

'क्यों नहीं देख सकूँगी ?' कहकर तीव्र गति से सिर उठाकर वन्दना ने हँसना चाहा, किन्तु लज्जा से उसका सारा मुख लाल हो गया, बाद को संयत-होकर बोली—'आपने इस बात को कैसे जान लिया, बोलिए तो ?'

विप्रदास ने कहा—'यह प्रश्न व्यर्थ है वन्दना। मैं क्या ऐसा हो गया हूँ कि इतना भी नहीं समझ सकता ? इसके अलावा अगर कभी सन्देह था भी तो आज तुम्हारी ओर देखकर अब तो मुझे नहीं रहा।'

फिर वन्दना ने सिर झुका लिया। विप्रदास ने कहा—'किन्तु यह नहीं हो सकता वन्दना, सिर उठाकर तुम्हें देखना ही होगा। शर्म के योग्य तुमने कुछ भी नहीं किया है, मुझसे तुम्हें लजाने की कोई आवश्यकता भी नहीं है। देखो, ऊपर सिर उठाओ, और बात मेरी सुनो।'

यह वही आशा है। वन्दना ने सिर उठाकर देखा, पल भर चुप रह कर बोली—'शायद आप मेरे ऊपर अप्रसन्न हैं न मुखोपाध्याय जी…?

विप्रदास ने कहा—'कुछ भी नहीं। यह क्या अप्रसन्न होने की बात है? मुझे केवल यही आशा है कि यह भूल तुम किसी दिन स्वयं ही जान लोगी। उसी दिन ही इसका प्रतिकार होगा।'

'यदि पकड़ में नहीं आ सकी और इसे यदि कभी भूल ही नहीं समझ सकी तो?'

'समझ जाओगी। इससे दुनिया में कितने अनर्थों का आरम्भ होता है, यदि समझ नहीं सकी तो मैं समझूंगा कि तुमने मुझे प्रेम नहीं किया है। सुधीर को प्रेम करने के समान यह भी तुम्हारी एक तरंग थी, हृदय के अन्दर किसी को खींच लाकर केवल अपने को भुलावा देना। इससे अधिक नहीं।'

वन्दना का मुख पल भर में फक हो गया, अत्यंत दुखी स्वर में वह बोली—'सुधीर से बराबरी न करें मुखोपाध्याय जी, वह मुझसे सहन न होगा। किंतु इससे दुनिया में अनर्थों का श्री गणेश होता है, आपकी यह बात मानती हूँ। यह अमंगल को खींच लाता है, किंतु इसी कारण असत्य बोल कर नहीं। असत्य ही यदि होता तो आपका इतन प्रेम भी क्या पाती? मैंने क्या नहीं पाया?'

साँस बंद किये विप्रदास इन बातों को सुन रहा था, सुनना समाप्त करके सिर उठाते ही वह विस्मित होकर बोल उठा—'क्यों नहीं पाया है वन्दना, तुमने बहुत-सा पाया है,। वर्ना तुम्हारे हाथों का मैं कैसे खाता? तुम्हारी रात-दिन की सेवा मैं स्वीकार करता किस बूते पर? लेकिन इसीलिए क्या ग्लानि में, अधर्म पर स्वयं उतर आऊँ, तुम्हें खींच लाऊँ? जो लोग मेरी ओर देखकर सदा विश्वास से सिर ऊँचा किये हुए हैं, सब कुछ तोड़-फोड़कर क्या उन्हें नीचा दिखा दूं? यही कहना चाहती हो?'

वन्दना ने कहा—'तो आप भी स्वीकार कीजिए की आप जो कुछ त्याग नहीं सकते हैं, वह है केवल अभिमान ही। सच-सच बतलाइए उनकी दृष्टि में इस बड़े बने रहने के मोह को ही आपने बड़ा समझा है। वर्ना ग्लानि किस बात की मुखोपाध्याय जी—किस बात को हम अधर्म समझें? मनुष्य

विप्रदास ने कहा—'जीतने की विद्या सोलहो आने सीख ली है, देख रहा हूँ किसी से भी हारना न पड़ेगा।'

वन्दना ने कहा—'नहीं, कोई पूछेगा तो कहूँगी, मुखोपाध्याय जी पर हाथ साफ करके पक्की हो गई हूँ।'

पानी समाप्त होने पर जूठे वर्तन को लेकर वन्दना चली जा रही थी, लौटकर पूछा—'मेरी एक बात का उत्तर देंगे मुखोपाध्याय जी ?'

'किस बात का उत्तर ?'

'आपको संसार में सबसे अधिक कौन प्यार करता है बता सकते हैं ?'

'बता सकता हूँ।'

'तो जरा उसका नाम बतलाइये ?'

'नाम है वन्दना देवी।'

सुनकर वन्दना क्षण भर में बाहर चली गई, लेकिन लगभग पन्द्रह मिनट के बाद ही फिर लौटकर खाट के पास एक कुर्सी खींचकर बैठ गई। हँसकर विप्रदास ने पूछा—'इस प्रकार क्यों भाग गई थीं; बोलो ?'

पहले तो वन्दना उत्तर न दे सकी। फिर धीरे-धीरे बोली—'बात न जाने अचानक सहन न कर सकी मुखोपाध्याय जी, सोचा कि मानो मेरी कोई भद्दी चोरी अचानक आपने पकड़ ली है।'

'शायद इसीलिए इस समय भी सिर उठाकर देख नहीं पा रही हो ?'

'क्यों नहीं देख सकूँगी ?' कहकर तीव्र गति से सिर उठाकर वन्दना ने हँसना चाहा, किन्तु लज्जा से उसका सारा मुख लाल हो गया, बाद को संयत-होकर बोली—'आपने इस बात को कैसे जान लिया, बोलिए तो ?'

विप्रदास ने कहा—'यह प्रश्न व्यर्थ है वन्दना। मैं क्या ऐसा हो गया हूँ कि इतना भी नहीं समझ सकता ? इसके अलावा अगर कभी सन्देह था भी तो आज तुम्हारी ओर देखकर अब तो मुझे नहीं रहा।'

फिर वन्दना ने सिर झुका लिया। विप्रदास ने कहा—'किन्तु यह नहीं हो सकता वन्दना, सिर उठाकर तुम्हें देखना ही होगा। शर्म के योग्य तुमने कुछ भी नहीं किया है, मुझसे तुम्हें लजाने की कोई आवश्यकता भी नहीं है। देखो, ऊपर सिर उठाओ, और बात मेरी सुनो।'

यह वही आज्ञा है। वन्दना ने सिर उठाकर देखा, पल भर चुप रह कर बोली—'शायद आप मेरे ऊपर अप्रसन्न हैं न मुखोपाध्याय जी···?

विप्रदास ने कहा—'कुछ भी नहीं। यह क्या अप्रसन्न होने की बात है? मुझे केवल यही आशा है कि यह भूल तुम किसी दिन स्वयं ही जान लोगी। उसी दिन ही इसका प्रतिकार होगा।'

'यदि पकड़ में नहीं आ सकी और इसे यदि कभी भूल ही नहीं समझ सकी तो?'

'समझ जाओगी। इससे दुनिया में कितने अनर्थों का आरम्भ होता है, यदि समझ नहीं सकी तो मैं समझूंगा कि तुमने मुझे प्रेम नहीं किया है। सुधीर को प्रेम करने के समान यह भी तुम्हारी एक तरंग थी, हृदय के अन्दर किसी को खींच लाकर केवल अपने को भुलावा देना। इससे अधिक नहीं।'

वन्दना का मुख पल भर में फक हो गया, अत्यंत दुखी स्वर में वह बोली—'सुधीर से बराबरी न करें मुखोपाध्याय जी, वह मुझसे सहन न होगा। किंतु इससे दुनिया में अनर्थों का श्री गणेश होता है, आपकी यह बात मानती हूँ। यह अमंगल को खींच लाता है, किंतु इसी कारण असत्य बोल कर नहीं। असत्य ही यदि होता तो आपका इतन प्रेम भी क्या पाती? मैंने क्या नहीं पाया?'

साँस बंद किये विप्रदास इन बातों को सुन रहा था, सुनना समाप्त करके सिर उठाते ही वह विस्मित होकर बोल उठा—'क्यों नहीं पाया है वन्दना, तुमने बहुत-सा पाया है,। वर्ना तुम्हारे हाथों का मैं कैसे खाता? तुम्हारी रात-दिन की सेवा मैं स्वीकार करता किस बूते पर? लेकिन इसीलिए क्या ग्लानि में, अधर्म पर स्वयं उतर आऊँ, तुम्हें खींच लाऊँ? जो लोग मेरी ओर देखकर सदा विश्वास से सिर ऊँचा किये हुए हैं, सब कुछ तोड़-फोड़कर क्या उन्हें नीचा दिखा दूं? यही कहना चाहती हो?'

वन्दना ने कहा—'तो आप भी स्वीकार कीजिए की आप जो कुछ त्याग नहीं सकते हैं, वह है केवल अभिमान ही। सच-सच बतलाइए उनकी दृष्टि में इस बड़े बने रहने के मोह को ही आपने बड़ा समझा है। वर्ना ग्लानि किस बात की मुखोपाध्याय जी—किस बात को हम अधर्म समझें? मनुष्य

विप्रदास ने कहा—'जीतने की विद्या सोलहो आने सीख ली है, देख रहा हूँ किसी से भी हारना न पड़ेगा।'

वन्दना ने कहा—'नहीं, कोई पूछेगा तो कहूँगी, मुखोपाध्याय जी पर हाथ साफ करके पक्की हो गई हूँ।'

पानी समाप्त होने पर जूठे वर्तन को लेकर वन्दना चली जा रही थी, लौटकर पूछा—'मेरी एक बात का उत्तर देंगे मुखोपाध्याय जी?'

'किस बात का उत्तर?'

'आपको संसार में सबसे अधिक कौन प्यार करता है बता सकते है?'

'बता सकता हूँ।'

'तो जरा उसका नाम बतलाइये?'

'नाम है वन्दना देवी।'

सुनकर वन्दना क्षण भर में बाहर चली गई, लेकिन लगभग पन्द्रह मिनट के बाद ही फिर लौटकर खाट के पास एक कुर्सी खींचकर बैठ गई। हँसकर विप्रदास ने पूछा—'इस प्रकार क्यों भाग गई थीं; बोलो?'

पहले तो वन्दना उत्तर न दे सकी। फिर धीरे-धीरे बोली—'बात न जाने अचानक सहन न कर सकी मुखोपाध्याय जी, सोचा कि मानो मेरी कोई भद्दी चोरी अचानक आपने पकड़ ली है।'

'शायद इसीलिए इस समय भी सिर उठाकर देख नहीं पा रही हो?'

'क्यों नहीं देख सकूँगी?' कहकर तीव्र गति से सिर उठाकर वन्दना ने हँसना चाहा, किन्तु लज्जा से उसका सारा मुख लाल हो गया, बाद को संयत होकर बोली—'आपने इस बात को कैसे जान लिया, बोलिए तो?'

विप्रदास ने कहा—'यह प्रश्न व्यर्थ है वन्दना। मैं क्या ऐसा हो गया हूँ कि इतना भी नहीं समझ सकता? इसके अलावा अगर कभी सन्देह था भी तो आज तुम्हारी ओर देखकर अब तो मुझे नहीं रहा।'

फिर वन्दना ने सिर झुका लिया। विप्रदास ने कहा—'किन्तु यह नहीं हो सकता वन्दना, सिर उठाकर तुम्हें देखना ही होगा। शर्म के योग्य तुमने कुछ भी नहीं किया है, मुझसे तुम्हें लजाने की कोई आवश्यकता भी नहीं है। देखो, ऊपर सिर उठाओ, और बात मेरी सुनो।'

यह वही आज्ञा है। वन्दना ने सिर उठाकर देखा, पल भर चुप रह कर बोली—'शायद आप मेरे ऊपर अप्रसन्न हैं न मुखोपाध्याय जी···?

विप्रदास ने कहा—'कुछ भी नहीं। यह क्या अप्रसन्न होने की वात है ? मुझे केवल यही आशा है कि यह भूल तुम किसी दिन स्वयं ही जान लोगी। उसी दिन ही इसका प्रतिकार होगा।'

'यदि पकड़ में नहीं आ सकी और इसे यदि कभी भूल ही नहीं समझ सकी तो ?'

'समझ जाओगी। इससे दुनिया में कितने अनर्थों का आरम्भ होता है, यदि समझ नहीं सकी तो मैं समझूंगा कि तुमने मुझे प्रेम नहीं किया है। सुधीर को प्रेम करने के समान यह भी तुम्हारी एक तरंग थी, हृदय के अन्दर किसी को खींच लाकर केवल अपने को भुलावा देना। इससे अधिक नहीं।'

वन्दना का मुख पल भर में फक हो गया, अत्यंत दुखी स्वर में वह बोली—'सुधीर से वरावरी न करें मुखोपाध्याय जी, वह मुझसे सहन न होगा। किंतु इससे दुनिया में अनर्थो का श्री गणेश होता है, आपकी यह वात मानती हूँ। यह अमंगल को खींच लाता है, किंतु इसी कारण असत्य बोल कर नहीं। असत्य ही यदि होता तो आपका इतन प्रेम भी क्या पाती ? मैंने क्या नहीं पाया ?'

साँस वंद किये विप्रदास इन वातों को सुन रहा था, सुनना समाप्त करके सिर उठाते ही वह विस्मित होकर वोल उठा—'क्यों नहीं पाया है वन्दना, तुमने वहुत-सा पाया है,। वर्ना तुम्हारे हाथों का मैं कैसे खाता ? तुम्हारी रात-दिन की सेवा मैं स्वीकार करता किस वूते पर ? लेकिन इसीलिए क्या ग्लानि में, अधर्म पर स्वयं उतर आऊँ, तुम्हें खींच लाऊँ ? जो लोग मेरी ओर देखकर सदा विश्वास से सिर ऊँचा किये हुए हैं, सव कुछ तोड़-फोड़कर क्या उन्हें नीचा दिखा दूं ? यही कहना चाहती हो ?'

वन्दना ने कहा—'तो आप भी स्वीकार कीजिए की आप जो कुछ त्याग नहीं सकते हैं, वह है केवल अभिमान ही। सच-सच वतलाइए उनकी दृष्टि में इस वड़े वने रहने के मोह को ही आपने वड़ा समझा है। वर्ना ग्लानि किस वात की मुखोपाध्याय जी—किस वात को हम अधर्म समझें ? मनुष्य

की एक गढ़ंत व्यवस्था—मनुष्य ने ही जिसे बार-बार माना है, बार-बार तोड़ा है—उसी को ? आप चाहे मानें लेकिन मुझसे यह नहीं होगा।'

गम्भीर होकर विप्रदास ने कहा—'तुमसे चाहे न हो, मुझसे होगा, और इसी से हमारा काम चल जायगा। अंग्रेजी पुस्तकें बहुत पढ़ी हैं वन्दना, मौसी के घर में आलोचना भी बहुत सुनी है, जान पड़ता है उन्हें भूलने में देर लगेगी।'

वन्दना ने कहा—'आप मेरी हँसी उड़ा रहे हैं, लेकिन मैंने जरा भी हँसी नहीं उड़ायी है मुखोपाध्याय जी, जो कुछ भी कहा है सब सच ही कहा है।'

'अब समझा किंतु यह पागलपन बुद्धि में घुसा किसने दिया ?'

'आपने ही तो।'

'यह कहती क्या हो ! यह अधर्म-बुद्धि क्या मैंने ही दी ?'

'हाँ, आपने ही दी है। शायद अनजाने, किन्तु आपके अलावा और दूसरा कोई नहीं।'

अब विप्रदास आश्चर्य से चुपचाप देखता रह गया। वन्दना कहने लगी—'जिसको अधर्म कहकर बुराई की, उसे तो मैं नहीं मानती—मैं जानती हूँ, धर्म जिसे समझ रहे हैं वह आपका केवल संस्कार है। बहुत गहरा संस्कार, फिर भी वह उससे बड़ा नहीं है।'

सिर हिलाकर विप्रदास ने स्वीकार करके कहा—'शयद तुम्हारी यह बात है वन्दना, यह मेरा संस्कार है, बहुत गहरा संस्कार। किन्तु मनुष्य का धर्म जब इस संस्कार का रूप धरता है वन्दना, तभी वह सही होता है, तभी वह सरल होता है। जीवन के कर्त्तव्य में तब मुठभेड़ नहीं होती, उसके मानने के लिए अपने साथ ही संघर्ष करके परेशान नहीं होना पड़ता। तब हो जाती है शान्ति, अबाध जल धारा की भाँति वह सरलता से ही बहता रहता है। शायद उस दिन यही कहा था, यह है विप्रदास का अत्याज्य धर्म—इसमें हेर-फेर नहीं हो सकता।'

'क्या कभी भी इसमें हेर-फेर नहीं होता, मुखोपाध्याय जी ?'

'समझता तो यही हूं वन्दना। आज भी सोच नहीं सकता कि इस जीवन में इसका रूपान्तर है।'

इतने समय में वन्दना के दोनों नेत्र भर आये, विप्रदास सावधानी से उसके हाथों को खींच कर बोला—'लेकिन इसके परिवर्त्तन की ही कौन सी आवश्यकता है ? तुम्हें प्रेम किया है—रहा तुम्हारा वह प्रेम मेरे हृदय में—अब से वह मुझे दुःख में धैर्य देगा, दुर्बलता में बल, जब अकेले बोझ ढोया न जा सकेगा तब तुम्हें बुलाऊँगा, आज से उसे भी तुम्हारे लिए रख छोड़ा। तब आओगी न ?'

बायें हाथ से आँखें पोंछ कर वन्दना बोली—'आऊँगी यदि आने की शक्ति रही—तब भी यदि मार्ग खुला रहा—वर्ना नहीं आ सकूँगी मुखोपाध्याय जी।'

बात सुनकर विप्रदास मानो विस्मित हो गया, बोला—'कहती हो ठीक ही। आने का मार्ग यदि खुला रहता है—सदैव के लिए यदि वह बन्द नहीं हो गया, किन्तु तब आना। अप्रसन्न होकर मुँह फेर न लेना।'

फिर नेत्रों के आँसू पोंछकर वन्दना बोली—'मैं एक बात की भिक्षा माँगती हूँ मुखोपाध्याय जी, किसी से मेरी बात न कहिएगा।'

'नहीं, कहूँगा नहीं। उन आदमियों में से मैं नहीं हूँ। तुम तो स्वयं ही जानती हो।'

'जानती तो हूँ।'

कुछ देर तक दोनों ही चुप रहे। विप्रदास ने कहा—'इस दुनिया में मैं इतना अकेला हूँ यह बात तुमने कैसे समझ ली वन्दना ?'

वन्दना ने कहा—'न मालूम कैसे समझ ली। आप लोगों के घर से क्रोध करके चली आई, आप साथ आये। गाड़ी के उन मतवाले साहबों की बात स्मरण आती है ? बात कोई विशेष नहीं—फिर भी जान पड़ता है कि जिन्हें हम चारों ओर देखते हैं, उनके दल के आप हैं नहीं, अकेला कोई बोझ कन्धों पर लेने में आपको उज्र नहीं होता। उस दिन द्विजू बाबू ने यही कहा था—मिलाकर देखा किसी से भी कुछ आप प्रत्याशा नहीं रखते हैं। रात को बिस्तर पर लेटकर केवल आपकी ही बात याद आती रही—सो न सकी। रात कि अन्तिम पहर में बैठे हुए देखा कि नीचे पूजा घर में दीपक जल रहा है, आप ध्यान में बैठे हुए हैं। एकटक देखते-देखते सबेरा हो गया, नौकर-चाकर कहीं कोई देख न लें, डरती हुई अपने कमरे में भाग आई। आपकी वह तस्वीर

की एक गढ़ंत व्यवस्था—मनुष्य ने ही जिसे बार-बार माना है, बार-बार तोड़ा है—उसी को ? आप चाहे मानें लेकिन मुझसे यह नहीं होगा।'

गम्भीर होकर विप्रदास ने कहा—'तुमसे चाहे न हो, मुझसे होगा, और इसी से हमारा काम चल जायगा। अंग्रेजी पुस्तकें बहुत पढ़ी हैं वन्दना, मौसी के घर में आलोचना भी बहुत सुनी है, जान पड़ता है उन्हें भूलने में देर लगेगी।'

वन्दना ने कहा—'आप मेरी हँसी उड़ा रहे हैं, लेकिन मैंने जरा भी हँसी नहीं उड़ायी है मुखोपाध्याय जी, जो कुछ भी कहा है सब सच ही कहा है।'

'अब समझा किंतु यह पागलपन बुद्धि में घुसा किसने दिया ?'

'आपने ही तो।'

'यह कहती क्या हो ! यह अधर्म-बुद्धि क्या मैंने ही दी ?'

'हाँ, आपने ही दी है। शायद अनजाने, किन्तु आपके अलावा और दूसरा कोई नहीं।'

अब विप्रदास आश्चर्य से चुपचाप देखता रह गया। वन्दना कहने लगी—'जिसको अधर्म कहकर बुराई की, उसे तो मैं नहीं मानती—मैं जानती हूँ, धर्म जिसे समझ रहे हैं वह आपका केवल संस्कार है। बहुत गहरा संस्कार, फिर भी वह उससे बड़ा नहीं है।'

सिर हिलाकर विप्रदास ने स्वीकार करके कहा—'शयद तुम्हारी यह बात र है वन्दना, यह मेरा संस्कार है, बहुत गहरा संस्कार। किन्तु मनुष्य का धर्म जब इस संस्कार का रूप धरता है वन्दना, तभी वह सही होता है, तभी वह सरल होता है। जीवन के कर्त्तव्य में तब मुठभेड़ नहीं होती, उसके मानने के लिए अपने साथ ही संघर्ष करके परेशान नहीं होना पड़ता। तब हो जाती है शान्ति, अबाध जल धारा की भाँति वह सरलता से ही बहता रहता है। शायद उस दिन यही कहा था, यह है विप्रदास का अत्याज्य धर्म—इसमें हेर-फेर नहीं हो सकता।'

'क्या कभी भी इसमें हेर-फेर नहीं होता, मुखोपाध्याय जी ?'

'समझता तो यही हूं वन्दना। आज भी सोच नहीं सकता कि इस जीवन में इसका रूपान्तर है।'

इतने समय में वन्दना के दोनों नेत्र भर आये, विप्रदास सावधानी से उसके हाथों को खींच कर बोला—'लेकिन इसके परिवर्त्तन की ही कौन सी आवश्यकता है ? तुम्हें प्रेम किया है—रहा तुम्हारा वह प्रेम मेरे हृदय में—अब से वह मुझे दुःख में धैर्य देगा, दुर्बलता में बल, जब अकेले बोझ ढोया न जा सकेगा तब तुम्हें बुलाऊँगा, आज से उसे भी तुम्हारे लिए रख छोड़ा। तब आओगी न ?'

बायें हाथ से आँखें पोंछ कर वन्दना बोली—'आऊँगी यदि आने की शक्ति रही—तब भी यदि मार्ग खुला रहा—वर्ना नहीं आ सकूँगी मुखोपाध्याय जी।'

बात सुनकर विप्रदास मानो विस्मित हो गया, बोला—'कहती हो ठीक ही। आने का मार्ग यदि खुला रहता है—सदैव के लिए यदि वह बन्द नहीं हो गया, किन्तु तब आना। अप्रसन्न होकर मुँह फेर न लेना।'

फिर नेत्रों के आँसू पोंछकर वन्दना बोली—'मैं एक बात की भिक्षा माँगती हूँ मुखोपाध्याय जी, किसी से मेरी बात न कहिएगा।'

'नहीं, कहूँगा नहीं। उन आदमियों में से मैं नहीं हूँ। तुम तो स्वयं ही जानती हो।'

'जानती तो हूँ।'

कुछ देर तक दोनों ही चुप रहे। विप्रदास ने कहा—'इस दुनिया में मैं इतना अकेला हूँ यह बात तुमने कैसे समझ ली वन्दना ?'

वन्दना ने कहा—'न मालूम कैसे समझ ली। आप लोगों के घर से क्रोध करके चली आई, आप साथ आये। गाड़ी के उन मतवाले साहबों की बात स्मरण आती है ? बात कोई विशेष नहीं—फिर भी जान पड़ता है कि जिन्हें हम चारों ओर देखते हैं, उनके दल के आप हैं नहीं, अकेला कोई बोझ कन्धों पर लेने में आपको उज्र नहीं होता। उस दिन द्विजू बाबू ने यही कहा था—मिलाकर देखा किसी से भी कुछ आप प्रत्याशा नहीं रखते हैं। रात को बिस्तर पर लेटकर केवल आपकी ही बात याद आती रही—सो न सकी। रात के अन्तिम पहर में बैठे हुए देखा कि नीचे पूजा घर में दीपक जल रहा है, आप ध्यान में बैठे हुए हैं। एकटक देखते-देखते सवेरा हो गया, नौकर-चाकर कहीं कोई देख न लें, डरती हुई अपने कमरे में भाग आई। आपकी वह तस्वीर

फिर भुला न सकी मुखोपाध्याय जी, नेत्र बन्द करते ही मुझे दिखाई पड़ती है।'

हँसकर विप्रदास ने कहा—'क्या मुझे पूजा करते देखा था?'

वन्दना ने कहा—'पूजा करते तो आपकी माँ को भी देखा है, किन्तु यह वह नहीं है। वह कुछ और ही है। आप किसकी पूजा करते हैं मुखोपाध्याय जी?'

फिर हँसकर विप्रदास ने कहा—'यह जानकर तुम करोगी क्या? तुम तो यह करोगी नहीं।'

'नहीं, करूँगी नहीं। फिर भी जानने का मन होता है।'

विप्रदास मौन रहा। वन्दना कहने लगी—'मुझे उसी दिन जान पड़ा कि आप सबके अन्दर रहते हुए भी सबसे अलग हैं, आप अकेले हैं। जिस ऊँचाई पर पहुँचने से आपका साथी बना जा सकता है, उस ऊँचाई पर उनमें से कोई भी नहीं पहुँच सकता। एक बात और पूछूँ मुखोपाध्याय जी? बतलाएँगे न?'

'कौन-सी बात वन्दना?'

'स्त्रियों के प्रेम की शायद आपको आवश्यकता नहीं है न?'

'इस प्रश्न का मतलब?'

'मतलब नहीं जानती, योंही पूछ रही हूँ। इसकी शायद अब आप इच्छा भी नहीं करते हैं—आपके लिए एकदम तुच्छ हो गया है। सच है या नहीं?'

विप्रदास ने उत्तर नहीं दिया, केवल हँसता हुआ देखता रहा।

अचानक नीचे के आँगन में गाड़ी की आवज सुनाई पड़ी और सुनाई पड़ा द्विजदास का कण्ठ-स्वर—और दूसरे ही क्षण द्वार के पास आ पुकार कर अन्नदा बोली—द्विजू आया है।'

'क्या अकेला ही? और कोई साथ आया है?'

'नहीं, अकेला ही तो देख रही हूँ और कोई नहीं दिखाई देता।'

वन्दना सुनकर चंचल हो उठी। बोली—'चलूँ मुखोपाध्याय जी, देखूँ उनके भोजन की व्यवस्था ठीक है या नहीं।' इतना कहकर वह चल दी।

प्रातः द्विजू ने आकर जब विप्रदास की चरण-धूलि लेकर प्रणाम किया, तब कमरे के एक कोने में बैठी वन्दना पूजा की सामग्री तैयार कर रही थी,

द्विजदास बोला—'इसी पंचमी को माँ पोखरे की प्रतिष्ठा करने जा रही हैं। बड़ी व्यवस्था है भैया।'

'माँ के कामों की व्यवस्था बड़ी ही होती है द्विजू, इसमें चिन्ता की कौन-सी बात है?' हँसकर विप्रदास ने कहा।

'द्विजदास बोला—'वासू के अच्छे होने की मनौती की पूजा इस बार साथ ही होगी—वह भी एक अश्वमेध यज्ञ ही है। पण्डितों की विदाई की सूची तैयार हो रही है—आत्मीय-स्वजन, अतिथि-अभ्यागत की जो संक्षिप्त तालिका भाभी के मुख से सुनी, उससे सन्देह होता है कि आपकी थैली में ये कुछ बड़ा हाथ मारेंगी। समय के भीतर चेत जाइए।'

वन्दना ने सिर नहीं उठाया, सँभालने में असमर्थ हो हँसकर लोट गई। विप्रदास सांसारिक आदमी हैं, विप्रदास कंजूस हैं, यह शिकायत एक माँ के अलावा और कोई भी अवसर मिलने पर करने में नहीं चूकता। विप्रदास स्वयं भी इस हँसी में शामिल होकर बोला—'इस बार तेरा नम्बर है। इस बार तेरा व्यय होगा।'

'मेरा? मुझे कोई उज्र नहीं, किन्तु इससे प्रबन्ध में कुछ हेर-फेर करना पड़ेगा। विदाई जिनकी होगी, वह पाठशाला का पण्डित समुदाय नहीं, बल्कि पाठशाला का द्वार बन्द करके जिन्हें धक्के देकर बाहर रखा गया है—वे होंगे।'

उसी प्रकार हँसकर विप्रदास बोला—'पाठशाला पर तू अप्रसन्न क्यों है? लोगों के मुँह से केवल निन्दा ही सुनी है, स्वयं कभी नेत्रों से नहीं देखी। उनके दल का होने के कारण तेरे समय में रोटी न मिलेगी।'

द्विजदास ने और पास आकर एक बार फिर पद-धूलि ली, बोला—'ऐसा न कहें। आप दोनों दल के बाहर हैं, लेकिन तीसरा स्थान कौन-सा है, उसे भी मैं नहीं जानता। केवल यही जानता हूँ कि मेरे भैया मेरे निर्णय से दूर हैं।'

विप्रदास ने बात टाल दी। पूछा—'मेरी बीमारी की खबर माँ ने तो सुनी?'

'नहीं। बल्कि यह अच्छा होता कि पोखरे की प्रतिष्ठा का ...

हो जाता ।'

'सम्बन्धियों के लाने का प्रबन्ध हुआ ?'

'हो रहा है। भूत, भविष्य, वर्त्तमान सभी की। लड़की सहित अक्षय बाबू को निमन्त्र दिया गया है। माँ समझती हैं बड़े आयोजन में मैत्रेयी की अग्नि-परीक्षा हो जायगी। उन्हें ले जाने का भार मेरे ऊपर दिया गया है।'

'और किसी को ले जाने की बात माँ ने नहीं कही है ?—हाँ, अनु बहिन को ले जाना होगा। कॉलेज के लड़कों में यदि कोई जाना चाहता है, उन्हें भी।'

'तेरी भाभी की कोई माँग नहीं है ?'

'नहीं।'

'फिर नीचे मोटर की आवाज सुनाई पड़ी। भोंपू की पहचानी आवाज कानों में जाते ही वन्दना खिड़की से गर्दन बढ़ाकर बोली—'मौसी जी की गाड़ी है। मैं जाकर देखूं तो मुखोपाध्याय जी। आप संध्या-पूजा से अवकाश पा लें—विलम्ब होता जा रहा है।'

'मैं भी जाऊं हाथ-मुँह धो लूं। एक घण्टे के बाद आऊंगा।' कहकर द्विजदास भी चला गया। विप्रदास की सन्ध्या-पूजा खत्म हुई, आज वन्दना फल-मूल खाने के लिए दे गई। मौसी के घर से जो लड़की साथ ले जाने के लिए आई है, इसी को लेकर वन्दना व्यस्त है। उसी ने यह खबर दी।

ठीक समय पर द्विजदास लौट आया। उसके हाथ में बड़ी लम्बी सूची थी, कलकत्ते की आधी चीजें मोल लेकर गाड़ी में भरकर भेजनी होंगी। दोनों भाई जब इसी में लगे हुए थे, उसी समय बाहर से आवाज आई—'अन्दर आ सकती हूँ मुखोपाध्याय जी ! किन्तु मैं जूते पहने हूं।'

'जूते पहने ही चली आओ !' वन्दना कमरे में आकर दाखिल हुई। जिस वेश में पहले वह बलरामपुर में दिखाई पड़ी थी, यह वही है। विप्रदास ने आश्चर्य से पूछा—'कहीं जा रही हो वन्दना ?'

'हाँ, मौसी जी के घर।'

'कब वापस आओगी ?'

वापस आने की बात तो नहीं जानती मुखोपाध्याय जी।' कहकर उसने

झुककर विप्रदास को प्रणाम किया, किन्तु और दिनों की भाँति पैरों को हाथों से छुआ नहीं। सिर नहीं उठाया केवल हाथों को माथे से लगाकर द्विजदास को भी प्रणाम किया, इसके बाद कमरे से चल दी।

: २० :

'अचानक वन्दना क्यों चली गई? मेरा आ जाना ही क्या इसका कारण है?'—द्विजदास ने पूछा।

विप्रदास बोला—'उसके पिता ने तार दिया मौसी के घर जाकर रहने के लिए, जब तक बम्बई लौट जाना नहीं होता।'—किन्तु एकाएक मौसी कहाँ से टपक पड़ीं? वन्दना ने मुझसे एक प्रकार बातें ही नहीं कीं बराबर दूर-दूर रही और फिर सवेरा होते ही देखता हूँ वह चली गई। हाँ, एक नमस्कार कर गई लेकिन वह भी मुँह फेरकर। मेरे विरुद्ध उन्हें क्या हो गया?'

इस प्रश्न का उत्तर विप्रदास ने टाल दिया और मौसी के मामले को संक्षेप करके बोला—'मेरी बीमारी से डरकर इसी मौसी के घर से अनु बहिन सेवा करने के लिए उसे बुला लाई थीं। बहुत सेवा की है। तुम लोगों को उसका कृतज्ञ होना चाहिए।'

द्विजदास बोला—'नहीं होना चाहिए, यह नहीं कहता, किन्तु आपकी सेवा कर पाना भी तो एक सौभाग्य की बात है। यदि उसका मूल्य वह भी समझ सकी है, तो कृतज्ञता उसके यहाँ भी हमारी शेष है।'

विप्रदास हँसकर बोला—'घोर नराधम हो तुम।'

द्विजदास ने कहा—'नराधम हूँ पर मूर्ख नहीं हूँ। मेरी बात जाने दीजिए 'किन्तु यह सेवा करने की बात माँ के कानों में गई तो वे सदैव के लिए हमारी माँ को ही मोल ले लेंगी। यही क्या कोई साधारण सम्पत्ति है।'

विप्रदास ने हँसकर कहा—तो यह कहो कि इतने दिनों के बाद तू माँ को पहचान पाया है?'

द्विजदास ने कहा—'यदि पहचान पाया भी हूँ तो केवल आपही जानें

मैं माँ का पुत्र हूँ, कुलांगार हूँ, उनके निकट मेरा यही परिचय रहने दें। इसे हिलाने-डुलाने की आवश्यकता नहीं।'

'आखिर क्यों ? माँ तुम पर विश्वास कर सकती हैं, तुझे अच्छा समझ सकती हैं, यह क्या तू सचमुच ही नहीं जानता ? इस अप्रसन्नता से लाभ क्या है, बता तो ?'

'यह नहीं जानता लाभ क्या है, लेकिन लोभ विशेष नहीं है। मुझे मिला है आपका स्नेह, भाभी का प्यार, यही मेरे लिए सात राजाओं की धनराशि के बराबर है, सात जन्म में भी दोनों हाथों से लुटाकर समाप्त नहीं कर पाऊँगा।' यह कहकर उसके नेत्र और मुख लज्जा से लाल हो गये। इन हृदय के भावों को प्रकट करने में वह विमुख रहा है, सदा मौन में घूमना ही उसका स्वभाव है पल भर में अपने को सँभालकर बोला—'किन्तु उन बातों पर तर्क करना व्यर्थ है। जिसकी आवश्यकता है वह यह है कि मेरी निगाह में वन्दना के चले जाने का हाव-भाव मुझे क्रोध से भरा लगा, इसका क्या कारण है ?'

'शायद कारण यह है कि जब तू आ गया है तो उसकी आवश्यकता नहीं। अब से सेवा-शुश्रूषा का भार तेरे ऊपर रहा।' इतना कहकर विप्रदास हँसने लगा।

द्विजदास बोला—'आप हँसी कर रहे हैं, लेकिन मैं कहता हूं कि ये अंग्रेजीदाँ ड़कियाँ एक दिन इसी गर्व में मरेंगी। बीमारी में आपकी सेवा करने का दिन न आवे, पर आने पर प्रमाणित होने में विलम्ब न लगेगा कि भैया की सेवा में हराना दस वन्दनाओं के लिए भी सम्भव नहीं होगा। यह बात उससे कह दें।'

स्नेह-हास्य से विप्रदास का मुँह चमक उठा। बोला—'अच्छा, कह दूँगा, किन्तु विश्वास करेगी या नहीं, बता नहीं सकता। पर भैया के सामने इस परीक्षा की आवश्यकता नहीं है, केवल एक आदमी के सामने है, वह है माँ। तुम लोगों का समझौता होना आवश्यक है, समझा न द्विजू ?'

द्विजदास बोला—'नहीं भैया, नहीं समझा, लेकिन जब माँ हैं, तब जीवित रहने पर समझौता एक दिन होगा ही, पर अभी आवश्यकता क्यों पड़ गई, यही समझ में नहीं आ रहा है।' यह कह क्षण-भर चुप रहकर बोला—'मेरे

भाग्य में सब-कुछ उल्टा लिखा है। पिता ने जन्म दिया, किन्तु फूटी कौड़ी भी नहीं दे गये—वह दिया आपने। माँ ने गर्भ में धारण किया, किन्तु पालन किया अन्नदा बहिन ने और सारे बोझों को ढोकर आदमी बनाया भाभी ने—दोनों ने दूसरे के घर से आकर 'पिता धर्मः माता स्वर्गादपिगरीयसी'—इस श्लोक को याद कर मन को कितना ताजा रखूँ भैया, आप ही बतायें ?'

विप्रदास बोला—'माँ के मामले की पैरवी अब नहीं करूंगा, यह तू स्वयं ही किसी दिन समझ जायगा, किन्तु पिता के बारे में तेरा जो विचार है वह सही नहीं है। आधी सम्पदा का सचमुच तू ही अधिकारी है।'

द्विजदास बोला—'हो सकता है सच, लेकिन पिता की मृत्यु के बाद क्या घर-द्वार बन्द करके आपने उनका वसीअतनामा जला दिया है ?'

'तुझसे किसने कहा ?'

'इतने दिनों तक जो मेरी सभी ओर से रक्षा करती आई हैं, यह उन्हीं से सुना है।'

'यह हो सकता है, किन्तु तेरी भाभी ने तो वह वसीअतनामा पढ़ा नहीं था। ऐसा भी तो हो सकता है कि पिताजी तुझे ही सब-कुछ दे गये हों, मैंने क्रोध में आकर उसे जला दिया। अनुचित तो है नहीं।'

खूब हँस लेने के बाद द्विजदास ने कहा—'भैया, आप तो कभी असत्य नहीं बोलते ? द्वापर में युधिष्ठिर की झूठ को नोट कर गये थे वेदव्यास, और कलियुग में आपके झूठ को नोट कर रखेगा द्विजदास। दोनों ही बराबर होंगे। जो कुछ भी हो यह समझ में आ गया कि विपत्ति में पड़ने पर सभी कुछ संभव होता है। अब मेरा पाप न बढ़ाइए, बतलाइए अब से मुझे क्या करना पड़ेगा ?'

'अपना व्यवसाय, सम्पदा सभी तो देखना होगा।'

'आखिर क्यों ? बतलाइए न, किसलिए इतना बोझ ढोने जाऊँ। क्या अकेले आप से नहीं हो रहा है ? असम्भव है। मैं निकम्मा अपदार्थ होता जा रहा हूँ। नहीं-नहीं, हो रहा हूँ। फिर भी माँ पूछे तो बता दें कि पदार्थ की मुझे आवश्यकता नहीं, अपदार्थ रहकर ही मैं अपने दिन बिता दूँगा, उन्हें चिन्ता न करनी होगी। रुपये-पैसे, जमीन-जायदाद का बोझ आपके रहते मैं न ढोऊँगा। आखिर में क्या आपकी भाँति सांसारिक बन जाऊँगा ? लोग कहेंगे

उसकी नसों में खून नहीं बहता, केवल रुपये की धारा बहती है।' किन्तु बोलते-बोलते उसने देखा कि विप्रदास उदास होकर न जाने क्या सोच रहा है, उसकी बातों पर ध्यान नहीं है। अक्सर ऐसा होता नहीं है—यह विप्रदास का स्वभाव नहीं है। कुछ आश्चर्य करके बोला—'भैया क्या सचमुच चाहते हैं कि मैं जमीन-जायदाद देखूँ, अपने चिरदिन के स्वप्न, देश-सेवा को तिलाञ्जलि दे दूँ ?'

विप्रदास ने कहा—'तिलाञ्जलि दे दें, ऐसी बात तो कभी भी तुझे नहीं कही है द्विजू। जो तेरा स्वप्न है तेरा ही रहे, चिरदिन रहे—फिर भी कहता हूँ गृहस्थी का बोझ तू सँभाल ले।'

'आखिर क्यों, बतलाइए न ? बिना कारण जाने मैं किसी भी दशा में इस बात को मानूँगा नहीं।'

क्षण-भर मौन रहकर विप्रदास बोला—'इसका कारण तो बहुत साफ है द्विजू। आज मैं हूँ लेकिन ऐसा भी तो हो सकता है कि मैं न रहूँ।'

जोर देकर द्विजदास ने कहा—'न, यह कभी नहीं हो सकता।'

उसके विश्वास की प्रबलता ने विप्रदास पर प्रभाव किया, किन्तु हँसकर बोला—'संसार में सब-कुछ ही होता है, यहाँ तक कि असंभव भी। इस बात को सोचने में जो डरते हैं वे स्वयं अपने को ही ठगते हैं और ऐसा भी होता है कि मैं थका हूँ, मुझे अवकाश की आवश्यकता है—फिर भी तू देगा नहीं ?'

'नहीं, दे नहीं सकूँगा भैया। उससे सरल है आपकी आज्ञा का पालन करना। बतलाइये, कब से मुझे क्या करना पड़ेगा !'

'आज ही से।'

'इतना शीघ्र ? अच्छा, ऐसा ही सही। आपकी बात टाल नहीं सकता।' कहकर वह चल दिया।

विप्रदास बोला—'लेकिन भैया की बात सुनी—तुझे कहना नहीं पड़ेगा रे, मैं जानता हूँ कि तू मेरी बात टाल न सकेगा।'

द्विजदास ने काम शुरू कर दिया। वह आलसी है, अकर्मण्य, उदासीन, यही सदा से सभी को शिकायत थी, किन्तु भैया के आदेश से माँ की व्रत-प्रतिष्ठा के विशाल अनुष्ठान को सम्पूर्ण करने का सभी प्रकार का दायित्व जब अकेले उसी पर आ पड़ा तो इस बदनामी को दूर करने में उसे अधिक समय

न लगा। इस अभ्यस्त भारी बोझ को वह इतनी आसानी से ढोवेगा, इतनी आशा विप्रदास ने नहीं की थी। किन्तु उसके निरालस, कार्य-पटुता से वह बिल्कुल विस्मित हो गया। जो कुछ मोल लेकर भेजना था उसे द्विजदास ने गाड़ी में भरकर भिजवा दिया, जो साथ ले जाना था उसे साथ रखा, आत्मीय स्वजनों को इकट्ठा कर यथायोग्य आदर के साथ रवाना कर दिया। यहाँ के सारे कामों को समाप्त करके आज घर लौटने के दिन उसने भैया का अन्तिम उपदेश लेने के लिए उनके कमरे में प्रवेश करके देखा कि वहाँ बैठी हुई है वन्दना! उसके जाने के दिन से वह आई नहीं, कामों की झन्झट में द्विजदास उसकी बात भूल गया था। आज अचानक उसे देखकर मन-ही-मन उसे अचरज हुआ, किन्तु उस मनोभाव को प्रकट न करके केवल एक मामूली नमस्कार कर शिष्टाचार समाप्त कर बोला—'भैया, आज रात्रि की ट्रेन से मैं घर जा रहा हूँ, साथ जा रहे हैं अक्षय बाबू, उनकी स्त्री और बेटी मैत्रेयी। आपके कॉलेज के विद्यार्थी शायद कल-परसों जायेंगे, उन्हें क़िराया दिये जा रहा हूँ। क्या अनु बहिन को आप ही साथ लेते आयेंगे? किन्तु तीन-चार दिन से अधिक देर न कीजिएगा।'

'क्या मुझे भी जाना ही होगा?'

'हाँ। न जायें तो एक जोड़ा खड़ाऊँ खरीद दें, ले जाकर भरत के समान सिंहासन पर धर दूँगा।'

हँसकर विप्रदास बोला—'बड़ा शरारती हो गया है तू! किन्तु चुप कर दिया अक्षय बाबू की बात ने। वह जायेंगे कैसे? उनकी छुट्टी तो नहीं है—काम पर नागा जो हो जायगी?'

द्विजदास ने कहा—'हाँ, होगी, लेकिन हानि नहीं है—उधर उससे भी बड़ा लाभ है, बड़े घर में लड़की देने का। धनवान दामाद भविष्य का बहुत बड़ा भरोसा है—कॉलेज के वेतन से बहुत बड़ा।'

विप्रदास अप्रसन्न होकर बोला—'तेरी बातें जैसी रूखी हैं, वैसी ही कड़वी। आदमी के सम्मान का विचार करके बातें नहीं करना जानता?'

द्विजदास ने कहा—'जानता हूँ या नहीं भाभी से पूछ लो। सौजन्य का व्यर्थ अपव्यय नहीं किया है, यही मेरा दोष है।'

विप्रदास सुनकर बिना हँसे न रह सका, बोला—'तेरा एक गवाह है केवल भाभी? जैसे मतवाले का गवाह कलवार!'

द्विजदास ने कहा—'होने दीजिए। किन्तु आपकी बातें भी मधुमय नहीं हो रही हैं भैया। क्योंकि न तो मैं मतवाला हूँ, वह भी शराब नहीं देती हैं। देती हैं अमृत, छिपाकर देती हैं बहुतेरे लोगों को अन्न, जो अनेकों बड़े आदमियों का किया नहीं होता है।'

विप्रदास ने कहा—'उन्हें करने की आवश्यकता भी नहीं है। प्रेम से देवर को जानवर बना डालने के सिवा बड़े आदमियों को और भी दूसरे काम हैं।'

सिर नीचा करके वन्दना हँसने लगी। यह देखकर द्विजदास बोला—'इसे लेकर अब तर्क नहीं करूँगा भैया। आपकी भाभी नहीं हैं—बङ्गालियों के घराने में उनका स्नेह कौन-सी वस्तु है, इसे आप एकदम ही नहीं जानते हैं। अन्धे को रोशनी दिखाने से कोई लाभ नहीं।' तनिक हँसकर बोला—'वन्दना आड़ में हँस रही है, किन्तु मौसी के घर के बजाय यदि कुछ दिन हमारे घर में बिता आतीं तो शायद मेरी बातें समझतीं। लेकिन रहने दीजिए यह तर्क भी। बतलाइये आप कब घर जा रहे हैं?'

'मैं बहुत थका हूँ द्विजू, माँ को समझाकर बता नहीं सकेगा?' विप्रदास का ऐसा निर्जीव निस्पृह कण्ठ-स्वर उसने कभी नहीं सुना था, विस्मित होकर देखा, धीमी हँसी की रेखाएँ अब भी ओठों पर हैं—किन्तु मानो यह उसके भैया नहीं और कोई हैं। आश्चर्य और दुख से व्याकुल होकर पूछा—'क्या अभी बीमारी अच्छी नहीं हुई भैया!'

'नहीं, अच्छी तो हो गई है।'

'तब भी माँ के अनुष्ठान में घर नहीं जा सकते, यह बात माँ को किस प्रकार समझाऊँगा? डरकर वह चली आयँगी, उनका सारा आयोजन नष्ट हो जायगा।'

पल भर सोचकर विप्रदास बोला—'मुझे जाने के लिए तू कब कहता है?'

द्विजदास ने कहा—'आज, कल, परसों—जब भी ठीक हो सके। मुझे आज्ञा दीजिए मैं स्वयं आकर आपको ले जाऊँगा।'

विप्रदास हँसकर बोला—'अच्छा, ऐसा ही होगा। मैं स्वयं ही जा सकूंगा, तुझे आना न होगा।'

वन्दना ने द्विजदास के चले जाने पर पूछा—'यह क्या हुआ मुखोपाध्याय जी, घर जाने में उज्र किसलिए किया ?'

विप्रदास ने कहा—'कारण तो अपने ही कानों से सुन लिया।'

'सुना, किन्तु यह उत्तर दूसरों के लिए है, मेरे लिए नहीं ! बतलाइएगा किसलिए घर जाना नहीं चाहते हैं ? आपको बतलाना ही होगा ?'

'मैं थका हूँ।'

'नहीं कैसे ? थकावट पर सभी का दावा है, केवल मेरा ही नहीं, आपका भी है, लेकिन वह दावा सच होता तो सबसे पहले मैं समझ जाती। और सभी की आँखों को धोखा दे सकते हैं, केवल मेरी आँखों को न दे सकेंगे। जाते समय मझली बहिन को पत्र लिख जाऊँगी कि यदि आप कभी भविष्य में बीमार पड़ें तो मुझे बुला लें।'

'मझली बहिन स्वयं बीमारी पकड़ नहीं सकेंगी, तुम्हें पकड़ा देना होगा। यह बात सुनकर वह प्रसन्न न होंगी।'

वन्दना ने कहा—'प्रसन्न नहीं होंगी सच है, लेकिन कृतज्ञ होंगी। मेरी मझली बहिन हैं उस युग की महिला, उन्हें स्वामी खोजना-ढूंढ़ना नहीं पड़ा, भगवान् ने आशीवाद की तरह अञ्जलि भर कर दिया था। तब से स्वस्थ शक्तिशाली पुरुष को लेकर वह चली रही हैं। किन्तु उस पुरुष का भी अचानक एक दिन मन टूट सकता है, इसका पता उन्हें लगेगा ?

विप्रदास चुप रहा, केवल थोड़ा-सा हँस दिया।

वन्दना ने पूछा—'आप हँसे क्यों ?

विप्रदास ने कहा—'हँसी खुद आती है वन्दना। स्वामी ढूढ़ने पसन्द करने के अभियान में आज तक जिन्हें तुमने देखा है, उनके अतिरिक्त भी कोई और है यह तुम लोग नहीं सोच सकतीं। संसार में सामान्य नियम को ही मानती हो, उसके अपवाद को मानना नहीं चाहती हो। पर इसी अपवाद के बल पर ही टिका हुआ है धर्म और पुण्य, काव्य-साहित्य और अटल श्रद्धा विश्वास। यह नहीं होता तो पृथ्वी बिल्कुल रेगिस्तान हो जाती। आज भी इस सत्य को

नहीं जानती।'

वन्दना विद्रूप के स्वर में बोली—'यह अपवाद शायद स्वयं आप ही हैं मुखोपाध्याय जी। किन्तु उस दिन तो कहा था कि मुझे भी आप प्रेम करते हैं ?'

'आज भी वही कहता हूँ किन्तु प्रेम एक मात्र ही मार्ग तुम्हें दिखाई पड़ता है और सब वन्द रहते हैं, इसीलिए मेरी उस दिन की बातों को तुम न समझ सकीं। तनिक देख आओ द्विजू और उसकी भाभी को। यदि अन्धी नहीं हुई तो देखोगी किस प्रकार श्रद्धा जाकर प्रेम में मिल गई है। हँसी-दिल्लगी, लाड़-प्यार, घनिष्टता से वह केवल उसकी भाभी ही नहीं है, वह उसकी वान्धवी है, वह उसकी माँ है। वह सम्वन्ध तो हमारा तुम्हारा भी है, ठीक उसी प्रकार तुम मुझे क्यों न देख सकीं वन्दना।' उसकी बोली में था गम्भीर स्नेह के साथ मिला हुआ अपमान का स्वर, वन्दना पर उसने गहरी चोट की। थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद आँखें ऊपर करके बोली—'आपको मैंने गलत समझा था मुखोपाध्याय जी, मेरी मझली बहन से यदि आप सचमुच ही प्रेम करते तो मुझे दुःख न होता, लेकिन आप प्रेम तो नहीं करते हैं। आप केवल धर्म का पालन करते हैं, केवल कर्त्तव्य को मान कर चलते हैं। अपका स्वभाव कठोर है, किसी को प्रेम करना जानते नहीं। कितना भी गुप्त रखें, यह सचाई किसी दिन जाहिर ही होगी।'

थोड़ी देर चुप रहकर बोली—'आज मेरी शंका भी दूर हुई। अब शून्य में हाथ बढ़ाकर पुरुष खोजने न जाऊँगी, यही आशीर्वाद मुझे दें।'

विप्रदास ने हँसी में हाथ बढ़ाकर कहा—'तुम्हें यही आशीर्वाद दिया। आज से तुम्हारा पुरुष खोजना समाप्त हो, जो तुम्हारा चिर दिन का है, उसे वह तुम्हें प्रदान करें।'

बात को अपमानजनक हँसी समझकर वन्दना अप्रसन्न होकर बोली—'आप भूल कर रहे हैं मुखोपाध्याय जी, पुरुष खोजना ही मेरा पेशा नहीं है, वे और हैं। किन्तु अचानक आज क्यों आई हूँ अभी तक तो यह आपको बतलाया भी नहीं। एक प्रकार सचमुच ही मेरी एक बहुत बड़ी शंका दूर हो गई। यहाँ आप लोगों के संसर्ग में आकर सोचा था ये आचार-विचार मानों

सचमुच ही अच्छे हैं, खाने-पीने, छूने-छाने का नियम मानकर चलना, फूल-तोड़ना, चन्दन-घिसना, पूजा की सामग्री तैयार करना—और भी कितनी ही बातें—सोचती थी यह सब सचमुच ही मनुष्य को पवित्र कर देती हैं, किन्तु इस बार मौसी जी के घर जाकर मूर्खता दूर हो गई। एक दिन कैसा पागल-पन मुझ पर सवार था मुखोपाध्याय जी ! मानो सचमुच ही इसमें विश्वास करती हूं, मानो हमारी शिक्षा में, संस्कार में सचमुच ही कहीं इससे अन्तर नहीं है।' यह कहकर वह कृत्रिम हँसी-हँसने लगी। सोचा कि इस बात से विप्रदास को शायद गहरी चोट पहुँचेगी लेकिन देखा एकदम कुछ भी नहीं हुआ। उसकी बनावटी हँसी में प्रसन्नता की हँसी मिलाकर बोला—'मुझे मालूम था वन्दना। तुम्हें क्या स्मरण नहीं है कि मैंने सावधान करते हुए एक दिन कहा था, यह सब तुम्हारे लिए नहीं है, इन्हें तुम करने मत जाओ। वह मूर्खता दूर हो गई, सुनकर प्रसन्नता हुई। सोचा था कि सुनकर बहुत दुख होगा, किन्तु बात वैसी नहीं है। जिसके लिए जो स्वाभाविक नहीं है, उसे वह न करे तो मुझे दुख न होता। तुम्हें तो याद है, मैं किसका ध्यान करता हूँ—जब तुमने पूछा तो मैं चुप रह गया। बोलने में कोई रुकावट थी इसलिए नहीं, बेकार है इसलिए। किन्तु ये बातें इस समय रहने दो। तुम्हारे बम्बई जाने का कोई दिन ठीक हुआ क्या ?'

गर्व से वन्दना का मुख लाल हो उठा, विप्रदास के प्रश्न के उत्तर में वह केवल बोली—'नहीं।'

'अपनी मौसी के भतीजे अशोक की बात उस दिन कही थी। कहा था कि लड़का तुम्हें अच्छा ही जँचा है। इन कई दिनों में उसके सम्बंध में और कोई बात जान सकीं ?'

'नहीं !'

'अगर तुम्हारी शादी होती ही है तो मैं आशीर्वाद दूँगा, किंतु मौसी के दबाव में कुछ मत कर बैठना। उनके जाल से थोड़ा सँभलकर रहना।'

वन्दना के नेत्रों में आँसू आ गये, पर मुँह नीचा करके सँभलकर बोली—'ठीक है।'

विप्रदास ने कहा—'परसों मैं घर जाऊँगा। दो-तीन दिन से अ[illegible]

रह पाऊँगा। वापस आने के बाद भी यदि कलकत्ते में रहो तो एक बार आ जाना।'

वन्दना का मुँह नीचे झुका था, सिर हिलाकर कुछ उत्तर दिया, पर उसका स्पष्ट अर्थ समझ में न आया।

विप्रदास बोला— सुना तो कि मेरी छुट्टी स्वीकार हो गई—अब से सब भार द्विजू पर है। गृहस्थी के कोल्हू में पिता जी ने मुझे लड़कपन में ही जोत दिया था, कभी कहीं जाने का अवसर न मिला। आज मालूम पड़ता है जैसे चैन की साँस लूंगा।'

मुँह उठाकर वन्दना ने पूछा—'क्या सचमुच ही साँस लेने की इतनी आवश्यकता पड़ गई थी मुखोपाध्याय जी, सचमुच ही आज आप इतने थके हैं ?'

विप्रदास इस प्रश्न के उत्तर से बात फेर गया। बोला—'अच्छी बात है वन्दना, अपनी बीमारी में तुम्हरी सेवाओं की चर्चा करके कहा था, उन्हें तुम्हारा कृतज्ञ रहना चाहिए। इसका आधा भी उनमें से किसी से नहीं होता। द्विजू कृतज्ञता स्वीकार करते हुए भी तुम्हें कहने के लिए कह गया है कि यदि वैसा समय कभी आया तो भैया की सेवा में उसके बराबर होना दस वन्दनाओं की शक्ति से बाहर की बात होगी।'

वन्दना बोली—'उनसे भी कह दीजिएगा कि मैंने शर्त स्वीकार कर ली है, लेकिन परीक्षा का समय कभी आया तब।

विप्रदास ने सुना तो हँसकर बोला—'दिखाई पड़ेगा वन्दना, वह पीछे पैर धरने वाला आदमी नहीं है। तुम उसे नहीं जानतीं।'

'जानती हूँ मुखोपाध्याय जी। भली प्रकार जानती हूँ, आपके काम में प्रतिद्वन्द्विता करना वास्तव में वन्दना की शक्ति की बात नहीं है।'

भाई के गर्व से विप्रदास का मुख चमक उठा—बोला—'मालूम है वन्दना, मेरा द्विजू साधु है।'

'आपसे भी क्या अधिक ?'

'हाँ, मुझसे भी।' कहकर विप्रदास क्षण भर इधर-उधर देखकर बोला—'किन्तु उसने कहा था कि तुम शायद उस पर अप्रसन्न हो गई हो। बोलीं क्यों नहीं ?

'बोलने की आवश्यकता नहीं पड़ी, मुखोपाध्याय जी।'

हँसकर विप्रदास बोला—'तब तो देखता हूँ कि तुम सचमुच ही अप्रसन्न हो। किन्तु आज तुमसे एक बात कहूँ वन्दना, द्विजू का व्यवहार रूखा है, बातें भी कोई मुलायम नहीं होती हैं, लेकिन उसके इस कड़े आवरण को पारकर यदि कभी देख सको तो, देखोगी कि ऐसा मधुर पुरुष नहीं होता है। मेरी बात पर भरोसा करो, ऐसा विश्वास करने के योग्य पुरुष भी तुम सरलता से पाओगी नहीं।'

वन्दना दूसरी ओर देखती रही, उत्तर नहीं दिया। अचानक वह खड़ी होकर बोली—'गाड़ी बहुत देर से खड़ी है मुखोपाध्याय जी, मैं जाऊँ। यदि रही तो आपके वापस आने पर भेंट करूँगी! यदि न कर सकी तो यह मेरा अन्तिम नमस्कार स्वीकार करें।' कहकर उसने पदधूलि ली और तेजी से चल दी। कुछ भी कहने का अवसर विप्रदास को नहीं दिया।

बरामदे को लाँघ करके सीढ़ी के सामने आकर अचरज से देखा कि द्विजदास हाथ जोड़े खड़ा है।

हँसकर वन्दना ने पूछा—'अब क्या?'

'एक प्रार्थना है। एक बार भैया को साथ लेकर हमारे घर पर आपको जाना होगा।'

'मुझे साथ क्यों ले जाना होगा? इसका अर्थ?

द्विजदास ने कहा—'बतलाने के लिए ही खड़ा हूँ। एक दिन बिना बुलाये ही हमारे घर में पदार्पण किया था, आज वही दया आपको करनी होगी।'

वन्दना ने क्षण-भर इधर-उधर किया, फिर बोली—किन्तु मुझे जाने का निमन्त्रण किसने दिया? माँ, भैया, या स्वयं आपने?'

'मैं स्वयं ही कह रहा हूँ?'

'किन्तु आप तो उस घर में गैर आदमी हैं, बुलाने का आपको क्या अधिकार है?'

'जीवित रहने का अधिकर तो है। उसी अधिकार के बल पर यह प्रार्थना पेश की। बोलिए, स्वीकार किया? बिना सख्त जरूरत के मैं किसी से कोई विनय नहीं करता।'

बहुत देर तक वन्दना दूसरी ओर देखती रही, फिर बोली—'अच्छा यही सही—जाऊँगी, किन्तु मान-अपमान का दायित्व आपके ऊपर रहा।'

कृतज्ञ होकर द्विजदास ने कहा—'मेरी शक्ति थाड़ी है, फिर भी वह भार लेता हूँ।'

वन्दना ने कहा—'विपता के समय यह बात न भूलना।'

कई दिन के बाद विप्रदास नीचे दफ्तर में आकर बैठा है। शरीर थका है, पर द्विजू के भरोसे तो नहीं छोड़ा जा सकता। एक मोटी बही लेकर वह वरक उलट रहा था तभी बाहर से मोटर के भोंपू की आवाज कानों में पहुँची और तुरन्त पूरब के खुले फाटक से वन्दना ने प्रवेश किया। आज अकेली नहीं है, साथ में एक अपरिचित युवक है। शरीर पर धोती-कुर्त्ता, पैरों पर चप्पल और कन्धे पर टेढ़ी लिपटी हुई मोटी सफेद चादर है। अवस्था तीस के अन्दर है, शरीर की बनावट थोड़ी और लम्बी होती तो आसानी से सुन्दर पुरुष कहा जा सकता था। विप्रदास स्वागत करने के लिए कुर्सी से उठा।

वन्दना ने कहा—'यही मिस्टर चौधरी बार-एट-ला हैं मुखोपाध्याय जी। किन्तु यहाँ अशोक बाबू कहने पर बुरा न मानेंगे। इसी शर्त पर परिचय कराने के लिए राजी होकर साथ लाई हूँ। बातें करने के पहले अपने कर्त्तव्य को तो पूरा कर लूँ।' यह कहकर वह पास आकर नमस्कार करके बोली—'लेकिन पद-धूलि इसके सामने न ले सकी, कहीं समझ न बैठें कि मैं उनके समाज की कलंक हूँ। किन्तु आप भी कहीं अप्रसन्न होकर यह न समझ बैठें कि नया नियक मैंने मौसी के यहाँ सीखा है। उन पर आपकी अप्रसन्नता की गहराई मैं जानती हूँ न।'

विप्रदास ने कहा—'क्या अपनी मौसी जी के सामने मेरा इसी प्रकार गुणगान करती हो?' नवागत युवक की तरफ देखकर बोला—'वन्दना के मुख से आपके विषय में इतनी बातें सुनी हैं कि बीमार न होता तो स्वयं मिलने जाता! देख कर ही जान पड़ा कि चेहरे को मानो कितनी ही बार देखा है। ठीक ही हुआ जो बेकार की देरी न करके स्वयं ही साथ ले आई।'

सज्जन ने प्रत्युत्तर में कुछ कहना चाहा, लेकिन इसके पहले ही वन्दना आदेश के स्वर में अँगुली उठाकर बोली—'मुखोपाध्याय जी, अतिशयोक्ति जो

पार कर अब मिथ्या की सीमा में गये, अब रुकिए, वर्ना शोर मचा दूंगी।'

'मतलब ?'

'मतलब यह कि हम बहुत साधारण लोगों के समान झूठ-सच जो मन में आया आप बकने लगे ! आप हर्गिज असाधारण आदमी नहीं हैं, हम लोगों की भाँति ही साधारण आदमी हैं।'

विप्रदास ने कहा—'नहीं। पूछ देखो तो वे एक स्वर से स्वीकार करेंगे कि तुम्हारा अनुमान ठीक नहीं है !'

वन्दना ने कहा—'अब आपको ले जाकर उन्हीं के पास बाहर की इस शेर की खाल को दोनों हाथों से नोच डालूँगी। जब वे असली चेहरा देखेंगे, तब उनका भय दूर हो जायगा। मुझे आशीर्वाद देकर कहेंगे कि तुम राजरानी बनो।

हँसकर विप्रदास ने कहा—'आशीर्वाद दें, मुझे उज्र नहीं, यहाँ तक स्वयं भी देने के लिए तैयार हूँ, किन्तु तुम लोग आशीर्वाद तो नहीं चाहती हो, कहती हो, वह बुरा संस्कार है, व्यर्थ की बात है !'

फिर वन्दना के अँगुली उठाकर कहा—'फिर छेड़ने का प्रयत्न ! कौन कहता है गुरुजनों का आशीर्वाद हम नहीं चाहते हैं—कौन बुरा संस्कार कहता है ? लेकिन अब सचमुच ही क्रोध आ रहा है मुखोपाध्याय जी।'

गम्भीर होकर विप्रदास बोला—'क्या सचमुच ही क्रोध आ रहा है ? तब रहने दो इन झमेले की बातों को। किन्तु अचानक सवेरे ही आगमन कैसा ? क्या कोई काम है ?'

वन्दना ने कहा—'बहुत से। पहला काम है आपसे यह विवरण लेना। बिना मेरी आज्ञा के नीचे आकर काम क्यों शुरू किया है ?

'शुरू नहीं किया है, करने का विचार भर किया था। यह रहा।' कहकर उस मोटी बही को विप्रदास ने दूर खिसका दिया।

प्रसन्न होकर वन्दना बोली—'विवरण संतोषजनक है, इस वार तो क्षमा किया जाता है। भविष्य में इसी प्रकार आज्ञाकारी रहे तो मेरा काम चल जायगा। अब मन लगाकर सुनिए। तब तक बैठकर इनसे बातचीत कीजिए—मुखोपाध्यायों के ऐश्वर्य का विवरण, प्रजा-शासन की अनेक रोमांचक कहा-

नियाँ—जो भी जी चाहें। अनु बहिन को साथ लेकर सब कुछ ठीक-ठाक कर लेने के लिए मैं ऊपर जाती हूं। कल प्रातः की ट्रेन से हम बलरामपुर जायेंगे, दिन ही दिन में ठण्ड लगने का भय न रहेगा। मिस्टर चौधरी के साथ जाने की इच्छा है—वड़े घर का वड़ा यज्ञ क्रिया-कलाप, घटाटोप कभी आँखों से नहीं देखा है—और देखें भी तो कैसे ?

विप्रदास ने पूछा—'अवश्य ही तुमने वहुत से देखे हैं ?

वन्दना बोली—'यह प्रश्न बिलकुल अप्रासांगिक है। उन्होंने नहीं देखा यही वात हो रही थी। तो सुनिए। उन्हें साथ चलने की अनुमति दी है इससे इतने प्रसन्न हुए हैं कि इसके वाद मुझे साथ ले जाकर वम्वई पहुँचा देने के लिए राजी हो गये हैं।'

चेहरे को वहुत गम्भीर वनाकर विप्रदास ने कहा—यह कहती क्या हो ? इतना त्याग हमारे समाज में देखने में नहीं आता है, तुम्हारे अन्दर ही दिखाई पड़ता है। सुनकर आश्चर्य हो रहा है !

वन्दना ने कहा—'आश्चर्य होने ही की तो वात है। जप तप भी है, सोलहों आने ईर्षा भी है।' यह कहकर नेत्रों की एक चितवन से विजली चमकाकर वाहर चली जा रही थी कि तभी विप्रदास ने पुकारकर कहा—'यह मानो पञ्चतन्त्र के उस सानीवाली नांद के कुत्ते की कथा है। न तो वह स्वयं खायगा न साँडों के झुण्ड को ही खाने देगा। वतलाओ तो मनुष्य कैसे जीवित रहे ?'

किवाड़ के किनारे खड़ी होकर वनावटी क्रोध से भौंहें तानकर वन्दना ने कहा—'एकदम हम लोगों के समान साधारण आदमी हैं, कुछ भी अन्तर नहीं है। व्यर्थ ही लोग भय से परेशान रहते हैं।'

'इस वार जाकर तुम उनका भय दूर कर आओ।'

'इसीलिए तो जा रही हूँ और सानी से उपमा देने की दुर्बुद्धि का प्रतिशोध भी लेती आऊँगी।' यह कहकर वन्दना तीव्र कटाक्ष से फिर विजली चमकाकर ओझल हो गई।

विप्रदास ने कहा—'मिस्टर···!'

अशोक ने सविनय बाधा दी—'नहीं-नहीं, यह नहीं होगा। उसे छोड़ देने में हिचकिचाहट नहीं होगी। इसीलिए धोती-कुर्त्ता और चप्पल पहनकर आया हूं विप्रदास बाबू। उन्होंने भी विश्वास दिलाया था···।'

मन-ही मन प्रसन्न होकर विप्रदास ने कहा—'अच्छा ही हुआ अशोक बाबू, सम्बोधन सहज हो गया। देहात का आदमी हूँ, याद भी नहीं रहता और आदत भी नहीं है। अब मजे में डटकर बातें होंगी। सुना है आप हमारे देहात चलना चाहते हैं, सचमुच ही यदि चलें तो कृतार्थ होऊँगा। हमारे कुटुम्ब की मालकिन मेरी माँ हैं, उनकी ओर से मैं सादर निमंत्रण दे रहा हूँ।'

विप्रदास की विनीत बातें सुनकर अशोक बोला—'अवश्य जाऊँगा, कितने गरीब, अनाथ-दुःखी न्यौते में आयेंगे, कितने ही अध्यापक पण्डित उपस्थित होंगे विदाई लेने के लिए, आनन्दोत्सव में कितनी ही प्रकार का खान-पान होगा, कितने ही विचित्र प्रबन्ध होंगे···।'

हँसकर विप्रदास बोला—सब बातें बढ़ा-चढ़ाकर कही गई हैं अशोक बाबू, वन्दना ने केवल व्यंग किया है!'

'व्यंग करने से उसे लाभ क्या विप्रदास बाबू?'

'हमें असमंजस में डालना एक यही लाभ है। बलरामपुर के मुखोपाध्यायों पर मन-ही-मन वह अप्रसन्न है। दूसरा लाभ किसी भी बहाने बम्बई घसीट ले जाना।'

अशोक ने कहा—आवश्यकता पड़ी तो बम्बई तक मुझे साथ जाना पड़ेगा, इसका वादा है, किन्तु मुखोपाध्यायों पर वह अप्रसन्न हैं, आप लोगों को वह लज्जित करना चाहती हैं, यह नहीं हो सकता। कल भी बलरामपुर जाना निश्चय नहीं था। लेकिन आप लोगों की बात को लेकर मौसी से उसका तर्क हो गया था। मौसी बोलीं—विप्रदास की माँ ने यदि सर्वसाधारण के हितार्थ पोखरा खुदवाया है, तो इसकी प्रशंसा करती हूँ, पर घटाटोप के साथ प्रतिष्ठा करना बेईमानी है—वह कुसंस्कार है। कुसंस्कार में सम्मिलित होना मैं अन्याय समझती हूँ। वन्दना बोली—'वे बड़े आदमी हैं, बड़े आदमियों के काज-प्रयोजन में घटाटोप तो हुआ ही करता है मौसी जी, इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है? मेरी बुआ बोलीं, बड़े आदमियों का अपव्यय मैं मानती हूँ कोई आश्चर्य

की बात नहीं है, किन्तु बात तो केवल यही नहीं है, यह एक कुसंस्कार भी तो है। तुम्हारे जाने में ही मुझे उज्र है।

वन्दना बोली—'जो नहीं जानती, जानने की कभी इच्छा भी नहीं की है, उसका वैसे ही न्याय करना भी कुसंस्कार है।' उसका उत्तर सुनकर बुआ जी क्रोध से आगबबूला हो गईं, पूछा—'अपने पिताजी की राय ली है?'

वन्दना ने उत्तर दिया—'मैं जानती हूँ, पिता जी मना नहीं करेंगे। मझली बहिन के पति बीमार हैं, उन्हें साथ ले जाने का भार मुझ पर आया है।'

'सुनूं तो किसने भार दिया? शायद उन्होंने स्वयं ही?' प्रश्न सुनकर वन्दना मानो चुप होकर देखती रह गई, मुझे ऐसा मालूम हुआ, उसका रक्त खौल रहा है, अब न जाने क्या बोल बैठें। किन्तु यह सब कुछ भी नहीं किया, धीरे-धीरे केवल बोलीं—'जिसका जो जो चाहे पूछे, उसी का उत्तर देना होगा। बचपन से ही मुझे यह शिक्षा नहीं मिली है मौसी जी। परसों सवेरे मुखोपाध्याय जी को साथ लेकर मैं बलरामपुर जाऊंगी, अधिक कुछ भी नहीं कह सकती।'

बुआ जी क्रोध से उठकर चली गईं। मैं बोला—'मुझे साथ ले चलेंगी? अपनी आँखों से इन भद्दे अनुष्ठानों के देखने की मुझे बड़ी इच्छा होती है।' वन्दना बोली—'लेकिन ये तो कुसंस्कार हैं अशोक बाबू! नेत्रों से देखने से भी आपकी जात चली जायगी। बोला—यदि आपकी जात नहीं जाती तो मेरी भी नहीं जायगी। और यदि जाती है तो दोनों की एक साथ ही जात जाय, मेरी कोई हानि नहीं है।'

वन्दना ने कहा—'आप तो विश्वास नहीं करते, उन्हें नेत्रों से देखकर मन-मन हँसेंगे।'

बोला—'आप ही क्या विश्वास करती हैं?'

वह बोली—'नहीं करती, लेकिन मुखोपाध्याय जी करते हैं। मैं केवल आशा करती हूँ कि उन्हीं का विश्वास एक दिन सचमुच ही मेरा भी विश्वास बन जाय। वन्दना आपकी मन-ही-मन पूजा करती है विप्रदास बाबू। इतना विश्वास दुनिया में वह किसी पर नहीं रखती।'

बात अनजानी नहीं है, नई भी नहीं है, तथापि दूसरे के मुख से सुनकर

विप्रदास का चेहरा एकदम सफेद हो गया।

पल भर के बाद पूछा—'आप लोगों की जो शादी की बात हुई थी, क्या वह तय हो गई ? वन्दना ने क्या सम्मति दे दी है ?'

'नहीं, किन्तु असम्मति भी प्रकट नहीं की है।'

'आशा की बात यही है अशोक बाबू ! चुप रहना अधिकांश में सम्मति का द्योतक है।

अशोक सकृतज्ञ नेत्रों से पल भर मौन रहकर बोला—'नहीं, यह नहीं हो सकता।' फिर जरा रुककर बोला—कठिनाई यह है कि मैं गरीब हूँ और वन्दना धनवती है। ऐसा नहीं कि धन का लोभ मुझे नहीं है, लेकिन बुआ जी के समान वही मेरा एक मात्र लक्ष्य नहीं है। यह कैसे समझाऊँ कि बुआ जी के साथ मिलकर मैंने षडयन्त्र नहीं किया है।'

इस मनुष्य के प्रति विप्रदास के मन में अपमान का भाव था, उसकी बात की सरलता से वह कुछ कम हो गया। सरल कण्ठ-स्वर में बोला—बुआ के षड्यन्त्र में आप सम्मिलित नहीं हुए हैं, यदि बात सत्य हुई तो वन्दना किसी दिन समझेगी ही, तब प्रसन्न होने में भी उसे देर न लगेगी, धन के लिए भी तब बाधा न पड़ेगी।'

उत्सुक स्वर में अशोक ने प्रश्न किया—आपको वह निश्चित रूप से मालूम है विप्रदास बाबू ?

इसका उत्तर देने में विप्रदास चक्कर में पड़ गया, कुछ सोचकर बोला—'उसे जितना जानता हूँ उतना ही मालूम होता है।'

अशोक ने कहा—'मुझे क्या लगता है जानते हैं ? लगता है, उनकी निजी खुशी से भी मुझे आवश्यकता है आपकी खुशी की। उसे जब पाऊँगा, तो मुझे न मिलने योग्य कोई चीज न रह जायगी।'

विप्रदास सहास्य बोला—'मेरे प्रसन्न नेत्रों से यह स्वामी चुनेगी ऐसा विचित्र संकेत किसने दिया—स्वयं वन्दना ने ? यदि दिया है तो कहूँगा कि एकदम मजाक किया है अशोक बाबू।'

'नहीं, मजाक नहीं है, सही है।'

'किसने बताया ?'

पल भर मौन रहकर अशोक बोला—'ये बातें मुँह से कहने की नहीं है विप्रदास बाबू ! उस दिन मौसी से झगड़ा करके वन्दना मेरे कमरे में आई—ऐसा कभी नहीं करती—एक कुर्सी खींचकर बैठकर बोलीं—मुझे बम्बई पहुँचा आना होगा।' बोला जब भी आज्ञा दें तैयार हूँ। बोली—बलरामपुर जा रही हूँ, समय आने पर उसके बाद कहूँगी।' बोला—'अच्छी बात है, लेकिन मौसी को इस प्रकार अप्रसन्न क्यों कर दिया ? उनके पूजा-पाठ, होम-जप, देव-देवता में वे सचमुच ही विश्वास तो नहीं करती हैं, फिर बोलीं—असत्य नहीं कहा है अशोक बाबू। उन लोगों के समान सचमुच ही यदि कभी विश्वास कर सकी तो कृतज्ञ हो जऊँगी। मुखोपाध्याय जी की बीमारी में सेवा की थी, उनसे एक दिन विश्वास कर वरदान माँग लूँगी। इसके पश्चात् आपकी बात आरम्भ हुई। इतना विश्वास भी कोई किसी पर करता है, इसके पहले कभी कल्पना भी न की थी। बात-ही-बात में में उन्होंने एक दिन की घटना के विषय में बताया। तब आप बीमार थे, आपकी सन्ध्या-पूजा का प्रबन्ध वही करती थीं, अधिक समय हो गया था, जल्दी आने में पैरों में कुछ लगा, जितना ही अपने को समझाती कि वह कुछ नहीं है उतना ही समझ में नहीं आता। कहीं आपके काम में कोई भूल न हो जाय, इसीलिए स्नान करके सारा प्रबन्ध फिर शुरू से करना पड़ा। किन्तु आप उस दिन अप्रसन्न होकर बोले थे—वन्दना, यदि सवेरे तुम्हारी नींद नींद खुलती है, तो अन्नदा बहिन को पूजा का प्रबन्ध करने देना। स्मरण है न विप्रदास बाबू ?

विप्रदास ने सिर हिलाकर कहा—'हाँ, स्मरण है।'

अशोक कहने लगा—'इस प्रकार कितने दिन की छोटी-मोटी घटनाओं की चर्चा करते-करते उस दिन बहुत रात हो गई, अन्त में बोलीं—मौसी ने उन लोगों के कुसंस्कार का ताना दिया, मैंने स्वयं भी एक दिन दिया था अशोक बाबू, किन्तु आज और बुरा, समझने में चकरा जाती हूँ। खाने-पीने का विचार तो कभी किया नहीं है, जन्म भर का विश्वास है इसका दोष नहीं, किन्तु मानो अब संकोच होता है। बुद्धि के कारण शर्म लगती है, लोगों से गुप्त रखना चाहती हूँ, किन्तु जिस क्षण याद आती है कि इन्हें वे नहीं चाहते हैं, उसी क्षण मन जैसे उससे मुँह मोड़ लेता है !

विप्रदास का चेहरा सुनने-सुनते पीला पड़ गया, बरबस हँसने का प्रयत्न करके बोला—'तो वन्दना अब खाने-छूने का विचार करने लगी है! किन्तु उस दिन तो आकर गर्व के साथ कह गई कि मौसी के घर जाकर उसमें अपना समाज अपनी सहज बुद्धि वापस आ गई है, मुखोपाध्याय वंश की हजारों प्रकार की कृत्रिमता से छुटकारा पा गई है।' अशोक आश्चर्य से कुछ कहना चाहता था, लेकिन विघ्न हुआ। अन्दर घुस कर वन्दना बोली—मुखोपाध्याय जी, सब कुछ संभाल कर रख आई। कल प्रातः साढ़े नौ बजे ट्रेन है। पूजा-पाठ व्यर्थ के कामों को इसी के अन्दर समाप्त कर लें। इतनी विडम्बना भगवान् ने आपके भाग्य में लिखी थी।'

हँसकर विप्रदास ने कहा—'सम्भव है लिखी हो।'

'सम्भव नहीं, निश्चय ही। सोचती हूँ यदि कोई इन्हें आपके अन्दर से दूर कर देता? कल सुबह के भोजन का प्रबन्ध भी कर आई—मैं स्वयं आकर खिलाऊँगी, फिर कपड़े पहनाऊँगी, इसके बाद साथ लेकर घर जाऊँगी। कमजोर आदमी हैं इसीलिए। चलिए अशोक बाबू, हम लोग चलें। पद-धूलि अब नहीं लूँगी मुखोपाध्याय जी, यह कुसंस्कार है। सभ्य समाज में नहीं चलता।' हँसकर दोनों हाथों को माथे में लगाकर बाहर चल दी।

: २२ :

दूसरे दिन सवेरे ही सब लोग बलरामपुर के लिए रवाना हो गये। घर के पास आते ही दिखाई पड़ा कि द्विजदास ने राजसूय यज्ञ जैसा आयोजन किया है। सामने वाले मैदान में कुटियों की कतार खड़ी हैं, कुछ तैयार हो गई हैं और कुछ हो रही हैं। अभी से ही निमन्त्रित तथा आमन्त्रित लोगों से बहुत-सी भर गई हैं। अभी कितने लोग आयेंगे यह बताना कठिन है।

विप्रदास को देखकर माँ विस्मित हो गईं—'शरीर की यह क्या दशा भैया, बिलकुल आधा रह गया है!'

पद-धूलि लेकर विप्रदास बोला—'अब भय की बात नहीं माँ, अच्छा होने में अब देर न होगी।'

'किन्तु कलकत्ता वापस जाने न दूंगी, तेरा कितना भी आवश्यक काम क्यों

न हो। अब से अपने नेत्रों के सामने रखूंगी।'

विप्रपास हँसते हुए चुप रह गया।

वन्दना के उन्हें प्रणाम करने पर दयामयी आशीर्वाद देकर बोलीं—'आओ बेटी, आओ, चिरंजीवी हो!'

'किन्तु उनके कण्ठ स्वर में उत्साह नहीं था, मालूम पड़ा कि यह साधारण शिष्टाचार से अधिक कुछ है नहीं। उसे आने का निमन्त्रण नहीं दिया गया है; वह स्वयं आई है, माँ को इतना ही मालूम था। इसके बाद उन्होंने मैत्रेयी की चर्चा छेड़ी। लड़की के गुणों की सीमा नहीं। दयामयी को इस बात का दुःख है कि एक ही मुंह से उसकी सूची तैयार करना सम्भव नहीं है। बोलीं—'कोई काम ऐसा नहीं है जो पिता ने न सिखाया हो, कोई काम ऐसा नहीं जो वह न जानती हो। बहू की तबीयत कुछ ठीक नहीं है, इसीलिए मानो उसने अकेले ही सारा भार अपने कन्धों पर ले लिया है। भाग्य की बात है कि उसे लाया था विपिन, वर्ना क्या होता, इसे सोचने पर भी मुझे भय लगता है।'

आश्चर्य करके विप्रदास बोला—'ऐसी बात है!'

दयामयी ने कहा—'सत्य कहती हूं भैया। लड़की का काम-धाम देखकर जान पड़ता है कि मालिक जो भार मेरे कन्धों पर डाल गये हैं, उसके लिए अब चिन्ता नहीं। बहू को वह साथी मिल जाने पर सारा भार वह सरलता से सँभाल लेगी। कहीं कोई भूल न होगी। इस वर्ष तो अब हुआ नहीं किन्तु जीवित रही तो अगली बार निश्चित होकर कैलाशपति का दर्शन करने मैं अवश्य जाऊँगी।'

विप्रदास चुप रहा, दयामयी की बातें शायद असत्य नहीं हैं, हो सकता है मैत्रेयी इसी प्रकार की प्रशंसा के योग्य हो, किन्तु यशोगान की भी तो सीमा है। उनका लक्ष्य कुछ भी हो, उपलक्ष्य भी गुप्त नहीं रहा। एक क्षुद्रता ने उसकी सुपरिचित मर्यादा पर मानो कड़ी चोट की। अचानक बेटे के मुँह की ओर देखकर दयामयी ने अपनी इस भूल को जान लिया, किन्तु उसी दम प्रतिकार कैसे करें यह भी उनकी समझ में न आया। द्विजदास दूसरे स्थान पर काम में फँसा हुआ था, सूचना पाकर आ गया।

विप्रदास ने कहा—कैसी भयानक घटना की है द्विजू, कैसे सँभालेगा?

द्विजदास ने कहा—'बोझ तो आपने स्वयं नहीं लिया है भैया, मुझ पर दिया है। किस बात का भय है आपको ?

वन्दना ने उत्तर दिया—'उन्हें चिन्ता हो रही है कि खर्च के सारे रुपये यदि प्रजा की जेब से वसूल न किये गये तो खजाने में हाथ डालना पड़ेगा। इससे भय न होगा द्विजू बाबू ?'

सभी हँस पड़े और इस हास्य के अन्दर से माँ के मन का भार मानो कम हो गया, हँसकर बनावटी क्रोध से बोली—'उसे तंग करने के लिए तुम भी क्या अपनी बहिन के समान हुई वन्दना। वह मेरा बड़ा धार्मिक बेटा है। सभी मिलकर उसे झूठा ताना दें, यह मुझे सहन न होगा।'

वन्दना ने कहा—'ताना झूठ होने पर नहीं लगता है माँ, इससे अप्रसन्न भी न होना चाहिए।'

माँ ने कहा—'अप्रसन्न तो वह नहीं होता, बल्कि वह सुनकर हँसता है।

वन्दना ने कहा—'इसका भी कारण है माँ। मुखोपाध्याय जी को मालूम है कि अप्रसन्न होना मूर्खता है। क्यों, ठीक कहती हूँ न मुखोपाध्याय जी ?'

हँसकर विप्रदास बोला—'ठीक नहीं तो क्या! मूर्ख की बात पर क्रोध करना मना है, शास्त्र में उसके लिए दूसरी व्यवस्था है।'

वन्दना ने कहा—'लेकिन मझली बहिन मुझसे मूर्ख हैं मुखोपाध्याय जी, शायद आपके शास्त्र की इस व्यवस्था के कारण ही सभी आपको इतनी श्रद्धा करते हैं। यह कह हँसकर उसने मुँह घुमा लिया। द्विजदास हँसी रोकने के लिए दूसरी ओर देखता रहा और दयामयी स्वयं भी हँस पड़ीं। बोलीं—'वन्दना बड़ी नटखट लड़की है, उससे कोई बातचीत में जीत नहीं पाता।'

कुछ रुककर गम्भीर होकर बोलीं—'बेटी, मालिक के समय में प्रजा पर बोझ बिलकुल न पड़ता था यह नहीं कहती, लेकिन तुम्हें तो बतलाया है कि विपिन मेरा बड़ा धार्मिक लड़का है, जो कुछ अन्याय है, जो यथार्थ में उसका प्राप्य नहीं है, उसे वह किसी भी दशा में ले नहीं सकता किन्तु मुझे द्विजू से भय है वह ऐसा कर सकता है।'

विप्रदास बोला—'लेकिन तुम्हारा यह कहना अनुचित है माँ। द्विजू प्रजा को सतायेगा! प्रजा का पक्ष लेकर उसने एक बार हमारे विरुद्ध [illegible] भूमि-

कर देने से मना कर दिया था, वह बात क्या तुम भूल गईं ?

माँ बोलीं—'भूली नहीं हूँ, इसीलिए तो कह रही हूँ। जो न्याय देन चुकाने के लिए मना करता है, अन्याय वसूली वही कर सकता है विपिन, दूसरा नहीं। दया-माया उसे है, थोड़ा अधिक भी है मानती हूँ, फिर भी एक दिन देखेगा कि उसी के हाथों से प्रजा को बहुत अधिक दुख मिलेगा।'

'नहीं, नहीं मिलेगा माँ, तुम देखना।'

दयामयी बोलीं—'भरोसा केवल इस बात का है कि तू है। वर्ना वह स्वयं भी एक दिन डूबेगा, दूसरों को भी डुबा बैठेगा।'

इतनी देर तक द्विजदास मौन था। अब बोला—'तुम्हारी अंतिम बात ठीक नहीं हुई माँ। स्वयं डूबेगा शायद एक दिन सच हो, पर दूसरों को नहीं डुबाऊँगा यह तुम पक्की जान लेना।'

माँ ने कहा—'इसमें भी प्रसन्नता की बात नहीं है द्विजू, असल में तुझे चलाने के लिए एक आदमी का रहना आवश्यक है।'

द्विजदास ने कहा—'यही बात स्पष्ट कहो तो सब की चिंता दूर हो। मुझे चलाने के लिए किसी एक की आवश्यकता है। किन्तु इसका प्रबंध तुमने लगभग कर ही लिया है माँ।'

माँ ने कहा—'यदि सचमुच ही कर लिया है, तो इसे अपना सौभाग्य समझना।'

तर्क का असली अर्थ अब साफ-साफ सभी ने समझ लिया।

माँ कहती गईं—'इतनी बड़ी घटना कर डाली, किसी की बात नहीं सुनी।' बोली—'भैया की आज्ञा है। किन्तु भैया ने क्या अश्वमेघ करने के लिए कहा था ? अब कौन सँभालेगा बता न ? मैत्रेयी आ गई थी यही अच्छा हुआ।'

द्विजदास ने कहा—'काम पहले हो जाय माँ, तब जिसे मन हो सनद देना, मैं भी उज्र न करूँगा। किन्तु जल्दी की बात क्या है ?'

वन्दना ने पूछा—'तब सनद पर हस्ताक्षर कौन करेगा द्विजू बाबू, तीसरा पक्ष तो नहीं ?'

द्विजदास ने कहा—'नहीं, तीसरे पक्ष का क्या साहस ! आज भी बड़े

बहादुर पहले और दूसरे पक्ष जो उसी प्रकार तैयार हैं। कहकर दोनों हँस पड़े।

विप्रदास और माँ ने एक दूसरे का मुख देखा, लेकिन मतलब समझ में न आया।

अन्नदा ने आकर कहा—'वन्दना बहिन, बड़े बाबू की दवाओं को कल संभालकर उस कागज के डिब्बे में रखा था, वह तो दिखाई नहीं दे रहा है। खो तो नहीं गया ?'

'नहीं, खोया नहीं अनु बहिन, कलकत्ते के मकान में ही छूट गया।'

दयामयी ने डरकर कहा—'कौन तदबीर की जाय वन्दना, इतनी बड़ी भूल हो गई ?'

वन्दना ने कहा—'भूल नहीं हुई है माँ, आते समय उन्हें जानबूझ कर ही छोड़ आई हूँ।'

'जानबूझ कर छोड़ आई ! क्यों ?'

'सोचकर कि दवा बहुत खाई है, अब रहने दें। तब माँ पास नहीं थीं, इसलिए दवा की आवश्यकता पड़ी थी, अब बिना दवा के ही अच्छे हो उठने में जरा भी देर न लगेगी।'

दयामयी को ये बातें बहुत भली लगीं। वह बोली—अच्छा नहीं किया बेटी, देहात है, डॉक्टर-वैद्य नहीं मिलते हैं, आवश्यकता पड़ने पर···।

अन्नदा ने कहा—'आवश्यकता अब नहीं होगी माँ। होने पर वह हर्गिज नहीं छोड़ आती। डॉक्टर-वैद्य से भी अधिक वन्दना बहिन जानती है।'

दयामयी प्रशंसा भरी दृष्टि से मौन हो देखती रहीं। वन्दना बोली—बढ़ा चढ़ाकर कहना ही अनु बहिन का स्वभाव है माँ, वर्ना सचमुच मैं कुछ नहीं जानती। जो कुछ सीखा है, वह मुखोपाध्यायजी की सेवा करके ही सीखा है।'

अन्नदा बोली—'वह कैसी सेवा है माँ, इसे मैं ही जानती हूँ। अचानक एक दिन कैसे घोर संकट में पड़ गई। घर में कोई था नहीं, वासू की बीमार का तार पाकर द्विजू यहाँ चला आया, दत्तजी ढाका गये थे, विपिन को ज्वर हो आया। पहले दो दिन किसी प्रकार बीते, किन्तु उसके बाद वाले दिन ज्वर अधिक बढ़ गया। डॉक्टर को बुलवा भेजा, उसने दवा दी, लेकिन चौगुना भय दिखाया। मूरख औरत हूँ, क्या करूं, तुम्हें भी सूचना नहीं दे सकती थी, विपिन ने मना किया—बेचैन हो दौड़कर वन्दना के पास गई, उसकी मौसी घर

पर। रोकर बोली—'बहिन, क्रोध मत किये रहो, आओ चलो। मुखोपाध्याय जी बहुत बीमार हैं।' वन्दना बहिन जैसी थी, उसी तरह मेरी गाड़ी में आ बैठी, मौसी को कह आने का समय भी उन्हें नहीं मिला। घर आकर विपिन का भार लिया। दिन-रात एक घण्टा भी उन्हें कई दिन तब दम लेने का अवकाश न मिला। केवल दवा पिलाना ही तो नहीं था, सवेरे के प्रबन्ध से लेकर रात को मच्छरदानी गिराकर सुलाने तक सब कुछ करती थीं। अब वन्दना बहिन यदि दवा नहीं देना चाहती हैं, माँ, तो देने की आवश्यकता नहीं, वैसे ही विपिन अच्छा हो जायगा।'

उसी दम हुङ्कारी भरकर विप्रदास ने गम्भीर होकर कहा—'सचमुच ही अच्छा हो जाऊँगा माँ, तुम लोग अब उसे बाधा मत दो, उन्हें सुबुद्धि मिले, मुझे दवा पिलाना बन्द करें। मैं हृदय से आशीर्वाद दूँगा कि वन्दना राजरानी हो।'

दयामयी चुपचाप देखती रही। उनके नेत्रों में मानो स्नेह और ममता छलकने लगी।

महरी ने आकर कहा—'माँ, बहू जी पूछ रही हैं कि कलकत्ते से अभी जो चीजें आई हैं वे कहाँ रखी जायँगी?

दयामयी के उत्तर देने से पहले ही वन्दना बोली—'माँ, मैं आपकी मलेच्छ बेटी हूँ तो क्या, इतने बड़े काम में मुझे किसी चीज का भार नहीं मिलेगा, केवल चुपचाप बैठी रहूँगी? ऐसी कितनी चीजें हैं जो मेरे छूने से भी छू नहीं जायँगी?'

दयामयी ने उसका हाथ पकड़ कर अपनी छाती से लगा लिया। आँचल से चाभियों का एक गुच्छा खोलकर उसके हाथ में देकर बोली—'चुपचाप तुम्हें बैठने ही क्यों दूंगी बेटी? यह लो, तुम्हें अपने भण्डार की कुंजी दे रही हूँ जिसे बहू को छोड़ किसी दूसरे को नहीं दे सकती। आज इसका भार तुम पर रहा।'

'माँ, इस भण्डार में क्या है?'

'चाभियों के इस गुच्छे से अत्यन्त परिचित हैं' कनखियों से देखकर द्विजदास बोला—'जो कुछ है वह छुआछूत से परे है। है सोना-चाँदी, रुपया-पैसा, चेली-गरद-जोड़ा कपड़े आदि। जिसे तुम्हारे छू लेने पर भी घोर धार्मिक आदमी

को भी सिर उठा लेने में उज्र न होगा।'

वन्दना ने पूछा—'माँ, मुझे क्या करना होगा ?'

दयामयी ने कहा—'अध्यापकों की विदाई, अतिथि-अभ्यागतों की सम्मान-रक्षा, आत्मीय स्वजनों के कलेवे का प्रबन्ध और उसके साथ इस लड़के पर भी निगरानी।' यह कह कर द्विजदास को दिखलाकर बोली—'मैं हिसाब नहीं जानती, इसीलिए उसने भुलावा कर न जाने कितने रुपये व्यर्थ खर्च कर दिये हैं, इसका लेखा नहीं, यह तुम्हें बन्द करना पड़ेगा।'

द्विजदास ने कहा—'ऐसी बातें भैया के सामने मत कहा करो माँ। वे सोचेंगे बात सच होगी। खर्च के खाते में ठीक प्रकार से खर्च का लेखा लिखा जा रहा है, मिलान कर लेने से मालूम हो जायगा।'

दयामयी ने कहा—'किससे मिलाऊँगी ? खर्च का लेखा लिखा जा रहा है मानती हूँ, लेकिन अपव्यय का लेखा कौन लिख रहा है बता न ? यही बात मैं वन्दना को बता रही थी।'

वन्दना बोली—'जान कर ही क्या होगा माँ ? रुपये उनके हैं, व्यर्थ खर्च करें तो मैं कैसे रोकूंगी ?'

दयामयी ने कहा—'यह मैं नहीं जानती। तुमने भार लेना चाहा था, मैंने भार देकर छुट्टी पाई। किन्तु एक बात कहूँ वन्दना, तुम्हें भी एक दिन गृहस्थी चलानी होगी, तब व्यर्थ व्यय को रोकने का उत्तरदायित्व अगर आ पड़ा तो 'जानती नहीं' कहने से छुट्टी न मिलेगी।'

द्विजदास की ओर देखकर वन्दना बोली—'माँ की आज्ञा सुन ली न ?'

द्विजदास बोला—'अवश्य सुनी। लेकिन भैया ने खर्च करने का भार मुझे दिया है, माँ ने तुम पर खर्च न करने का भार दिया। इसलिए खण्ड युद्ध होगा ही, तब दोष देने से काम नहीं बनेगा।'

हँसकर वन्दना बोली—'दोष देने की आवश्यकता न पड़ेगी द्विजू बाबू, हममें झगड़ा न होगा। आपके रुपयों को लेकर आपसे ही युद्ध करने की मूर्खता मुझमें नहीं है। यह शिक्षा मुझे बंगाल में मिली है। झगड़े के पहले माँ का दिया हुआ भार माँ के हाथों में ही सौंपकर पृथक् हो जाऊँगी।'

पूरी तौर पर न समझने पर भी दयामयी इतना समझ गई कि यह मान स्वाभाविक है। उदास होकर बोलीं—'भार मैं वापस लूंगी बेटी, तुम्हें इसे न ढोना पड़ेगा। लेकिन अब यहाँ नहीं, अन्दर चलो, तुम्हारा काम तुम्हें बता दूं।' इतना कहकर उसे खींच ले गई।

पर। रोकर बोली—'वहिन, क्रोध मत किये रहो, आओ चलो। मुखोपाध्याय जी बहुत बीमार हैं।' वन्दना बहिन जैसी थी, उसी तरह मेरी गाड़ी में आ बैठी, मौसी को कह आने का समय भी उन्हें नहीं मिला। घर आकर विपिन का भार लिया। दिन-रात एक घण्टा भी उन्हें कई दिन तब दम लेने का अवकाश न मिला। केवल दवा पिलाना ही तो नहीं था, सवेरे के प्रबन्ध से लेकर रात को मच्छरदानी गिराकर सुलाने तक सब कुछ करती थीं। अब वन्दना बहिन यदि दवा नहीं देना चाहती हैं, माँ, तो देने की आवश्यकता नहीं, वैसे ही विपिन अच्छा हो जायगा।'

उसी दम हुङ्कारी भरकर विप्रदास ने गम्भीर होकर कहा—'सचमुच ही अच्छा हो जाऊँगा माँ, तुम लोग अब उसे बाधा मत दो, उन्हें सुबुद्धि मिले, मुझे दवा पिलाना बन्द करें। मैं हृदय से आशीर्वाद दूँगा कि वन्दना राजरानी हो।'

दयामयी चुपचाप देखती रही। उनके नेत्रों में मानो स्नेह और ममता छलकने लगी।

महरी ने आकर कहा—'माँ, बहू जी पूछ रही हैं कि कलकत्ते से अभी जो चीजें आई हैं वे कहाँ रखी जायँगी ?

दयामयी के उत्तर देने से पहले ही वन्दना बोली—'माँ, मैं आपकी मलेच्छ बेटी हूँ तो क्या, इतने बड़े काम में मुझे किसी चीज का भार नहीं मिलेगा, केवल चुपचाप बैठी रहूँगी ? ऐसी कितनी चीजें हैं जो मेरे छूने से भी छू नहीं जायँगी ?'

दयामयी ने उसका हाथ पकड़ कर अपनी छाती से लगा लिया। आँचल से चाभियों का एक गुच्छा खोलकर उसके हाथ में देकर बोली—'चुपचाप तुम्हें बैठने ही क्यों दूँगी बेटी ? यह लो, तुम्हें अपने भण्डार की कुंजी दे रही हूँ जिसे बहू को छोड़ किसी दूसरे को नहीं दे सकती। आज इसका भार तुम पर रहा।'

'माँ, इस भण्डार में क्या है ?'

'चाभियों के इस गुच्छे से अत्यन्त परिचित हूँ' कनखियों से देखकर द्विजदास बोला—'जो कुछ है वह छुआछूत से परे है। है सोना-चाँदी, रुपया-पैसा, चेली-गरद-जोड़ा कपड़े आदि। जिसे तुम्हारे छू लेने पर भी घोर धार्मिक आदमी

को भी सिर उठा लेने में उज्र न होगा।'

वन्दना ने पूछा—'माँ, मुझे क्या करना होगा?'

दयामयी ने कहा—'अध्यापकों की विदाई, अतिथि-अभ्यागतों की सम्मान-रक्षा, आत्मीय स्वजनों के कलेवे का प्रबन्ध और उसके साथ इस लड़के पर भी निगरानी।' यह कह कर द्विजदास को दिखलाकर बोली—'मैं हिसाब नहीं जानती, इसीलिए उसने भुलावा कर न जाने कितने रुपये व्यर्थ खर्च कर दिये हैं, इसका लेखा नहीं, यह तुम्हें बन्द करना पड़ेगा।'

द्विजदास ने कहा—'ऐसी बातें भैया के सामने मत कहा करो माँ। वे सोचेंगे बात सच होगी। खर्च के खाते में ठीक प्रकार से खर्च का लेखा लिखा जा रहा है, मिलान कर लेने से मालूम हो जायगा।'

दयामयी ने कहा—'किससे मिलाऊँगी? खर्च का लेखा लिखा जा रहा है मानती हूँ, लेकिन अपव्यय का लेखा कौन लिख रहा है बता न? यही बात मैं वन्दना को बता रही थी।'

वन्दना बोली—'जान कर ही क्या होगा माँ? रुपये उनके हैं, व्यर्थ खर्च करें तो मैं कैसे रोकूंगी?'

दयामयी ने कहा—'यह मैं नहीं जानती। तुमने भार लेना चाहा था, मैंने भार देकर छुट्टी पाई। किन्तु एक बात कहूँ वन्दना, तुम्हें भी एक दिन गृहस्थी चलानी होगी, तब व्यर्थ व्यय को रोकने का उत्तरदायित्व अगर आ पड़ा तो 'जानती नहीं' कहने से छुट्टी न मिलेगी।'

द्विजदास की ओर देखकर वन्दना बोली—'माँ की आज्ञा सुन ली न?'

द्विजदास बोला—'अवश्य सुनी। लेकिन भैया ने खर्च करने का भार मुझे दिया है, माँ ने तुम पर खर्च न करने का भार दिया। इसलिए खण्ड युद्ध होगा ही, तब दोष देने से काम नहीं बनेगा।'

हंसकर वन्दना बोली—'दोष देने की आवश्यकता न पड़ेगी द्विजू बाबू, हममें झगड़ा न होगा। आपके रुपयों को लेकर आपसे ही युद्ध करने की मूर्खता मुझमें नहीं है। यह शिक्षा मुझे बंगाल में मिली है। झगड़े के पहले माँ का दिया हुआ भार माँ के हाथों में ही सौंपकर पृथक् हो जाऊँगी।'

पूरी तौर पर न समझने पर भी दयामयी इतना समझ गई कि यह मान स्वाभाविक है। उदास होकर बोलीं—'भार मैं वापस लूंगी बेटी, तुम्हें इसे न ढोना पड़ेगा। लेकिन अब यहाँ नहीं, अन्दर चलो, तुम्हारा काम तुम्हें बता दूं।' इतना कहकर उसे खींच ले गई।

उस दिन वन्दना इस घर में केवल कुछ घण्टे रही, कहाँ क्या है देखने का अवसर न मिला। आज देखा महलों पर महलों का जैसे ठिकाना नहीं है। आश्रित नातेदारों की गिनती कम नहीं है, बहू, महरी, दासी आदि को लेकर एक-एक परिवार है। उधर कचहरी और उसकी अनुसाङ्गिक सारी व्यवस्था है। किन्तु इस हिस्से में है ठाकुरबाड़ी, रसोई, दयामयी की शानदार गोशाला और ऊंची दीवार से घिरा बगीचा और पोखरा। पहले तल्ले के पूरब वाले कमरे दयामयी के हैं, उन्हीं में से एक के सामने वन्दना को लाकर वह बोली—'बेटी, यह कमरा तुम्हारा है, इसी का सारा भार तुम पर रहा।'

उधर वाले बरामदे में बैठी सती और मैत्रेयी कुछ वस्तुओं को बड़े ध्यान से देख रही थीं। दयामयी की आवाज सुन सिर उठाकर देखा, और वन्दना को देखकर दोनों काम छोड़कर पास आ खड़ी हुई। वह सचमुच ही आवेगी इसकी आशा किसी ने की न थी। बहिन के चरणों की धूलि ली और मैत्रेयी को नमस्कार किया। माँ बोली—'मेरी यह मलेच्छ बिटिया किसी एक काम का भार चाहती है बहू, चुपचाप बैठी रहने के लिए यह सहमत नहीं है। तुम्हें कई प्रकार का काम दिया है, उसे भण्डार की चाभी दो।'

मैत्रेयी ने पूछा—'माँ, इस भण्डार में क्या है ?'

'ऐसी चीजें हैं जो मलेच्छ बिटिया के छूने से छू नहीं जायँगी।' कह कर दयामयी कौतुक के साथ हँसकर वन्दना से द्वार खुलवाकर भीतर आ खड़ी। फर्श पर चाँदी के बर्तनों की थाक सजाई हुई है, ब्राह्मण-पण्डितों को र्यादा प्रदान करना होगा। कलकत्ते में भुँजाकर रुपये, चवन्नी आदि मँगाई गई हैं, थैलियों का ढेर एक जगह लगा हुआ है, गरद आदि कीमती कपड़े अभी बोरे में बन्द पड़े हैं, खोलने का अवकाश नहीं मिला है, इसके अलावा दयामयी की तिजोरी और बक्स इसी घर में हैं। इशारे से दिखा हँसकर बोली—'वन्दना उसी के अन्दर मेरा सब कुछ है, उसी पर द्विजू को सब से अधिक लोभ है। बिटिया, तुम्हें सबसे अधिक पहरा वहीं देना होगा जिसमें तुम्हें भी मेरी तरह चकमा न दे सके।'

वन्दना के उदास मुख की ओर देखकर सती बहिन की ओर से बोली—'माँ, क्या इतने बड़े काम का भार दिया जा सकता है ? मामला बहुत रुपये-पैसे का है···।'

उसकी बात समाप्त होने के पहले ही दयामयी बोली—'मामला बहुत रुपये-पैसे का है, इसीलिए, उसके हाथों में चाभी दी हैं बहू, वर्ना द्विजू दिवालिया कर देगा।'

'किन्तु वह तो बाहर से आई है माँ ?'

सती की यह बात समाप्त नहीं हुई, दयामयी ने हँसकर कहा—'बाहर से एक तुम भी आई थीं और उससे भी बहुत पहले इसी प्रकार बाहर से ही मुझे भी आना पड़ा था। यह कोई दुःख की बात नहीं है बहू। लेकिन मुझे अवकाश नहीं है, जाती हूँ।' इतना कहकर वह चली गई।

वन्दना बोली—'तुम्हारे घर आकर यह किस जाल में फँस गई मझली बहिन। मुझे तो साँस लेने का भी अवकाश नहीं मिलेगा।'

'जान तो यही पड़ता है।' कहकर सती ने थोड़ा हँस दिया।

: २३ :

दुनिया में मुसीबत कहाँ रहती है और किस रूप में और कब सामने आ जाती, सोचकर हैरान होना पड़ता है। काम के बीच में कल्याणी ने आ, रोकर कहा—'माँ, वह कह रहे हैं कि उनके साथ मुझे अभी घर जाना होगा। गाड़ी का समय नहीं है, स्टेशन पर बैठे रहेंगे वह भी ठीक है, पर इस घर में एक पल भी न ठहरेंगे।'

तालाब की प्रतिष्ठा की शास्त्रीय क्रिया अभी-अभी समाप्त हुई है, अभी दयामयी ने मण्डप से आकर घर में पैर ही रखा है। कार्य व्यस्तता के बीच वह ठमक कर खड़ी हो गईं, बेटी की बात उनकी समझ ही में न आई, भौंचक्का होकर बोलीं—'जाने के लिए तुझे किसने कहा—शशधर ने ? क्यों ?'

'बड़े भाई ने उनका घोर अपमान किया—घर से निकाल दिया है।' कह कर कल्याणी फूट-फूट कर रोने लगी।

चारों ओर आदमी हैं, कहीं भोजन का प्रबन्ध, कहीं गाने की महफिल, कहीं भिक्षुकों के झगड़े, कहीं ब्राह्मण-पण्डितों का शास्त्रार्थ, असंख्य आदमियों का कोलाहल—उसी के बीच एकाएक यह मामला। सती और मैत्रयी आईं, वन्दना भण्डार में चाभी लगाकर पास आ खड़ी हुई, आत्मीय सम्बन्धी गणों में बहुतेरों को कौतूहल हुआ, शशधर आ प्रणाम करके बोला—

हूँ! आपने आने की आज्ञा दी थी हम आये, लेकिन रह नहीं सकते।'

'क्यों बेटा ?'

'अपने घर से विप्रदास बाबू ने मुझे निकाल दिया है।'

'किसलिए ?'

'शायद कारण यह है कि वह बड़े आदमी हैं। वह गर्व से आँख-कान से देख-सुन नहीं सकते हैं। सोचा है अपने घर में बुलाकर अपमान करना आसान है। किन्तु आप अपने लड़के को इतना समझा दें कि मेरे बाप भी जमींदारी छोड़ गये हैं, वह भी बिलकुल छोटी नहीं है। मुझे भी घर-घर भीख नहीं माँगनी पड़ती।'

व्याकुल होकर दयामयी बोलीं—'विपिन को बुलवा रही हूँ बेटा, पूछूँ, क्या हुआ है? मेरा काम अभी समाप्त नहीं हुआ है, ब्राह्मण-भोज शेष है, वैष्णव-भिक्षुओं की विदाई नहीं हुई है, उसके पहले ही यदि तुम लोग अप्रसन्न होकर चले गये शशधर तो जिस तालाब की अभी प्रतिष्ठा की है, उसी में डूब कर मर जाऊँगी, यह तुम सही जान लेना।' कहते हुए उनके दोनों नेत्र भर आये।

शशधर पर सास के आँसुओं का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। भद्र सन्तान होने पर भी शशधर की आकृति कोई भी भद्र मनुष्य के समान नहीं है। सटकर खड़े होने में संकोच होता है। उसका विशाल शरीर और विशाल-तर मुखमण्डल क्रुद्ध बिल्ली के समान फूलने लगा। बोला—'रह सकता हूँ यदि विप्रदास बाबू यहाँ आकर सबके सामने हाथ जोड़कर मुझसे क्षमा माँगे वर्ना नहीं।'

प्रस्ताव इतना प्रभावित था कि सुनकर सभी मानो आश्चर्य से चुप हो गये! विप्रदास क्षमा माँगेगा हाथ जोड़कर! और सब के सामने। कई क्षण सभी चुप रहे, अचानक पीले मुख अत्यन्त अनुनय के स्वर में सती बोल उठी—'अभी नहीं ननदोई जी, काम-काज हो जाय, रात को माँ निश्चय ही इसका याय करेंगी। तुम्हारा क्या कभी अपमान किया जा सकता है? गलती की ोगी तो वह अवश्य क्षमा माँगेंगे।'

वन्दना के नेत्रों के कोने कुछ चमक उठे, किन्तु शान्त स्वर में बोली—'झली बहिन, वह गलती तो कभी करते नहीं।'

डाँटकर सती बोली—'तू चुप तो रह वन्दना। सभी से गलती होती है।'

वन्दना बोली—'नहीं, उनसे नहीं होती।'

सुनकर मैत्रेयी मानो आगबबूला हो गई, कड़े स्वर में बोली—'आपको क्या पता ? वहाँ तो आप थी नहीं। तब क्या वह अपनी ओर से बना कर कह रहे हैं ?'

पल भर उसकी ओर देखकर वन्दना बोली—'बनाकर बोलने की बात मैं नहीं कहती। मैं कहती हूँ कि मुखोपाध्याय जी से गलती नहीं होती।'

मैत्रेयी उत्तर में उसी प्रकार व्यंग करके बोली—'गलती सभी से होती है। कोई भगवान् नहीं हैं। उन्होंने पिताजी को भी अपमानित करना न छोड़ा।'

वन्दना ने कहा—'तो शशधर बाबू की भाँति उन्हें भी चला जाना चाहिए था, ठहरना उचित नहीं था।'

कड़े स्वर में मैत्रेयी ने उत्तर दिया—'यह विवरण आपको नहीं देंगे, नहीं न्याय होगा, द्विजू बाबू से, जो बुलाकर लाये हैं।'

सती ने अप्रसन्न होकर वन्दना का तिरस्कार किया और कहा—'तेरे पैरों पड़ती हूँ, तू यहाँ से जा वन्दना, अपना काम कर।'

दयामयी को लक्ष्य कर शशधर बोला—'मैं न्याय-अन्याय के लिए कचहरी करने नहीं आया हूँ माँ, यह पूछने आया हूँ कि आपका बेटा हाथ जोड़कर क्षमा माँगेगा या नहीं ? वर्ना मैं चला, एक मिनट भी न रुकूँगा ? आपकी लड़की मेरे साथ जा सकती हैं, और नहीं भी, किन्तु इसके बाद ससुराल का नाम मुँह से न ले। आज यही उसका अन्त समझ लें।'

कैसी सत्यानाशी बात है यह। शशधर के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है—बेटी-दामाद को घर बुलाकर यह कैसी आफत ! कल्याणी सामने खड़ी थी, रोने लगी, राय देने के लिए आदमी नहीं है, सोचने के लिए समय नहीं है—त्रास, लज्जा और घोर अपमान से दयामयी की बुद्धि मन्द हो गई। क्या करना चाहिए, वह समझ में नहीं आने पर वह बोली—तुम तनिक ठहरो बेटा, मैं विपिन को बुलवा रही हूँ। मैं जानती हूँ कहीं तुमने बड़ी गलती की है, यदि भरे गाँव में यह कलंक प्रकट हो गया तो मुझे आत्महत्या करनी पड़ेगी।'

शशधर ने कहा—'अच्छी बात है, बुलवाइए, मैं खड़ा हूँ। विप्रदास बाबू असत्य ही बोलें कि यह काम उन्होंने किया नहीं है।'

'वह असत्य नहीं बोलता है शशधर !' कहकर [illegible] ने

बुलवा भेजा। पाँच मिनट के बाद विप्रदास आ गया। उसी प्रकार शान्त, गम्भीर और आत्म समाहित। केवल नेत्रों की चितवन में एक उदासीन क्लान्ति की छाया है—उसके हृदय में कौन-सी बात छिपी है, यह बतलाना कठिन है।

भावावेग से दयामयी बोल उठीं—शशधर क्या कहता है विपिन ? कहता है कि तूने उसे घर से निकाल दिया है। क्या यह कभी सत्य हो सकता है ?'

विप्रदास ने कहा—'सत्य नहीं तो क्या झूठ है माँ।'

'क्या सचमुच मेरे दामाद को घर से निकाल दिया ? मेरे इस काम-काज के घर से।'

'हाँ, सचमुच ही निकाल दिया है और साथ ही यह भी कह दिया है कि कभी दुबारा इस घर में पैर न धरें।'

दयमयी सुनकर वज्राहत की भाँति हो गई। कुछ देर के बाद व्याकुलता दूर होने पर पूछा—'क्यों ?'

'तभी अच्छा होगा कि उसे आप न सुनें माँ।'

सती चुप न रह सकी, व्याकुल होकर बोली—'हममें से कोई नहीं सुनना चाहता, लेकिन जीजा जी कल्याणी को लेकर अभी चले जाना चाहते हैं, इस घर भरे लोगों के बीच, सोचकर देखो यह कैसी बदनामी की बात होगी ! उनसे कहो तुमसे अचानक अन्याय हो गया, उन्हें रहने के लिए कह दो।''

पत्नी के मुँह की ओर पल भर देखकर विप्रदास बोला—'अचानक अन्याय मुझसे होता नहीं है।'

'अवश्य होता है, कुछ-कुछ अन्याय सभी से होता है। उन्हें ठहरने के लिए कहो।'

सिर हिलाकर विप्रदास ने कहा—'नहीं, अन्याय मुझसे नहीं हुआ।'

पति-पत्नी के कथोपकथन के बीच दयामयी चुप थीं, अचानक किसी ने मानो उन्हें झकझोरकर सचेत कर दिया, कड़े स्वर में बोलीं—'न्याय-अन्याय का झगड़ा रहने दो। मेरे बेटी दामाद सदैव के लिए गैर हो जायेंगे, यह मुझसे सहन न होगा। शशधर से तुम क्षमा माँग लो विपिन।'

'माँ, यह नहीं हो सकता, असम्भव है।'

'सम्भव-असम्भव मैं नहीं जानती। तुम्हें उससे क्षमा माँगनी ही होगी।'

विप्रदास उत्तर न देकर चुप रहा। दयामयी मन-ही-मन समझ गई कि इस असम्भव को सम्भव नहीं किया जा सकेगा, क्रोध की सीमा न रही, बोलीं—'विपिन, घर तुम्हारा अकेले का नहीं है। किसी को भगाने का अधिकार मालिक तुम्हें दे नहीं गये हैं। इस घर में वे अवश्य रहेंगे।'

विप्रदास ने कहा—'देखो माँ, मुझे न बुलवाकर यदि तुम यह आज्ञा देतीं तो मैं चुप रहता, किन्तु अब रह नहीं सकता। यदि यहाँ शशधर रहता है तो मुझे यह घर छोड़कर चला ही जाना होगा। फिर लौटा न सकोगी। बतलाओ कौन-सी बात चाहती हो?'

जीवन में ऐसे भयंकर प्रश्न का उत्तर देने के लिए कभी किसी ने उन्हें नहीं कहा था, इतनी बड़ी दुर्भेद्य समस्या का सामना करने लिए भी कभी किसी ने नहीं कहा था। इधर बेटी-दामाद हैं, उधर उनका विपिन खड़ा है। जिस बच्चे को छाती से लगाकर बड़ा किया था, जो सभी आत्मीयों से बड़ा आत्मीय है, दुःख में सान्त्वना, विपत्ति में सहारा है, जो बेटा उन्हें प्राणों से अधिक प्यारा है। यह अमर्यादा उन्हें मौत दे सकती है, लेकिन वचन से नहीं फिर सकती। समझ गईं कि सर्वनाश का गहरा गड्ढ़ा उनके पाँव के नीचे है, इस भूल का उपाय नहीं हो सकता, वापस आने के लिए मार्ग नहीं है। इसका फल विधाता के लेख के समान अचूक निर्मम और अनन्यगति है। फिर भी अपने को बस में रख सकीं, अदम्य क्रोध और अभिमान के झोंके ने उन्हें सामने की ओर धकेल दिया, कटु-स्वर में बोलीं—'यह तुम्हारी बेजाय हठ हैं विपिन। तुम्हारे लिए बेटी-दामद को जन्म भर के लिए बेगाना कर दूँ यह हो नहीं सकता बेटा। तुम्हारा जो मन हो, करो। शशधर, तुम लोग मेरे साथ आओ—उसकी बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। यह घर केवल उसी का तो नहीं है।' यह कहकर कल्याणी और शशधर को साथ लेकर वह चल दी। उनके पीछे-पीछे गई मैत्रेयी, मानों वह उन्हीं की अपनी है।

ऐसा जान पड़ा मानो सती अब टूक-टूक हो जायगी। लेकिन उसकी अडिग दृढ़ता को देखकर वन्दना और विप्रदास को आश्चर्य हुआ। उसके नेत्रों में आँसू नहीं हैं, लेकिन चेहरा बहुत पीला है। वह बोली—'बहनोई जी ने क्या किया है मैं नहीं जानती, पर व्यर्थ ही तुमने भी इतनी बड़ी घटना नहीं की है यह निश्चित रूप से जानती हूं। मन में यह मत समझना कि मैं तुम्हें कभी दोष दूंगी।'

विप्रदास चुप रहा। सती ने पूछा—'क्या आज ही चले जाओगे?'

'नहीं, कल जाऊँगा।'

'अब इस घर में नहीं आओगे ?'

'इच्छा तो यही है।'

'मैं ? बासु ?'

'तुम्हें भी जाना पड़ेगा। यदि कल न हो सके तो और किसी दिन सही।'

'नहीं, किसी और दिन नहीं, हम भी कल चलेंगे।' कहकर सती ने वन्दना से पुछा—'तू क्या करोगी वन्दना, कल ही चलेगी ?'

वन्दना ने कहा—'नहीं। मैंने तो झगड़ा नहीं किया है, मझली दीदी, जिससे दल में शामिल होकर कल ही जाना पड़ेगा।'

सती ने कहा—'झगड़ा तो मैंने भी नहीं किया है वन्दना, और न उन्होंने ही किया। किन्तु जहाँ उनके लिए स्थान नहीं, वहाँ मेरे लिए भी नहीं। एक दिन के लिए भी नहीं ! तू विवाहित होती तो यह बात समझ सकती थी।'

वन्दना ने कहा—'विवाहित न होने पर भी समझती हूँ मझली दीदी, पति के लिए स्थान न होने पर पत्नी के लिए भी नहीं होता। किन्तु भूल तो होती ही है, बिना समझे ही उसी को स्वीकार कर लेना स्त्री का कर्त्तव्य है, तुम्हारी बात न मानूंगी।'

सास के प्रति सती के मान की सीमा नहीं थी, बोली—'तुम्हारे पति होते तो मानती।' कहकर आँसू रोकने के लिए सती शीघ्रता से चल दी।

वन्दना ने कहा—'यह क्या किया मुखोपाध्याय जी ?'

'इसके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं था वन्दना।'

'लेकिन माँ से विच्छेद, इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती।'

विप्रदास ने कहा—'नहीं की जा सकती—सच है, लेकिन नया प्रश्न आकर जब मार्ग रोककर खड़ा हो जाता है, तब नये समाधान की बात सोचनी ही होती है। बचकर निकल जाने का मार्ग नहीं रहता। तुम्हारी मझली दीदी मेरे साथ जायँगी ही, रोकना व्यर्थ है। पर तुम ? सोचती हो दो-चार दिन और रहोगी।'

वन्दना ने कहा—'कितने दिनों तक रहना होगा, मैं जानती नहीं। किन्तु नये प्रश्न आपके सामने जितने भी आवें, लेकिन मैं उसी पुराने मार्ग पर ही उसके उत्तर की तलाश करूँगी जिस रास्ते को पहले दिन देखा। मैंने जिसकी तुलना कहीं नहीं देखी, मेरे मन की धारा को सदैव के लिए बदल दिया है।'

विप्रदास ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया, उसके ओठों के कोने में कुछ ग्लान हँसी की रेखा दिखाई पड़ी। वह हँसी वेदना की है, वैसे ही निराशा की भी। बोला—'मैं बाहर जा रहा हूँ वन्दना, फिर भेंट होगी।'

वन्दना के नेत्रों में पानी भर आया। बोली—'भेंट हुई तो दूर से ही आपको प्रणाम करूँगी। आपका कठोर स्वभाव है मन कड़ा है, न स्नेह है और न क्षमा। यदि तब बोल न सकूं, सुयोग यदि न मिले अभी से बोल दूं मुखोपाध्याय जी। जिन्हें लेकर हम गृहस्थ हैं, हंसते-होते हैं, मान अभिमान करते हैं, उन्हीं को लेकर रह सकूँ, इस जीवन में अपना समझना सीखूं। मृगतृष्णा के पीछे राह न खो दूं।' कुछ रुककर बोली—'दूर से जब आपकी याद आयेगी, तब—तब एकाग्र होकर इस मन्त्र का जाप करूँगी, वह निर्मल हैं, वह निष्पाप हैं, वह महान् हैं। उनके मन की पाषाण शिला पर तनिक भी धब्बा नहीं पड़ता। संसार में वह अकेले हैं, किसी के अपने वह नहीं हैं, संसार में कोई उनका अपना नहीं हो सकता।' यह कह दोनों नेत्रों को आँचल से ढँककर वह कमरे से बाहर निकल गई।

उस दिन काम-काज बहुत रात को समाप्त हुआ। इस घर की सुश्रृंखला-बद्ध धारा में कहीं कोई गड़बड़ नहीं हुई। बाहर से कोई जान भी न सका कि इस श्रृंखला की सबसे बड़ी कड़ी आज चकनाचूर हो गई। प्रातः होने में अधिक देर नहीं है, काम से थका-माँदा विशाल भवन बिल्कुल सुनसान है, जिसे जहाँ स्थान मिला, वहीं सोया है, भण्डार के भारी उत्तरदायित्व को समाप्त कर वन्दना थके पैरों अपने कमरे में जा रही थी, देखा उधर के बरामदे की बगल में द्विजदास के कमरे में बत्ती जल रही है। शंका हुई कि ऐसे समय में जाना उचित है या नहीं, किसी की निगाह पड़ी तो सुविचार वह नहीं करेगा, बदनामी सौ मुंह से फैलेगी, किन्तु रुक नहीं सकी, जिस उद्वेग ने उसे सारे दिन चंचल और बेचैन कर रखा है, वह उसे खींच ले गया। बन्द दरवाजे के सामने खड़ी होकर पुकारा—'द्विजू बाबू, अब तब जग रहे हैं?'

'हूँ! लेकिन इस समय आप कैसे?' भीतर से आवाज आई।

'अन्दर आ सकती हूँ?'

'प्रसन्नता से।'

द्वार खोलकर अन्दर घुसकर देखा कि कागजात का ढेर लेकर द्विजदास विस्तर पर बैठा है। पूछा—'क्या आज का हिसाब है? किन्तु हिसाब भाग तो जायगा नहीं द्विजू बाबू, इतनी रात तक जागने से तबीयत खराब होगी।'

द्विजदास ने कहा—'होती तो छुट्टी मिलती, इन्हें नेत्रों से देखना न पड़ता।'

'क्या व्यय बहुत अधिक हो गया है? भैया के सामने भारी विवरण देना पड़ेगा?'

कागजात को एक ओर हटाकर द्विजदास सीधा होकर बैठा। बोला—'चक्रवत् परिवर्त्तन्ते दुःखानि च—वन्दना देवी, श्री गुरु की कृपा से मेरे पहले के दिन अब नहीं रहे कि भैया को विवरण दूं। अब उल्टे मैं ही विवरण लूंगा। कहूँगा—लाओ जल्दी से हिसाब, जल्दी से रुपया लाओ, कहाँ क्या किया बताओ?'

वन्दना ने आश्चर्य करके पूछा—'क्या मामला है?'

दोनों हाथों की मुट्ठी बाँध सिर पर उठाकर द्विजदास बोला—'मामला बड़ा भयंकर है। माँ दयामयी मुझ पर दया करें, बहनोई शशधर मेरे सहायक हों, सावधान विप्रदास! अब मैं तुम्हें धन-प्राण से वध करूँगा! हमारे हाथों से अब तुम्हारा छुटकारा नहीं।'

वन्दना की चिन्ता स्वतन्त्र हो उठी, फिर भी वह बिना हँसे न रह सकी, बोली—'सभी बातों में हँसी-तमाशा? दिजू बाबू, एक पल भर भी आप गम्भीर नहीं होना जानते?'

दिजदास ने कहा—'नहीं जानता? तो लाओ, शशधर को लाओ, नहीं, उन्हें रहने दो। देखोगी, हँसी तमाशा पल भर में भाग जायगा सहारा में, गाम्भीर्य से मुखमण्डल जंगली सूरत जैसा भयानक न हो उठेगा। जाँच कीजिए।'

कुर्सी खींचकर वन्दना बैठ गई—'तो आपने सब कुछ सुना है?'

'सब कुछ नहीं थोड़ा सा। सब कुछ जानते हैं, भैया पर वह गहरा-कूप है। शशधर जानता है। वह बोलेगा अवश्य, लेकिन कल अपनी ओर से गढ़कर असत्य बोलेगा।'

व्याकुल स्वर में वन्दना बोली—'जो कुछ जानते हैं मुझे बतला नहीं सकते द्विजू बाबू? मैं सचमुच ही बहुत भयभीत हो गई हूँ।'

द्विजदास ने कहा—'भय भी करना व्यर्थ है। भैया का दृढ़ निश्चय टलने

का नहीं, उन्हें हमने गँवा दिया।'

दीपालोक में दिखाई दिया कि अब आँसुओं से उसके दोनों नेत्र छल-छला उठे हैं, गर्दन घुमाकर किसी प्रकार पोंछकर फिर सीधा होकर बैठ गया। रुंधे स्वर में वन्दना ने कहा—'क्या रोका नहीं जा सकेगा ?'

सिर हिलाकर द्विजदास ने कहा—'नहीं। यह चीज जब आती है तब इसी प्रकार अवाध होकर,उसी प्रकार तेज चाल से आती है, मना करने से नहीं मानती। जिसे रोना होता है वह रोता है, लेकिन अन्त वही हो जाता है।' पल भर चुप रहकर बोला—'आप कारण जानना चाहती थीं। अधिक नहीं जानता, लेकिन जितना जानता हूँ वह केवल आप को ही बतलाऊँगा और यदि सहायता कभी माँगनी पड़ी तो, कहीं भी रहें, वह केवल आपसे ही माँगूँगा।'

'केवल मुझसे ही क्यों ?'

'इसका भी कारण है। अगर हाथ फैलाना ही पड़ा, महत् के द्वार पर ही फैलाना शास्त्रीय नियम है।'

'लेकिन महत् क्या और कोई है नहीं ?'

'शायद है, लेकिन पता नहीं मालूम। भैया की बात नहीं उठाऊँगा, या सदा से भाभी के सामने हाथ फैलाने की आदत थी, पर वह रास्ता भी बन्द हुआ। आप उनकी बहिन हैं, इसी से मेरा दावा है।'

'लेकिन माँ ?'

द्विजदास ने कहा—'रथ जब तेज चलता है, माँ उसकी असाधारण रथ-वान हैं पर पहिया जब कीचड़ में बैठ जाता है, उनके पास उपाय नहीं है। उतर कर ढकेल नहीं सकतीं। उस बुरे समय में आपके पास जाऊँगा। भीख नहीं देंगी ?'

'भीख का विषय जाने बिना उत्तर कैसे दूँ द्विजू बाबू ?'

'उसे स्वयं भी नहीं जानता वन्दना, आसानी से माँगने भी न जाऊँगा। जब कहीं न मिलेगी तभी जाऊँगा।'

वन्दना बहुत देर के बाद सिर ऊपर उठाकर बोली—'जो जानना चाहा वो बतलायेंगे नहीं ?'

द्विजदास ने कहा—'सारी बातें नहीं जानता, जितना जानता हूँ शायद वह भी असत्य नहीं है। किन्तु एक बात पर मुझे शक नहीं है कि भैया आज कङ्काल हैं। सब कुछ निकल गया।'

वन्दना ने कहा—'मुखोपाध्याय जी कंकाल ? कैसे हुआ यह ?'

द्विजदास ने कहा—'बड़ी सुगमता से उसी शशधर की साजिश से। साहा चौधरी कम्पनी जिस दिन अचानक दिवालिया हुई, भैया का सब कुछ उसी में डूब गया। पर यह केवल बाहरी घटना है, जितना नेत्रों से दिखाई पड़ा। भीतर दूसरा इतिहास छिपा रहा।'

व्याकुल होकर वन्दना वे कहा—'इतिहास रहने दीजिए द्विजू बाबू, केवल घटनाओं की ही बातें कीजिए। बतलाइए सब कुछ डूब जाना सत्य है या नहीं ?'

'हाँ, सत्य है। इसमें कोई गलती नहीं।

'लेकिन मँझली बहिन ? बासु ? उनका कुछ भी शेष नहीं रह गया ?'

'नहीं। रह गई केवल भाभी के मयके की आमदनी। केवल थोड़े से रुपये।'

'लेकिन उसे तो मुखोपाध्याय जी लेंगे नहीं द्विजू बाबू !'

'नही। इससे उपवास पर भैया को अधिक विश्वास है। जितने दिन चलें।'

दोनों चुप रह गये। कुछ मिनट के बाद वन्दना ने पूछा—'किन्तु आप ? क्या हुआ आपका ?'

द्विजदास ने कहा—'बिलकुल निर्भय और निरापद हूँ। भैया स्वयं डूबे, पर मुझे उबार रखा। पानी का एक छींट तक शरीर में नहीं लगने दिया। कहेंगी, यह असम्भव सम्भव कैसे हुआ ? हुआ माँ की सुबुद्धि से, भैया की साधुता से और मेरे शुभग्रहों के फल से। बात यह है सुनिए—यह शशधर था भैया का बाल्यमित्र सहपाठी। दोनों में प्रेम की सीमा नहीं थी। बड़े होकर इसके साथ भैया ने कल्याणी का ब्याह कर दिया। यह अगुआई ही भैया के जीवन की अक्षय कीर्त्ति है। सुनाई पड़ा शशधर के बाप की बड़ी जमींदारी है, विशाल सम्पत्ति और विशाल व्यवसाय है। इतना बड़ा धनी पावना के इलाके में दूसरा नहीं। चार साल बीते अचानक एक दिन शशधर ने कहा कि जमींदारी, ऐश्वर्य व्यवसाय अतल तल में डूबने में देर नहीं, रक्षा करनी होगी— माँ ने कहा—'रक्षा करना ही उचित है, पर मेरा द्विजू नाबालिग है, उसके रुपये में तो हाथ नहीं लगाया जा सकता भैया।' वह बोला—'साल भी पूरा नहीं होने पावेगा माँ, अदा हो जायगा।' माँ ने कहा—'आशीर्वाद देती हूँ यही हो लेकिन नाबालिग की सम्पत्ति है, मालिक की आज्ञा नहीं है।'

'रोकर कल्याणी भैया के पैरों पर जा गिरी। बोली—'भैया, ब्याह कराया था तुम्हीं ने, आज बाल-बच्चे लेकर दर-दर भीख माँगती फिरूँगी, तुम अपने नेत्रों से देखोगे ? माँ देख सकती हैं, पर तुम ?' जहाँ उनका धर्म है, वहाँ उनका विवेक और वैराग्य है, वहाँ वह हम सबसे बड़े हैं, कल्याणी ने वहीं हृदय को स्पर्श किया। भैया अभय वचन देकर बोले—'तू घर जा बहिन, जो बन पड़ेगा मैं करूँगा।' उस अभय-मन्त्र का जाप करती हुई कल्याणी घर लौट गई। उसके बाद का इतिहास संक्षिप्त है वन्दना। लेकिन देखिए प्रातः हो गया।' यह कह खुली खिड़की की ओर उसने निगाह उठाई।

वन्दना ने खड़े होकर पूछा—'लेकिन आपके ये कागजात कैसे हैं ?'

द्विजदास ने कहा—'मेरे निर्भय रहने के दस्तावेज हैं। आते समय भैया साथ लाये थे। आप भी क्या हमें छोड़कर आज ही चली जायँगी ?'

'सही-सही नहीं जानती द्विजू बाबू। समय नहीं है, मैं चली। फिर भेंट होगी।' कह कर वह धीरे-धीरे बाहर निकल गई।

: २४ :

वन्दना मझली दीदी को जबरदस्ती एक कुर्सी पर बैठाकर उनके पैरों में महावर लगा रही थी। यह बात उसे सिखला कर अन्नदा ने स्वयं इसका भेद बता दिया है उसके नेत्र लाल हैं। अधिक आँसू बहने से पपनियाँ सूज आई हैं, वन्दना के प्रश्न के उत्तर में उसने थोड़े में कहा था—'बहू को मैं मुँह नहीं दिखा सकती।'

'तुम दिखा क्यों न सकोगी अनु बहिन, तुम्हें शर्म किस बात की है ?'

'मुझे शर्म इस बात की है कि मैं इसके पहले ही मर क्यों नहीं गई ? केवल द्विजू को ही बड़ा नहीं किया था, विपिन को भी किया था। उसकी माँ जब मर गई, किसके हाथों में दिया था अपने दो महीने के बच्चे को ? मेरे हाथों में। दयामयी कहाँ थी उस दिन ? उनके बेटी-दामाद कहाँ थे ?' बोलती हुई वह आँचल से मुँह ढककर शीघ्रता से कहीं चली गई। फर्श पर बैठ कर अपनी जाँघ पर बहिन के दोनों पैरों को रख वन्दना का महावर लगाना मानो समाप्त ही न होना चाहता है।

द्विजदास ने कहा—'बड़ी सुगमता से उसी शशधर की साजिश से। साहा चौधरी कम्पनी जिस दिन अचानक दिवालिया हुई, भैया का सब कुछ उसी में डूब गया। पर यह केवल बाहरी घटना है, जितना नेत्रों से दिखाई पड़ा। भीतर दूसरा इतिहास छिपा रहा।'

व्याकुल होकर वन्दना वे कहा—'इतिहास रहने दीजिए द्विजू बाबू, केवल घटनाओं की ही बातें कीजिए। बतलाइए सब कुछ डूब जाना सत्य है या नहीं ?'

'हाँ, सत्य है। इसमें कोई गलती नहीं।

'लेकिन मँझली बहिन ? बासु ? उनका कुछ भी शेष नहीं रह गया ?'

'नहीं। रह गई केवल भाभी के मयके की आमदनी। केवल थोड़े से रुपये।'

'लेकिन उसे तो मुखोपाध्याय जी लेंगे नहीं द्विजू बाबू !'

'नहीं। इससे उपवास पर भैया को अधिक विश्वास है। जितने दिन चलें।'

दोनों चुप रह गये। कुछ मिनट के बाद वन्दना ने पूछा—'किन्तु आप ? क्या हुआ आपका ?'

द्विजदास ने कहा—'बिलकुल निर्भय और निरापद हूँ। भैया स्वयं डूबे, पर मुझे उबार रखा। पानी का एक छींट तक शरीर में नहीं लगने दिया। कहेंगी, यह असम्भव सम्भव कैसे हुआ ? हुआ माँ की सुबुद्धि से, भैया की साधुता से और मेरे शुभग्रहों के फल से। बात यह है सुनिए—यह शशधर था भैया का बाल्यमित्र सहपाठी। दोनों में प्रेम की सीमा नहीं थी। बड़े होकर इसके साथ भैया ने कल्याणी का ब्याह कर दिया। यह अगुआई ही भैया के जीवन की अक्षय कीर्त्ति है। सुनाई पड़ा शशधर के बाप की बड़ी जमींदारी है, विशाल सम्पत्ति और विशाल व्यवसाय है। इतना बड़ा धनी पावना के इलाके में दूसरा नहीं। चार साल बीते अचानक एक दिन शशधर ने कहा कि जमींदारी, ऐश्वर्य व्यवसाय अतल तल में डूबने में देर नहीं, रक्षा करनी होगी। माँ ने कहा—'रक्षा करना ही उचित है, पर मेरा द्विजू नाबालिग है, उसके रुपये में तो हाथ नहीं लगाया जा सकता भैया।' वह बोला—'साल भी पूरा नहीं होने पावेगा माँ, अदा हो जायगा।' माँ ने कहा—'आशीर्वाद देती हूँ यही हो लेकिन नाबालिग की सम्पत्ति है, मालिक की आज्ञा नहीं है।'

'रोकर कल्याणी भैया के पैरों पर जा गिरी। बोली—'भैया, व्याह कराया था तुम्हीं ने, आज बाल-बच्चे लेकर दर-दर भीख माँगती फिरूँगी, तुम अपने नेत्रों से देखोगे ? माँ देख सकती हैं, पर तुम ?' जहाँ उनका धर्म है, वहाँ उनका विवेक और वैराग्य है, वहाँ वह हम सबसे बड़े हैं, कल्याणी ने वहीं हृदय को स्पर्श किया। भैया अभय वचन देकर बोले—'तू घर जा बहिन, जो बन पड़ेगा मैं करूँगा।' उस अभय-मन्त्र का जाप करती हुई कल्याणी घर लौट गई। उसके बाद का इतिहास संक्षिप्त है वन्दना। लेकिन देखिए प्रातः हो गया।' यह कह खुली खिड़की की ओर उसने निगाह उठाई।

वन्दना ने खड़े होकर पूछा—'लेकिन आपके ये कागजात कैसे हैं ?'

द्विजदास ने कहा—'मेरे निर्भय रहने के दस्तावेज हैं। आते समय भैया साथ लाये थे। आप भी क्या हमें छोड़कर आज ही चली जायँगी ?'

'सही-सही नहीं जानती द्विजू बाबू। समय नहीं है, मैं चली। फिर भेंट होगी।' कह कर वह धीरे-धीरे बाहर निकल गई।

: २४ :

वन्दना मझली दीदी को जबरदस्ती एक कुर्सी पर बैठाकर उनके पैरों में महावर लगा रही थी। यह बात उसे सिखला कर अन्नदा ने स्वयं इसका भेद बता दिया है उसके नेत्र लाल हैं। अधिक आँसू बहने से पपनियाँ सूज आई हैं, वन्दना के प्रश्न के उत्तर में उसने थोड़े में कहा था—'बहू को मैं मुँह नहीं दिखा सकती।'

'तुम दिखा क्यों न सकोगी अनु बहिन, तुम्हें शर्म किस बात की है ?'

'मुझे शर्म इस बात की है कि मैं इसके पहले ही मर क्यों नहीं गई ? केवल द्विजू को ही बड़ा नहीं किया था, विपिन को भी किया था। उसकी माँ जब मर गई, किसके हाथों में दिया था अपने दो महीने के बच्चे को ? मेरे हाथों में। दयामयी कहाँ थी उस दिन ? उनके बेटी-दामाद कहाँ थे ?' बोलती हुई वह आँचल से मुँह ढककर शीघ्रता से कहीं चली गई। फर्श पर बैठ कर अपनी जाँघ पर बहिन के दोनों पैरों को रख वन्दना का महावर लगाना मानो समाप्त ही न होना चाहता है।

एक गरम आँसू टपककर सती के पैर पर गिरा। झुककर भी वह बन्दना का मुख न देख सकी। लेकिन हाथ बढ़ाकर उसके नेत्र पोंछकर बोली—'वन्दना, तू क्यों रो रही है, बतला तो?'

वन्दना उसी प्रकार सिर नीचा किये हुए रुँधे गले से बोली—'सभी तो रो रहे हैं मझली दीदी। कुछ मैं ही अकेली नहीं रो रही हूँ।'

'सभी रो रहे हैं इसीलिए तुझे भी रोना चाहिए, इतना पढ़-लिखकर यही तेरा तर्क है?'

बहिन की बात सुनकर वन्दना ने पल भर के लिए सिर उठाकर देखा, बोली—'तर्क करके रोना नहीं होगा तो आदमी रोयेगा भी नहीं, तुम्हारा तर्क क्या यही है मझली दीदी?'

हाथ से उसका सिर हिलाकर प्रेम से सती ने कहा—'तर्क करने वाले से तर्क में पार नहीं पाया जा सकता। यह नहीं कहा है री, यह मैंने नहीं कहा है। उन्होंने समझा है कि मेरा शायद सच कुछ चला गया। इसीलिए वे रो रहे हैं, किन्तु सचमुच में यह बात नहीं है मेरे एक ओर पति हैं, दूसरी तरफ है लड़का संसार में मेरी कोई हानि नहीं है, मेरे लिए तू दुःख मत कर, मुझे दुःख नहीं है।'

वन्दना ने कहा—'दुःख तुम्हें हो भी मझली बहिन, लेकिन दुःख ही दुनिया में सब कुछ नहीं है। तुम्हारी कितनी हानि हुई, इसे तुम्हीं जानती हो, किन्तु रोते-रोते जिन्होंने नेत्र फोड़ डाले, उनकी हानि की पूर्ति कौन करेगा बतलाओ न?'

कुछ रुककर बोली—'मुखोपाध्याय जी पुरुष हैं, जो जी में आये कहें, किन्तु जाते समय आज सूखे नेत्रों विदा मता होना बहिन। वह उन्हें बहुत अखरेगा।'

'किन्हें अखरेगा वन्दना?'

'किन्हें? उन्हें तुम जानती नहीं हो, नौ वर्ष की थी तो इस पराये के घर में आई थी, उस घर को वर्षों में जिन्होंने तुम्हारा अपना बना दिया, उन्हें आज एक ही धक्के में भूल गई मझली बहिन तुम्हारी सास, तुम्हारे देवर, तुम्हारे घर के नौकर-चाकर, आश्रित परिजन, ठाकुरबाड़ी, अतिथिशाला, गुरु-पुरोहित इनकी कमी क्या केवल पति-पुत्र से पूरी हो जायगी? और कोई जीवन में नहीं है केवल ये ही हैं?'

वन्दना फिर कहने लगी—'यह किनके मुँह की बात है जानती हो मझली बहिन, जिनके बीच में मेरा लालन-पालन हुआ है। तुमने सोचा है पतिभक्ति की

यह अन्तिम बात है ? स्त्री के सोचने की कोई विशेष बात नहीं है ? यह तुम्हारी गलती है। कलकत्ते में मेरी मौसी के घर पर चलो, देखोगी वहाँ वह बात पुरानी हो गई है, इससे अधिक वे भी नहीं सोच सकती हैं, करती भी नहीं हैं। किन्तु ...।' कहकर बीच में वह रुक गई। सहसा उसे मालूम हुआ कि कोई पीछे खड़ा है, मुँह फेरकर देखा— द्विजदास है। कब धीरे से वह आकर खड़ा हो गया, दोनों में कोई जान भी न सका। लज्जित होकर वन्दना कुछ कहना चाहती थी, द्विजदास रोककर बोला—'डरो मत, मौसी को भी नहीं पहचानता, उनके दल के किसी को नहीं जानता, आपकी बातें उनसे कहूँगा। किन्तु आप भूल कर रही हैं। दुनिया में जन्तु-जानवरों का भी दल है, उनके आचरण को आज्ञाबद्ध किया जा सकता है, किन्तु आदमी का दल नहीं है। उनके विषय में कोई एक निर्णय नहीं किया जा सकना है। आज सवेरे से इसी बात को सोच रहा था। मौसी के दल से खींच लाकर अचानक ही भैया के दल में भर्ती किया जा सकता है, और फिर दयामयी के दल से लाकर सरलता से उस मैत्रेयी को आपकी मौसी के दल में भेजा जा सकता है। शर्त रखकर कह सकता हूँ कि कहीं रत्ती भर भी झगड़ा न होगा। वाह रे मनुष्य का मन ! वाह रे उसकी अनोखी आदत !'

सती विस्मय करके बोली—'इस बात का मतलब क्या ?'

द्विजदास कुछ अधिक अचरज प्रकट करके बोला—तुम्हें मतलब बतलाना पड़ेगा ? द्विजू के काम, द्विजू की बात का यदि मतलब ही होता तो भाभी ! इनके दिनों तक दयामयी-विप्रदास के दरबार में न जाकर तुम्हारे पास सारी प्रार्थना क्यों पेश करता ? मतलब समझने की परवाह तुम्हें नहीं है इसलिए तो ? आज जाने के दिन उतना ही रहने दो भाभी , गलती ही सही ये सूक्ष्म विचार रहने दो ।' यह कहकर सामने आकर उसके पैरों पर सिर रख कर प्रणाम किया। ऐसा वह करता नहीं है। पैरों के कच्चे महावर का रंग उसके माथे पर लग गया, सती व्यस्त होकर आँचल से पोंछने लगी, किन्तु उसने गर्दन हिला, सिर हटाकर कहा—'अपने आप ही यह दाग मिट जायेगा भाभी, एक दिन रहता है तो रहने दो। कुछ भी बात नहीं है। द्विजू ने हँसकर कहा, किन्तु वन्दना के नेत्रों में आँसू भर आये। छिपाने की चेष्टा में वह सिर ऊपर उठा न सकी ।

द्विजदास ने कहा—'मैं याद दिलाने आया था। समय हो रहा है, भैया व्यस्त हो गये हैं चीज भेज दी गई हैं। वासु को कपड़े पहनाकर गाड़ी में बैठा दिया है, मंगल-कर्त्ता का आयोजन किसने करा दिया, मालूम नहीं किन्तु वह भी पास मिल गया। मैं भयभीत था कि अनु बहन डूबकर मर गई होगी, सन्देह होता है कहीं जीवित हैं। वर्ना यह आया कहाँ से? पर जब उसका पता चलेगा तब उसकी आवश्यकता नहीं होगी। उधर दयामयी के कमरे की सिटकिनी बन्द है। मुसीबत से छुटकारा पाने का जो मार्ग उन्होंने अपनाया है, उसमें करने के लिए कुछ नहीं है। किन्तु श्रीमती मैत्रेयी को कह सकते हो, बात यथासमय माँ के कानों तक पहुँच जायेगी। पर मैं कहता हूँ इसकी आवश्यकता भी कुछ नहीं है। अब तुम तनिक तत्पर हो कर चलो, गाड़ी में बैठो तो भाभी, तुम्हें गाड़ी में चढ़ा आऊँ तो मुझे भी अवकाश मिले, अपना काम करूँ!'

सती फीकी हँसी हँसकर बोली—'मुझे विदा करने के लिए देवर को बहुत जल्दी है।'

'काम जो पड़ा हुआ है।'

'सुनूँ तो कौन-सा काम है?'

'इसके पहले तो कभी सुनना नहीं चाहा है भाभी। जब जो माँगा बिना पूछे ही सदा देती आई हो। यह तुम्हारे सुनने को क्या है?'

सती और वन्दना दोनों क्षणभर चुप होकर उसकी ओर देखती रहीं, फिर सती बोली—'तुम जाओ देवर, अब मुझे देर नहीं होगी।' वन्दना से सती बोली—'तू भी यहाँ देरी न करना बहिन, जितनी जल्दी हो सके बम्बई चली जाना। कलकत्ता जाने की आवश्यकता नहीं, स्मरण रहे काका वहाँ अकेले हैं।'

वन्दना ने द्विजू के समान पैरों पर सिर रखकर प्रणाम किया, पद-धूल लेकर माथे पर लगाई। बोली—'नहीं मझली बहिन, मौसी के घर अब नहीं जाऊँगी। वहाँ से पाठ समाप्त करके निकली थी, इसे कभी भूल नहीं सकती।' यह कहकर वह आँचल से आँसू पोंछकर बोली—'शायद कल ही बम्बई लौट जाऊँगी, किन्तु तुम भी जाने के पहले वचन दे जाओ मझली बहिन कि फिर हम शीघ्र ही तुम्हें देख सकें।

मन-ही-मन सती ने क्या आशीर्वाद दिया, यह वही जानती हैं। हाथ बढ़ा ठुड्डी पकड़कर चुम्बन किया, हँसकर बोली—''वह तो तेरे अपने ही हाथों में है

वन्दना। काका से कहना शादी का न्योता पाने पर, जहाँ भी रहूँ जाकर उपस्थित होऊँगी।' कुछ ठहर कर शायद मन में सोचा, कहना चाहिए नहीं, फिर बोली—'बड़ी इच्छा थी, तू इसी घर में आवेगी। देवर के हाथों सौंपकर तेरे हाथों में गृहस्थी का भार, वासू का भार, सब देकर माँ जी के साथ कैलाश का दर्शन करने जाऊँगी, लौट न सकी तो कोई बात नहीं, किन्तु आदमी सोचता कुछ और है और होता है कुछ और।' यह कहकर वह मौन हो गई। कुछ देर तक चुप रह फिर बोली—'इस घर में मैंने जो कुछ पाया था, वह संसार में किसी को नहीं मिलता है और फिर सब से अधिक पाया था अपनी सास को लेकिन सबसे अधिक बिलगाव उन्हीं से हुआ। जाने के पहले प्रणाम भी न कर सकी। द्वार बन्द है।' चौखट की धूलि मस्तक पर लगाकर बोली—'माँ, इस लकड़ी पर तुम्हारे पैरों की धूलि लगी है, यह मेरा···।' बात समाप्त नहीं कर सकी, गला रुंध गया, वह बेचैन हो उठी, उसके दोनों नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली। दो-तीन मिनट सँभालने में लगे, आँचल से आँखें पोंछकर बोली—'अब अनु बहिन नहीं मिली। वह मेरी माँ से भी बड़ी है वन्दना। हम चले जायं तो उनसे कहना कि मैं अप्रसन्न हो गई हूँ।' फिर नेत्रों में पानी भर आया, फिर आँचल से उन्हें पोंछा। निमु नाम की एक बिल्ली पाली थी। काम-काज के घर में वह कहाँ गई है पता नहीं। सवेरे से वह कई बार याद आई। बोली—'निमु कहाँ छिपी है, देखकर नहीं जा सकी। अनु बहिन से कहना तो वन्दना।' यद्यपि थोड़ी देर पहले दावे के साथ कहा था कि उसके एक ओर हैं पति और दूरी ओर सन्तान, संसार में उसकी कोई भी हानि नहीं हुई है। बात कितनी झूठ प्रतीत होती है।

'क्या कर रही हो भाभी ?' बाहर से द्विजदास ने फिर आवाज लगाई।

'आती हूँ भाई !' कहकर सती शीघ्रता से निकल गई।

× × ×

द्विजदास जब अकेला स्टेशन से लौटा तब शाम बीत चुकी थी। घर-घर में उसी प्रकार दीपक जले हैं, उसी प्रकार अपने कामों में लीन है, इस विशाल परिवार में कहाँ क्या उथल-पुथल हो गया है, कोई भी नहीं [illegible]। बाहर के खण्ड में ऊपर विप्रदास के बैठकखाने की खिड़की बन्द [illegible] है।

ऐसा कितने ही दिन दीपक नहीं जलता है, विप्रदास कलकत्ता रहते हैं, कोई अनहोनी बात नहीं है. सीढ़ी के बगल वाले कमरे में रहता है अशोक, खिड़की से दिखाई पड़ा आराम कुर्सी पर पैर फैलाकर प्रकाश में दत्तचित होकर कोई पुस्तक पढ़ रहा है। कॉलेज नागा करके अक्षय बाबू आज भी उपस्थित हैं, उनका घर है एक छोर पर, वह घर में हैं या हवा खाने बाहर निकल गये हैं, यह मालूम नहीं हुआ। मोटर से आँगन में पैर रखते ही द्विजदास की दृष्टि दोतल्ले की पुस्तकालय के कमरे पर पड़ी। शाम के बाद इस कमरे में प्राय: अँधेरा रहता है, किन्तु आज खुली खिड़की से प्रकाश आ रहा है। उसे सन्देह नहीं रहा कि वहाँ वन्दना है। पुस्तक पढ़ने नहीं, आँसू बहाने के लिए। लोगों से पिण्ड छुड़ाने के लिए, उसने इस सुनसान कमरे में आश्रय लिया है। आज की रात किसी प्रकार काटकर वह भी कल सुदूर बम्बई चली जायगी, जहाँ वह इतनी बड़ी हुई, जहाँ हैं उसके आत्मीय-स्वजन, उसके कितने ही पुराने सखा और सहेली। कभी किसी भी बहाने इस देहात में उसका आना सम्भव है यह सोचा भी नहीं जा सकता है। आने पर इस घर को वह सुगमता से भूलेगी नहीं। यह संसार विचित्र है, कितनी अचिन्तनीय बातें क्षण भर में हो जाती हैं। एक-एक करके उस पहले दिन से आज तक की सभी बातें याद आईं। वह अचानक आना और अचानक अप्रसन्न होकर चला जाना। बीच में केवल कुछ घण्टों की बातचीत। उस दिन वन्दना ने सहास्य कहा था 'केवल आंखों देखा परिचय नहीं हैं द्विजू बाबू, वर्ना देवर का गुणगान लिख भेजने में मझली बहिन ने कुछ शेष नहीं रखा है। मैं सब कुछ जानती हूँ, आपके विषय में कोई भी बात मेरी अनजान नहीं है। जब कभी घर भर के लोगों को जितना परेशान किया है, उसकी सारी सूचनायें मेरे पास पहुँची हैं।' द्विजदास ने पूछा था—'हम एक दूसरे को पहचानते नहीं, फिर भी आपके सामने मुझे बदनाम करने की कौन-सी सार्थकता थी ?' वन्दना ने हँसकर उत्तर दिया था—'शायद वास्तव में मझली बहिन आपको देख नहीं सकती थीं, यह उसी का बदला है।'

इसके बाद दोनों ने हँसकर बात को हँसी में बदल दिया था; किन्तु उस दिन दोनों में किसी ने नहीं सोचा था कि यह था सती का वन्दना के प्रति द्विजू के मन में आकर्षण की चतुरता। यदि बहिन कभी करीब आई, यदि

कभी उसके हाथों अशान्त देवर को किया जा सके, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। उसकी छिपी भावना छिपी ही रह गई। आज भी दोनों में कोई भी उन पत्रों का अर्थ न लगा सका।

द्विजदास एकदम ऊपर चला गया। पर्दा हटाकर भीतर घुसकर देखा वन्दना की गोद में पुस्तक खुली है, किन्तु वह खिड़की के बाहर एकटक देख रही है। एक लाइन भी पढ़ी है कि नहीं, इसमें सन्देह है, जानते हुए भी उसने बातचीत शुरू करने के लिए ही प्रश्न किया—'कौन-सी पुस्तक पढ़ रही थीं ?'

वन्दना ने पुस्तक बन्द करके मेज पर रखी और उठ खड़ी होकर बोली—'आपको लौटने में इतनी क्यों देर हो गई ? कलकत्ते की गाड़ी तो कब की चली गई !'

द्विजदास बोला—'देर भले ही हो, लौट तो आया हूँ। यदि न भी आ सकता था तो !'

वन्दना ने कहा—'बड़ी प्रसन्नता से।'

द्विजदास क्षण भर चुप रहकर बोला—'ठीक यही बात पहले मुझे स्मरण हुई थी। गाड़ी चल दी, खिड़की से गर्दन बढ़ाकर बासु खड़ा हाथ हिलाने लगा, धीरे-धीरे उसके नन्हे हाथ मोड़ के पीछे छिप गये। पहले मन में आया संग चला जाना ही तो ठीक होता···।'

वन्दना ने कहा—'आप बासु को बहुत प्रेम करते हैं न ?'

द्विजदास कुछ सोचकर बोला—'देखिए, उत्तर क्या दूं, इन चीजों का शायद मैं स्वरूप ही नहीं जानता। स्वभाव इतना रूखा है, इतना नीरस है कि पल भर में सब कुछ हवा होकर केवल सूखी बालू पहले की भाँति धू धू करने लगती है। प्लेटफार्म पर खड़ा था, एक बार नेत्रों में आँसू भर कर आये किन्तु फिर उसी समय अपने आप सूख गये, कहीं कुछ भी न रहा।'

वन्दना ने कहा—यह भी एक प्रकार से भगवान् का आशीर्वाद है !'

दिजदास कहने लगा—'क्या जानूँ, किन्तु इसी बासु के भय से माँ ने कल से घर का द्वार बन्द कर रखा है। वर्ना भैया के लिए भी नहीं और भाभी के लिए भी नहीं। माँ सोचती हैं कि बासु का उन्होंने लालन-पालन किया है, किन्तु हिसाब लगा कर देखें तो उसकी आयु का आधा तो उन्होंने तीर्थ-यात्रा में व्यतीत किया है। तब वह रहता कहाँ था ? मेरे पास टाय-फायड बुखार में

सारी रात कौन जागा ? मैं । आज जाते के समय किसने सजाया ? मैंने । मेरी आलमारी में उसके कपड़े रहते हैं, उसकी पुस्तक-स्लेट मेरी मेज पर रहती है, बिस्तर मेरी खाट पर है । माँ घसीट कर ले जाती हैं, लेकिन कितनी ही बार नींद खुलने पर वह मेरे कमरे में भाग कर आ जाता है ।'

वन्दना एकटक दृष्टि से देख रही थी, बोली—'फिर भी नेत्रों के आँसू सूखने में तो पल भर से अधिक देर नहीं लगती ।'

द्विजदास ने कहा—'हाँ, मेरा स्वभाव भी यही है । उसके लिए मुझे यही चिन्ता है कि वह अपने माँ-बाप के पास जा पड़ा । आप कहेंगी, संसार में यही स्वाभाविक है, इसमें भय की कौन-सी बात है ? किन्तु स्वाभाविक होने के कारण ही भय यह है कि इतनी बड़ी उल्टी बात मैं लोगों को कैसे समझाऊँगा ?'

वन्दना ने यह नहीं कहा कि समझाने की कौन-सी आवश्यकता पड़ी है, दूसरी ओर माँ-बाप के विरुद्ध इतने बड़े कसूर पर यकीन कर लेना भी उसके लिए कठिन है, मुख्यकर विप्रदास के विरुद्ध । लेकिन कोई तर्क न करके वह चुप ही रहा ।

दूसरे क्षण बात स्पष्ट करने के लिए द्विजदास स्वयं बोला—'धीरज की बात है कि भाभी पास ही हैं, वर्ना भैया के हाथों सौंपकर मुझे रत्ती भर भी शान्ति न मिलती ।'

वन्दना ने कहा—'आप तो निर्विकार हैं, बासु की भलाई-बुराई के लिए आपका सिर क्यों इतना दर्द कर रहा है ? जो हो, होने दो ।'

यह सुनकर द्विजदास के मुख पर गहरे दुःख की रेखा दिखाई पड़ी, पर वह चुप रहा ।

वन्दना ने कहा—'भैया के लिए गहरे विश्वास और श्रद्धा की बात एक दिन आप के मुख से सुनी थी । वह भी क्या आँसू के समान पल भर में ही नष्ट हो गई ! या जो आदमी अपनी भूल से सर्वस्वान्त होता है, क्या उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है, यही कहना चाहते हैं न ?'

द्विजदास आश्चर्य और दुःख से अभिभूत नेत्रों से पल भर उसकी ओर देखता रहा, फिर दोनों हाथों को मिलाकर माथा छूकर धीरे-धीरे बोला—

'नहीं, यह मैंने नहीं कहा है । मैं कह रहा था कि प्यास बुझाने के लिए आदमी को समुद्र के सामने हाथ नहीं फैलाना चाहिए। लेकिन भैया के विषय में अब तर्क नहीं । बाहर के लोग उसे समझेंगे नहीं ।'

इस बात से वन्दना के दिल को अधिक चोट पहुँची, किन्तु प्रतिवाद करने के लिए कुछ न मिलने के कारण वह मौन हो गई ।

अब द्विजदास ने दूसरी बात छेड़कर, पूछा—'क्या आप कल ही बम्बई जाओगी ?'

वन्दना ने कहा—'हाँ ।'

'अशोक बाबू के ही साथ जाओगी ?'

'हाँ, उन्हें ही ले जाऊँगी !'

द्विजदास बोला—'बम्बई मेल यहाँ से बहुत रात को जाती है, कल आप लोगों को स्टेशन पर पहुँचा आऊँगा। किन्तु दिन को न जा सकूँगा। कुछ काम है ।'

'एक तार पिता जी को भेज देंगे ।'

'ठीक है ।'

दो मिनट बिलकुल मौन रहकर द्विजदास ने कहा—'एक बात आप से प्रायः पूछने की सोचता हूँ लेकिन अनेक कारणों से दिन बीतते जा रहे हैं, पूछ नहीं पाता हूँ ! कल चली जाओगी, अब अवसर न मिलेगा। यदि आप अप्रसन्न न हों तो पूछूँ ?'

'पूछिए ।'

देर होने लगी ।

वन्दना ने कहा—'अप्रसन्न न होऊँगी, आप निर्भय होकर कहिए ।'

द्विजदास ने कहा—'कलकत्ते के घर से माँ एक दिन अप्रसन्न होकर भाभी को लेकर अचानक चली आईं, आपको याद है ?'

'हाँ, याद है ।'

'बिला कारण जाने आपको आश्चर्य हुआ। चित्त अच्छा नहीं था, मेरे कमरे में आकर उस दिन कहा था कि आपको अच्छी लगती हूँ । स्मरण है ?'

'है, किन्तु बहुत लज्जा के साथ ।'

'उस बात का कोई मूल्य नहीं है ?'

'नहीं।'

द्विजदास पल भर चुप रहकर बोला—'मैं भी यही सोचता हूँ कि उसका कोई मूल्य नहीं है।'

थोड़ी देर के बाद बोला—'भाभी ने कहा था कि आपकी मौसी की साध है कि अशोक से आपकी शादी हो। क्या यह निश्चित हो गया है?'

वन्दना ने कहा—'यह हमारे परिवार की बात है। बाहर वालों के सामने यह आलोचना नहीं हो सकती।'

द्विजदास बोला—'आलोचना तो नहीं, केवल एक बात ही तो पूछ रहा था।'

कड़ुए स्वर में वन्दना ने कहा—'आपसे ऐसा कोई निकट का सम्बन्ध नहीं है कि आप यह प्रश्न करें। द्विजू बाबू, आप शिक्षित पुरुष हैं, आपका यह कौतूहल लज्जाजनक है।' सुनकर द्विजदास सचमुच ही लज्जित हुआ, उसका मुख पीला पड़ गया। बोला—'मुझ से भूल हो गई है वन्दना! स्वभावतः मैं कौतूहली नहीं हूं, पराये की बात सुनने का लोभ भी मुझे बहुत ही कम है। किन्तु कैसे, नहीं जानता, मुझे लगता था कि संसार में जिसको किसी से नहीं कह सकता, आपसे कह सकता हूँ। जिस विपद में किसी को पुकारा नहीं जा सकता है, उसमें आपको पुकारा जा सकता है। आप···।'

उसकी बात के बीच ही में वन्दना ने हँसकर कहा—'किन्तु अभी कह रहे थे कि भइया के विषय में बातचीत बाहर के लोगों के सामने आप नहीं करना चाहते हैं। मैं तो गैर हूं, बिलकुल परायी।'

द्विजदास ने कहा—'यदि यही तो फिर आपने ही क्यों उनके विषय में ताना दिया? जानती नहीं मुझे क्या हो रहा है?' दीपक के प्रकाश में स्पष्ट ही दीख पड़ा कि उसके नेत्रों के कोने डबडबा आये हैं।

अचानक इसी समय मैत्रेयी ने कमरे में प्रवेश किया। बोली—'द्विजू बाबू, हममें से तो कोई जान भी नहीं सका कि आप कब घर आये।'

द्विजदास ने उसकी ओर मुँह फेर कर कहा—'जानने की क्या कोई विशेष आवश्यकता पड़ गई थी?'

मैत्रेयी ने कहा—'ठीक बात कह रहे हैं। कल आपने खाया नहीं, आज भी नहीं, यह और कोई न जाने लेकिन मैं तो जानती हूँ। माँ के कमरे में चलिए।'

'लेकिन माँ का कमरा तो बन्द है।'

मैत्रेयी ने कहा—'बन्द ही था लेकिन मैंने खुलवाकर ही छोड़ा। सिर धुनकर किवाड़ खुलवाये हैं, उन्हें स्नान कराया है, बरबस दो-चार फल पेट में डालकर तब छोड़ा है। कह रही थीं—'द्विजू न खायगा तो न खायँगी। बोली—'यह नहीं हो सकता माँ, आपके इस आदेश को मैं मान नहीं सकूँगी किन्तु तभी से हम सभी आपकी बाट देख रहे हैं। चलिए, आपका भोजन माँ के कमरे में रख दिया गया है।'

द्विजदास चुप हो गया। इसके पहले उसने इतनी बातें नहीं सुनी थीं। कहा—'चलिए !'

मैत्रेयी ने वन्दना के उद्देश्य से कहा—'आप भी चलिए। आपको माँ बुला रही हैं !' यह कहकर द्विजदास को एक ओर से पकड़ कर ले गई। वन्दना सबसे पीछे गई।

दयामयी अपने कमरे में बिस्तर पर पड़ी हुई थी। धीमी रोशनी में उनके शोकाच्छन्न मुख की ओर देखकर दुःख होता था। सूजे हुए दोनों नेत्र लाल हैं, सद्य स्नात आर्द्र केश इधर-उधर बिखरे हुए हैं। कल्याणी सिरहाने बैठी सिर दबा रही थी, दूसरी ओर एक कुर्सी पर शशधर था, दूर एक दूसरी कुर्सी पर अक्षय बाबू बैठे हुए थे। द्विजदास के कमरे में प्रवेश ही करते दयामयी ने मुंह फेर लिया और दूसरे ही क्षण एक अस्फुट अवरुद्ध क्रन्दन से उनकी सारी देह काँप उठी। वन्दना चुपचाप धीरे-धीरे जाकर उनके पैरों के पास बैठी, इतने बड़े दुःख के दृश्य की कदाचित् यह कभी कल्पना भी नहीं कर सकती थी। बहुत देर तक सभी चुप रहे, इस चुप्पी को भंग करके पहले शशधर बोला—'सुना है कल से कुछ खाया नहीं है, जो हो कुछ मुंह में तो डाल लो।'

द्विजदास ने कहा—'हाँ।'

फर्श पर आसन तैयार करके मैत्रेयी सावधानी से भोजन लगा रही थी, उसी ओर देखकर शशधर बोला—'तुम्हें लौटने में बहुत देर हो गई ! वे तो तभी अढ़ाई बजे की गाड़ी से चले गये।'

'अच्छा।'

शशधर ने बनावटी हँसी हँस कर कहा—'लेकिन सुना है कि कलकत्ते का घर तो तुम्हारा है।'

द्विजदास ने कहा—'मेरे घर में क्या भैया का आना मना है ?'

शशधर ने कहा—'है तो नहीं। लेकिन वह यही भाव दिखा गये हैं। इस घर को छोड़ कर जाने की भी तो उन्हें आवश्यकता नहीं थी, समझौता कर लेने से तो झंझट मिट जाता।'

द्विजदास ने कहा—'समझौते का द्वार खुला हुआ था तो आपने क्यों नहीं कर लिया ?'

'मैं समझौता करूँ ?' शशधर बहुत आश्चर्य प्रकट करके बोला—'यह ...सा प्रस्ताव है!' मेरा उन्होंने अपमान किया और मैं समझौता करूँ ? ...ील बुरी नहीं दी हैं!' यह कहकर वह ठठाकर हंसने लगा। हंसी रुकने पर ...जदास ने कहा—'दलील बुरी नहीं दी है शशधर बाबू! स्त्रियाँ बातों में ...हा करती हैं कि पहाड़ की आड़ में रहना। भैया वही पहाड़ थे और आप ...हीं की आड़ में थे। अब आमने-सामने खड़े हुए हैं—आप और हम। मान ...पमान की बात समाप्त तो नहीं हो गई, अभी तो केवल श्री गणेश ही हुआ ।'

'इसका क्या मतलब ?'

'इसका मतलब यह है कि मैं आपका बचपन का मित्र विप्रदास नहीं हूँ, द्विजदास हूँ!'

शशधर की हँसी धीरे-धीरे लुप्त हुई, बड़े गम्भीर स्वर में प्रश्न किया—...म्हारे कहने का मतलब क्या है, तनिक स्पष्ट करो न ?'

भैया का मित्र होने के कारण शशधर के 'तुम' कहने पर भी द्विजदास उसे ...ाप' कहकर ही सम्बोधन करता था। बोला—'आपकी इस बात को मानता ...कि मतलब आज स्पष्ट हो जाना ही ठीक है। मेरे भैया उस प्रकार के ...दमी हैं जो सचाई के लिए सर्वस्वान्त हो जाते हैं, आश्रितों के लिए देह का ...स भी दे देते हैं, उनमें आदर्श नामक कोई विचित्र वस्तु है जिसके लिए ...ी कोई बात नहीं है जो करने के लिए प्रस्तुत न हों, वे एक प्रकार के पागल इसलिए यह दुर्दशा हुई है। किन्तु मैं एकदम साधारण आदमी हूँ, आप से ...ई विशेष अन्तर नहीं है। एकदम आप ही की भाँति मुझमें भी ईर्ष्या है, ...ग है, बदला लेने की कुटिल बुद्धि है। इसलिए भैया को ठगा है तो आपको भी ...ूँगा, उनके नाम की जालसाजी की होगी तो प्रसन्नता से आपको कारागार

की हवा खिलाऊँगा, कम से कम प्रयत्न में कोई कमी न होगी, जब तक हम दोनों आदमी एक दिन मार्ग के दर-दर के भिखारी नहीं बन जाते हैं। बूढ़ों से सुना है कि इसका फल ऐसा ही होता है। ऐसा ही हो।'

शशधर कड़क कर बोला उठा—'सुन रही हो न माँ द्विजू की बातें? उनके मुंह में जो कुछ भी आता है बोलने के लिए उसे रोकिए!'

द्विजदास ने कहा—'माँ से फरियाद करने से कोई लाभ नहीं शशधर बाबू। वह जानती हैं कि मैं विपिन नहीं हूँ, मातृवाक्य द्विजू के लिए वेद-वाक्य नहीं हैं, द्विजू ताल ठोककर स्पर्द्धा का अभिनय नहीं करता है, इस बात को माँ जानती हैं।'

किसी के मुँह में आवाज नहीं, सहसा दोनों का यह वाद विवाद मानो सम्पूर्ण रूप से एक युद्ध है। विस्मय और भय से सभी चुप हो गये थे। शशधर समझ गया कि वह हँसी नहीं कठोर संकल्प है। उत्तर देने में उसके कण्ठ-स्वर में पहले का सा जोर नहीं था, फिर भी दावे के साथ बोल उठा—'यह अंतिम है। अब मैं यहाँ पानी तक न छुऊँगा।'

द्विजदास ने कहा—'इतनी देर तक यहाँ कैसे रहे, यही आश्चर्य की बात है शशधर बाबू।'

कल्याणी ने रोकर कहा—'छोटे भइया, आखिर में क्या तुम्हीं हमें मारना चाहते हो? सगे भाई हो, तुम्हीं हमारा सर्वनाश करोगे?'

द्विजदास ने कहा—'तू समझती है कि बार-बार आँसू बहकर सर्वनाश के हाथ से छुटकारा पाया जा सकता है? कहीं न्याय नहीं होगा, तुम्हीं लोगों की बार-बार विजय होगी? सही है कि भइया नहीं हैं, फिर जब खाने को न मिले तो मेरे पास आना, तब तेरा रोना सुनूँगा, इस समय नहीं।'

दयामयी ने चुपचास बहुत सहन किया था, अब नहीं रहा गया, चिल्लाकर कहा—'तू जा यहाँ से द्विजू। इसी प्रकार गाली-गलौज करने के लिए क्या विपिन तुझे सिखा गया है?'

'कौन सिखा गया, कह रही हो? विपिन?'

'हाँ, वही तो। अवश्य वही।'

क्षण भर में द्विजदास के ओठ सिकुड़ गये, बोला—'मैं जा रहा हूँ

माँ, अपने को बहुत छोटा किया है, अब अधिक छोटा मत करो।' यह कहकर वह कमरे से बाहर चल दिया।

द्विजदास अपने कमरे में आकर चुप बैठा था, दो-एक घण्टे के बाद मैत्रेयी कमरे में आई। हाथ में थाली थी, बोली—'फिर से भोजन बना कर लाई हूँ, यहीं आसन बिछा दूं, भोजन करिये।'

'यह किसने कह दिया आपसे?'

'किसी ने नहीं। आपने कल से खाया नहीं है यह क्या मैं जानती नहीं।'

'इतने आदमियों में आपको जानने की आवश्यकता?'

मैत्रेयी सिर नीचा किये मौन हो खड़ी रही। उत्तर न पाकर द्विजदास बोला—'अच्छा, वहाँ रख जाइये। अभी भूख नहीं है, होगी तो थोड़ी देर में खा लूंगा।'

मैत्रेयी ने कमरे के एक ओर आसन बिछाया, भोजन को रखकर बड़ी सावधानी से सब कुछ ढाँककर चल दी। आग्रह नहीं किया, बोली नहीं कि ठण्डा हो जाने पर खाने में असुविधा होगी।

रात्रि के शायद तब बारह बज गये हैं, द्विजदास कुर्सी पर से उठा।

थोड़ा सा खाकर सो रहेगा सोचकर हाथ-मुंह धोने के लिए बाहर आकर देखा द्वार के बाहर कोई बैठा है। बरामदे के धुंधले प्रकाश में नहीं पहचान कर पूछा—कौन है?

'मैं हूँ मैत्रेयी।'

द्विजदास के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, बोला—इतनी रात को यहाँ कैसे आई?

'भोजन करते समय शायद किसी चीज की आवश्यकता पड़े इसीलिए बैठी हूँ।'

'यह बड़ा अन्याय है आपका। पहली बात है कि आवश्यकता नहीं है, और यदि पड़ी भी तो क्या और कोई है नहीं?'

मैत्रेयी ने धीरे से कहा—कई दिनों के निरन्तर परिश्रम से सभी थके हैं। कोई जगा नहीं है, सभी सो रहे हैं।

द्विजदास ने कहा—आपने स्वयं भी कम परिश्रम नहीं किया है, तो क्यों नहीं सोई?

मैत्रेयी ने उत्तर नहीं दिया, मौन हो बैठी रही।

द्विजदास का रूखा स्वर अब बहुत कुछ मन्द पड़ गया, बोला—तुम्हारा इस प्रकार बैठा रहना बुरा दीखेगा। आप भीतर आकर बैठिए, जब तक खाता हूँ देखिए। यह कह हाथ-मुँह धोने के लिए जल वाले कमरे में चला गया।

इसके पहले मैत्रेयी से द्विजदास ने बहुत कम बातचीत की थी। आवश्यकता नहीं थी, इच्छा भी नहीं थी। अब बातचीत कैसे शुरू करेगा, सोचते हुए लौटकर उसने देखा कि न तो भोजन है और न मैत्रेयी ही! इसी बीच में क्या हो गया अनुमान करने के पहले ही वह वापस आकर खड़ी हुई, बोली—'ढक्कन खोलकर देखा सब सूख गया है इसीलिए फिर लाने चली गई बैठिए न।'

दिजदास ने कहा—'देखता हूँ, भाप निकल रही है इतनी रात को ये कहाँ मिलीं?'

मैत्रेयी ने कहा—'ठीक से ढककर रख आई थी। जब कहा कि भोजन में देर होगी, तभी, जानती थी कि इन सब चीजों को नहीं रखा तो खा न सकेंगे।'

दिजदास ने भोजन करने से पहले रसोई घर की निपुणता की प्रशंसा की और मालूम किया कि इसमें कई चीजें मैत्रेयी ने स्वयं अपने हाथ से बनाई हैं। बार-बार आग्रह करके उसने द्विजदास को अधिक खिलाया। इस विद्या में वह चतुर है, भोजन खिलाना वह जानती है।

हंसकर दिजदास ने कहा—'अधिक खाने से बीमार पड़ जाऊंगा।'

'नहीं, पड़ेंगे नहीं। कल से भूखे हैं, इसे अधिक खाना नहीं कहते हैं।'

'किन्तु केवल मैं अकेला ही तो बिना खाये नहीं हूँ, इस घर में शायद बहुत से हैं।'

मैत्रेयी ने कहा—'बहुतेरों की बात नहीं मालुम, लेकिन माँ को थोड़ा-सा कैसे खिलाया है यह मैं ही जानती हूँ। मैं न होती तो न जाने बन्द किये कब तक वह व्रत करतीं, सोचने पर डर लगता है लेकिन मुझे 'आप' न कहें, सुन कर शर्म आती है। कितनी छोटी हूँ मैं।'

द्विजदास ने कहा—'अच्छी बात है, अब 'आप' नहीं कहूँगा। किन्तु अन्नदा बहिन का। पता लगाया था?'

मैत्रेयी ने कहा—'उसे हुआ क्या वह भी बिना खाये

अब तक मैत्रेयी की बातें उसे अच्छी लग रही थी, प्रसन्नता की हवा का एक झोंका इस दुःख के बीच भी मानो उसके मन को छू जाता था, किन्तु इस आखिरी बात से उनका मन क्षण भर में बिगड़ गया। बोला—'अनु बहिन के विषय में इस तरह से बातें नहीं करनी चाहिएँ। शायद सुना होगा कि वह हमारी दासी है, किन्तु इस घर में उससे बढ़कर मेरा अपना कोई है नहीं। उसने हमें मनुष्य बनाया है।'

मैत्रेयी ने कहा—'यह सुना है। किन्तु कितने ही घरों में तो नौकर-नौकरानियाँ बाल-बच्चों को पाल-पोसकर बड़ा करती हैं। इसमें कौन-सी मुख्य बात है? अच्छा, आपका भोजन समाप्त हो जाय तो उसका पता लगाऊँगी?'

द्विजदास मौन हो पल भर उसकी ओर देखता रहा। अचानक मन में आया, ठीक ही तो है, ऐसा तो बहुतेरे परिवारों में हुआ ही करता है, जो अन्दर की बात नहीं जानता उसके लिए केवल बाहर की बात में आश्चर्य की इसमें कौन सी चीज है? कठोर विचार हल्का हो गया, बोला—'अनु बहिन ने नहीं खाया होगा तो अब इतनी रात को नहीं खायेंगी। उनके लिए आज व्यस्त होने की आवश्यता नहीं।'

फिर कई मिनट चुपचाप बीत जाने पर द्विजदास ने पूछा—'मैत्रेयी पराये की ऐसी सेवा करना तुमने सीखा किससे? क्या अपनी माँ से?'

मैत्रेयी ने कहा—'नहीं, अपनी बहिन से। उनके समान पति की सेवा करते मैंने किसी को देखा नहीं।'

हँसकर द्विजदास बोला—'पति क्या पराया है? मैंने पराये की सेवा की बात पूछी थी।'

'अच्छा, पराया?' कहकर मैत्रेयी ने हँसकर सिर नीचा कर लिया।

द्विजदास बोला—'अच्छा, तो अपनी बहिस की बात बतलाओ।'

मैत्रेयी बोली—'बहिन तो जीवित नहीं हैं। तीन वर्ष हुए एक पुत्र और दो कन्याएँ छोड़कर मर गईं। पर चौधरी जी ने एक वर्ष भी संतोष नहीं किया, पुनः शादी कर ली। बतलाइए तो कितना घोर अन्याय है?'

द्विजदास बोला—'पुरुष तो यही करते हैं। न्याय अन्याय वे नहीं मानते।'

'क्या आप भी ऐसा ही करेंगे?'

'पहले एक तो करूँ फिर दूसरे की बात पर विचार करूँगा।'

मैत्रेयी ने कहा—'ऐसा कहने से तो काम न चलेगा। तब आपकी भाभी थीं, लेकिन अब कोई है नहीं। कौन देखेगा माँ को?'

द्विजदास ने कहा—'कौन देखेगा, नहीं जानता मैत्रेयी, शायद बेटी-दामाद देखेंगे, या और कोई आकर उनका भार सँभालेगा, संसार में कितनी असम्भव बातें सम्भव हैं, कोई बतला नहीं सकता। हमारी बातें जाने दो, अपनी बात कहो।'

'किन्तु अपनी बात तो कुछ भी नहीं है।'

'कुछ भी नहीं है? एक दम ही कुछ भी नहीं?'

पहले तो मैत्रेयी कुछ सकपका गई, फिर कुछ हँसकर बोली—'अच्छा मैं जान गई। क्या आपने चौधरी की बात किसी से सुनी है! छि:! छि:! कैसा बेशर्म आदमी है, बहिन के मरने के बाद कहला भेजा, मुझसे शादी करेगा!'

'उसके बाद?'

मैत्रेयी ने कहा—'चौधरी के पास बहुत धन है, माँ-बाप सहमत हो गए, बोले—'और कुछ न सही लीला के बच्चे आदमी तो बन जायंगे।' मानो दुनिया में बहिन के बच्चों का लालन-पालन के अतिरिक्त मुझे और कोई काम है नहीं—'यदि यह बात तुम लोग मुख पर लाये तो मैं आत्महत्या कर लूँगी!'

'इतनी आपत्ति तुम्हें किसलिये थी?'

'क्या आपत्ति न होगी? संसार में इससे बढ़कर दुःख और कुछ है क्या?'

द्विजदास ने कहा—'तुम्हारी यह बात सत्य नहीं है। संसार में सभी स्थानों पर दुःख नहीं होता है मैत्रेयी। मेरी माँ ने ही भैया को आदमी बनाया था।'

मैत्रेयी ने कहा—'लेकिन अन्त में उसका परिणाम क्या निकला?' आज जैसा दुःखद काण्ड इस घर में कभी हुआ था क्या?'

द्विजदास चुप रह गया। इसकी बात असत्य नहीं है, किन्तु सत्य भी बिल्कुल नहीं है। दो-तीन मिनट अभिभूत के समान बैठा रहा, अचानक मानो उसे चेत हुआ, बोला—'प्रतिवाद मैं नहीं करूँगा। इस घराने में महादुःख सचमुच ही आया है, फिर भी जानता हूँ कि तुम्हारी ये बातें साधारण लड़-

कियों के अतितुच्छ सांसारिक हिसाब किताब से बड़ी हैं नहीं।' इतना कहकर ही उठ खड़ा हुआ, उसने भोजन कर लिया था।

अगले दिन दोपहर तक वह घर पर नहीं था, किस काम से कहाँ गया था, वही जानता है। शाम के अँधेरे में चुपचाप घर लौटकर सीधे वन्दना के कमरे के सामने जाकर पुकारा—'अन्दर आ सकता हूँ ?'

'कौन द्विज बाबू ? आइये न।'

द्विजदास ने भीतर जाकर देखा कि वन्दना ने बक्स में चीजें सँभालकर जाने का प्रबन्ध लगभग पूरा कर लिया है। बोला—'तो सचमुच ही जा रही हो ? क्या एक दिन भी नहीं रोका जा सकता ?'

उसके मुख की ओर देखकर वन्दना को बोलने की इच्छा नहीं हुई, पर बोलना ही पड़ा—'जाना तो पड़ेगा ही, एक दिन और रहने से आपका क्या लाभ है ? बोलिये न ?'

द्विजदास ने कहा—'लाभ की बात तो नहीं सोची है, सोचता हूँ सभी गये, इतने बड़े घर में अब मित्र कोई नहीं रहा।'

वन्दना ने कहा—'पुराने मित्र चले जाते हैं, नये आते हैं, संसार ऐसा ही है द्विजू बाबू। उसी आशा में संतोष रखना पड़ता है, चंचल होने से काम चलता नहीं।'

द्विजदास उत्तर न देकर चुप रहा।

वन्दना ने कहा—'अधिक समय नहीं है, काम की दो-चार बातें कर लूँ। शायद सुना होगा कि शशधर-कल्याणी को लेकर चले गये ?'

'नहीं, सुना नहीं है, पर अनुमान किया था।'

'जाने के पहले उन्हें एक बूँद जल भी नहीं पिलाया जा सका। दोनों ने आकर माँ को प्रणाम करके कहा—'हम जा रहे हैं।' माँ ने कहा—'जाओ!' फिर दूसरी ओर मुँह फेर लिया। यह कहकर वन्दना मौन रही। किसलिये वह जा रही हूँ, जो बातें द्विजू ने पिछली रात को माँ से कही थीं उनकी चर्चा तक भी नहीं की।

कुछ देर बाद चुप रहकर फिर बोली—'माँ बिलकुल बेचैन हो गई हैं, देखकर दुःख होता है, लज्जा से मानो किसी के सामने मुँह नहीं दिखा

पातीं ! मैत्रेयी ने उनकी जैसी सेवा की है, शायद वैसी अपनी बेटी भी नहीं कर सकती है। यदि माँ स्वस्थ होती हैं तो वह उसी की सेवा के कारण। लड़की बहुत भली है, कुछ दिन उसे रोक रखने की कोशिश करें यही मेरा अनुरोध है।

'ऐसा ही होगा।'

'जाने के पहले एक अनुरोध और कर जाऊँगी द्विजू बाबु।'

'अवश्य।'

'आपको अभी शादी करनी पड़ेगी।'

'क्यों?'

वन्दना ने कहा—'वर्ना यह विशाल परिवार छिन्न-भिन्न हो जायगा। जानती हूँ आपकी बहुत हानि हुई, लेकिन जो रह गया वह भी बहुत है। आप लोगों का कितना दान है, कितना सत्कार्य हैं, कितने आश्रित परिजन कितने दीन-दुखी के आप लोग सहारे हैं और वह भी क्या आज ही? कितने लम्बे समय से यह धारा चली आ रही है आपके परिवार में, कभी बाधा नहीं हुई है, वह क्या आज बन्द हो जायगी? भैया की भूल से जो चला गया वह व्यर्थ था, वह प्रयोजन के अलावा था, जाने दीजिए उसे। जितने रख गये उसे ही शान्त होकर काफी समझिए। वह शेष ही आपका भंडार अक्षय हो, प्रतिदिन के प्रयोजन में ईश्वर कमी न दें, आज विदा होने के पहले उनसे यही विनय करती हूँ।'

द्विजदास के नेत्रों में जल आ गाया।

वन्दना कहने लगी—'आपसे पिता अखंड विश्वास लेकर भैया के हाथों में सर्वस्व सौंप गये थे पर वह नहीं रहा। पिता के सामने दोषी बने रहे। लेकिन वह भूल यदि दीनता लाकर उनके पुण्य कार्य को बाधाग्रस्त करती है तो किसी दिन भी मुखोपाध्याय जो अपने मन को समझा न सकेंगे। इस अशान्ति से आपको उन्हें बचाना ही होगा।'

आँसू रोककर द्विजदास बोला—'भइया की बात इस प्रकार से किसी ने नहीं सोची है, वन्दना, मैंने भी नहीं। बात कैसी विस्मय की है!'

ठीक ही हुआ कि उसने बत्ती की छाया में वन्दना का मुख नहीं देखा। बोला—'भैया के लिए सभी दुख झेल सकता हूँ, किन्तु उनके कर्म बोझ

कैसे उठाऊँ, साहस जो नहीं होता है। उन्हीं को देखने आज चला था। उनका स्कूल, पाठशाला, टोल (संस्कृत पाठशाला) मुसलमान लड़कों के लिए मक्तब और वह भी क्या एक दो हैं ? बहुतेरे। खेतों को पानी देने के लिए एक नहर खोदी जा रही है, बहुत दिन तक उसके लिए खरचने पड़ेंगे। कागजों में एक लम्बी लिस्ट मिली है केवल दोनों की। वे लोग माँगने आये तो क्या कहूँगा मालूम नहीं ?'

वन्दना ने कहा—'उन्हें कह दें, मिलेगा। देना ही पड़ेगा उन्हें। लेकिन पूछती हूँ, इतने रोज तक किसी से उन्होंने कुछ नहीं कहा था ?'

'नहीं।'

'इसका सबब ?'

द्विजदास ने कहा—'अच्छे कार्यों को गुप्त रखने की इच्छा से। किन्तु किससे कहें ? दुनिया में उनका तो कोई मित्र नहीं था। विपत्ति जब आई तो उसे अकेलों ने सही, आनन्द जब आया उसे भी अकेले ही उपभोग किया। लेकिन नहीं जानता कहा होगा अपने एककिसी मित्र से।' कहकर उसने ऊपर की ओर देख कर कहा—'किन्तु यह सूचना आत्मीय मालूम कैसे होगी ? सिर्फ जानते हैं वह और उनके अन्तर्यामी।'

वन्दना ने कौतूहल से पूछा—'अच्छा द्विजू बाबू, आप क्या समझते हैं कि मुखोपाध्याय जी ने कभी किसी को प्रेम नहीं किया है ! किसी एक को भी नहीं ?'

द्विजदास ने कहा—'नहीं, वह उनके स्वभाव के विरुद्ध है। मानव संसार में इतना निःसंग मनुष्य दूसरा नहीं है ? इसके पश्चात् देर तक दोनों खामोश रहे।

मानो वन्दना ने एक भार को दूर फेंकते हुए कहा—'होने दीजिए द्विजू बाबू। उनके सभी कामों को आपको अपने कन्धे पर लेना पड़ेगा, एक को भी नहीं छोड़ सकते।'

'किन्तु मैं तो भैया नहीं हूँ। अकेला कैसे ले सकूँगा वन्दना ?'

'अकेले तो नहीं, दो आदमी लेंगे। इसीलिए तो कहती हूँ आपको शादी करनी होगी।'

'कर प्रेम किये बिना शादी करूँगा कैसे।'

वन्दना ने आश्चर्य से उसके मुँह की ओर देखकर कहा—'यह क्या कह रहे हैं द्विजू बाबू ! ऐसा तो अपने समाज में हम लोग ही कहा करते हैं, किन्तु आपके परिवार में कब किसने प्रेम करके शादी की है जो आपके किये बिना नहीं चलेगा ? यह बहाना न करिए ।'

द्विजदास ने कहा—'यह रीति हमारे घराने की नहीं है लेकिन यही उदाहरण क्या बराबर मानना पड़ेगा ? इसी से राजी हो जाऊं इसका मुझे विश्वास नहीं है ।'

वन्दना ने कहा—'विश्वास के विरुद्ध तर्क नहीं चल सकता, सुख की गैरन्टी भी नहीं दे सकती, क्योंकि वह धन जिसके हाथों में है उसे नहीं जानती। उसकी विचार-पद्धति, व्यर्थ है - किन्तु शादी के पहले नयन-मनोरंजन पूर्वराग के खेल बहुत देखे, और एक दिन वह प्रेम किस घने जंगल में हवा हो गया, यह नाटक भी बहुत देखा है । मैं कहती हूं उस जाल में पैर रखने की आवश्यकता नहीं है द्विजू बाबू, सोने का मायामृग जिस वन में विचरण कर रहा है करने दीजिए, इस मकान में समादरपूर्वक लाने की आवश्यकता नहीं ।'

मुस्कराकर द्विजू ने कहा—'इनका मतलब है सुधीर बाबू ने आपके मन को बहुत दुखी कर दिया है ।'

वन्दना ने भी हँसकर कहा—'हाँ ! किन्तु फिर भी मन का जो कुछ शेष था, उसे आपने खिन्न कर दिया और इसके बाद आये अशोक। अब फूटे भाग्य में वह भी डटे रहें तो धैर्य बँधे ।'

'कौन हैं वह अशोक ? आपको उनसे भय की कौन-सी बात है ?'

'भय यह है कि उन्होंने भी अचानक प्रेम करना आरम्भ किया है ।'

'कोई प्रेम के आस-पास से होकर भी नहीं निकले यही आपकी प्रतीज्ञा है ?'

'हाँ, यही मेरी प्रतीज्ञा है, शादी यदि कभी करूँ भी तो बड़े सुख की आशा की विडम्बना में न पड़ूं । इसीलिए कल अशोक बाबू को होशियार कर दिया है कि मुझे प्रेम करेंगे तो मैं चली जाऊंगी ।'

'सुनकर उन्होंने क्या कहा ?

'कहा कुछ नहीं, केवल देखते रहे । देखकर दुःख हुआ !'

'यदि सचमुच ही दुःख हुआ है तो आज भी आशा है। लेकिन याद रखे कि यह सब केवल मौसी के घर की घोर सामाजिकता है।'

वन्दना ने कहा—'असम्भव नहीं है, हो सकती है! किन्तु सीखा बहुत, सोचती हूँ, सौभाग्य से कलकत्ते आई थी वर्ना बहुत-सी बातें न जान पाती।'

कुछ देर तक चुप रहकर द्विजदास ने कहा—'अब अधिक समय नहीं है अब अन्तिम उपदेश दे जाइए कि मुझे क्या करना होगा ?'

परिहास की मुद्रा में सिर को कई बार हिलाकर वन्दना ने कहा—'उपदेश लेना है ? क्या सचमुच ही चाहिए ?'

द्विजदास ने कहा—'हाँ, सचमुच ही चाहिए। मैं भैया नहीं हूँ मुझे मित्र की आवश्यकता है, उपदेश की आवश्यकता है। मुझे शादी करने के लिए कह गईं, मैं वही करूँगा। लेकिन प्रेम न मिले, मित्रता नहीं मिलने से बोझ डाले जा रही हो उसे कैसे सँभालूंगा ?'

द्विजदास के मुख पर हँसी का चिन्ह भी नहीं है, इस कण्ठ-स्वर ने वन्दना को बेचैन कर दिया, बोली—'भय की बात नहीं है द्विजू बाबू, मित्र मिलेगा सचमुच ही, आवश्यकता पड़ने पर भगवान् उसे आपके दार पर पहुंचा जायँगे, इसका विश्वास जानिए !'

उत्तर में द्विजू कुछ कहने जा रहा था, लेकिन रुक गया। बाहर से मैत्रेयी का कण्ठ-स्वर सुनाई पड़ा—'द्विजू बाबू हैं कमरे में ? माँ आपको बुला रही हैं।' द्विजू उठकर बोला—'अभी बारह बजे हैं, साढे बारह बजे निकलना होगा। ठीक समय पर आकर आवाज दूंगा। याद रखना।' यह कहकर वह शीघ्रता से कमरे से निकल गया।

: २५ :

वन्दना के सकुशल बम्बई पहुँचने की सूचना के उत्तर में कुछ दिन के बाद द्विजदास ने लिखा था कि बहुत से कामों में जुटे रहने की वजह से ठीक समय पर पत्र नहीं लिख सका। लिखने की कोई विशेष बात नहीं है। मैत्रेयी के पिता कलकत्ता लौट गये हैं, किन्तु वह स्वयं अभी इस. मकान में हैं। माँ की सेवा-टहल में कहीं कोई कमी नहीं रहने पाती, गृहस्थी का भार उसी पर पड़ा

है, अच्छी तरह चला रही है। घर के सभी उससे प्रसन्न हैं। द्विजदास को अपनी ओर से अभी तक शिकायत करने का अवसर नहीं मिला है। अन्त में वन्दना और उसके पिता के प्रति शुभ कामना प्रकट कर और यथाविधि नमस्कारादि लिख उसने चिट्ठी समाप्त की।

इसके बाद तीन महीने से भी अधिक समय बीत गया लेकिन किसी ओर से भी पत्रों का आना-जाना नहीं हुआ। विप्रदास, मझली बहन, बासु का समाचार जानने के लिए वन्दना का मन व्याकुल हो उठता है, लेकिन कोई मार्ग नहीं सूझता। अपनी ओर से उन्होंने आज तक समाचार नहीं भेजा है, कहाँ हैं कैसे हैं, सब कुछ अज्ञात है, इसी की सिफारिश के लिए द्विजदास को आग्रह करके पत्र लिखने में इतनी बड़ी लज्जा है कि आन्तरिक इच्छा होते हुए भी यह काम उसे असाध्य मालूम हुआ। अब बलरामपुर की स्मृति की तीक्ष्णता और वेदना की तीव्रता दोनों बहुत हल्की हो गई हैं। यहाँ से चले आने के बाद वह वहाँ से विरक्त होने का उपक्रम कर रही थी, किन्तु दिनोंदिन व्यथा-हीन चित्त धीरे-धीरे जितना ही शान्त होता गया, उतनी ही उसने उपलब्धि की है कि उनका रिश्ता कोई सच्चा रिश्ता नहीं है। इकट्ठे रहने के कारण से वे सुख-दुःखमय अनिर्वचनीय दिन विचित्र घनिष्टता से मन के अन्दर जितना भी गहनता के मोह का सन्चार करते हैं, पर उसकी आयु क्षणस्थायी है। इस बात को उसे समझना शेष नहीं है कि उस आचारवान-प्राचीन-पंथी मुखोपाध्याय घराने में उसकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि दोनों पक्ष की शिक्षा, संस्कार और सामाजिक व्यवहार विचार का अन्तर जितना सत्य है, उतना ही कठिन भी है।

बहुत देखा कि माँ-बाप की एकलौती लड़की या लड़का ऐसे हठी हो जाते हैं कि उनसे सहज ही में पार नहीं पाया जा सकता।'

उसी समय साहब ने स्वीकार कर लिया, और देखा कि उदाहरण उनके पास ही उपस्थित है। सानन्द उसकी चर्चा करके बोले—'यह जैसे मेरी बिट्टो है। एक बार यदि 'न' कह दिया तो 'हाँ' कहला दे किसका साहस? उसके बचपन से ही देखता आ रहा हूँ...।'

वन्दना ने कहा—'शायद इसीलिए अपनी अबोध बिटिया से स्नेह नहीं करते हो पिता जी?'

साहब ने जोरों से प्रतिवाद दिया—'तुम मेरी अबोध बेटी हो? हर्गिज नहीं, कोई कह नहीं सकता।'

वन्दना हंस पड़ी—'अभी-अभी तो तुमने स्वयं कहा है पिताजी।'

'मैंने? कभी नहीं।'

सुनकर मौसी से भी बिना हँसे न रहा गया।

वन्दना ने पूछा—'अच्छा पिता जी, तुम्हारे समान क्या मेरी माँ भी मुझे देख नहीं सकती थीं?'

साहब ने कहा—'तुम्हारी माँ? इसी बात पर तो उनसे मेरी कितनी दफा कहा-सुनी हो गई। बचपन में एक बार तुमने मेरी घड़ी तोड़ दी थी, तुम्हारी माँ ने क्रोध करके कान मरोड़ दिया, तुम रोती हुई मेरे पास दौड़ आईं, मैंने हृदय से लगाया। उस दिन तुम्हारी माँ से मैं नहीं बोला।' बोलते हुए पूर्व स्मृति के भावावेग से उठकर बेटी के सिर को हृदय से लगाकर उसे धीरे-धीरे हाथ से सहलाने लगे।

वन्दना ने कहा—'बचपन के समान अब क्यों नहीं प्यार करते पिताजी?'

साहब ने मौसी से कहा—'मिसेज घोषाल, बिट्टो की बात सुनी?'

वन्दना ने कहा—'प्रायः कहा करते हो शादी करके झञ्झट का अन्त कर देना चाहते हो? मैं क्या तुम्हारी आँखों की किरकिरी हूँ?'

'लड़की की बात सुन रही हैं मिसेज घोषाल?'

मौसी बोलीं—'सच है वन्दना। लड़की जब सयानी हो जाती है तो माँ-बाप को कैसी घोर दुश्चिन्ता होती है, अपनी लड़की होने पर किसी दिन जानोगी।'

'मैं जानना नहीं चाहती मौसी।'

किन्तु पिता का कर्त्तव्य भी तो है बिटिया! माँ-बाप तो सदा रहेंगे नहीं, सन्तान के भविष्य की चिन्ता न करना उनके लिए अपराध है। तुम्हारे पिता जी के मन को शान्ति क्यों नहीं मिलती, उसे केवल जो स्वयं माँ-बाप हैं वही समझते हैं। तुम्हारी बहिन प्रकृति की जब तक मैंने शादी नहीं कर दी, तब तक न खा सकी, और न सो सकी। कितनी रातें जागकर बिताईं, यह तुम नहीं जान सकोगी, लेकिन तुम्हारे पिता जानेंगे। तुम्हारी माँ जीवित होतीं तो आज उनकी भी मेरी जैसी दशा होती।'

धीरे-धीरे साहब ने सिर हिलाकर कहा—'बिलकुल सच कह रही हैं मिसेज घोषाल।'

मौसी उन्हीं के उद्देश्य से कहने लगीं—'आज उसकी माँ जीवित होती तो वन्दना के लिए आपको वह परेशान कर डालतीं। मैंने स्वयं भी उन्हें क्या कम परेशान किया है। अब याद आने पर भी शर्म लगती है।'

साहब ने समर्थन करते हुए कहा—'दोष आपका नहीं है। प्रायः ऐसा हुआ ही करता है।'

मौसी कहने लगीं—'यही तो समझती हूँ। केवल चिन्ता इस बात की होती है कि आयु बढ़ रही है, आदमी के जीने-मरने का कोई भरोसा नहीं, जिन्दा रहते यदि लड़की के लिए कुछ न कर जाऊँ तो उसे न जाने क्या हो। भय से वे तो एक बार सूख गये थे।'

वन्दना से अब सहन नहीं हुआ, देखा उसके पिता का मुख भी सूख गया है, खाना बन्द हो गया था, बोली—'तुमने व्यर्थ ही मौसा जी को तरह-तरह से भय दिखाया है मौसी जी, और अब पिता जी को दिखा रही हैं। ऐसा हुआ क्या है बतलाओ न? पिता जी अभी बहुत दिनों तक जीवित रहेंगे। अपनी बिटिया के लिए जो कुछ अच्छा समझते हैं उसे कर जाने के लिए बहुत समय मिलेगा। तुम व्यर्थ ही पिता जी की चिन्ता न बढ़ाओ।'

मौसी पीछे हटने वाली जीव नहीं थीं, खासकर रे साहब ने उन्हीं का समर्थन करते हुए कहा—'तुम्हारी मौसी ठीक ही कह रही है वन्दना। सचमुच मेरी तबीयत अच्छी नहीं है, सचमुच ही इस शरीर पर अधिक विश्वास नहीं

किया जा सकता। वह आत्मीय हैं, समय रहते वह सावधान न करेंगी तो कौन करेगा बतलाओ न ?' कहकर उन्होंने दोनों की ओर देखा। मौसी ने कनखियों से देखा कि वन्दना का मुख उदास हो गया है, अप्रतिभ कण्ठ स्वर में व्यस्तता से बोल उठीं—ऐसा कहना बहुत अनुचित है मिस्टर रे। आपकी सौ वर्ष की आयु हो, हम सभी प्रार्थना करते हैं, मैंने केवल कहना चाहा था।

बात काट कर साहब ने कहा—'नहीं, आपने ठीक ही कहा है। सचमुच ही मेरा स्वस्थ्य अच्छा नहीं। समय रहते सतर्क न होना, कर्त्तव्य की उपेक्षा करना मेरे लिए सचमुच अनुचित है।'

वन्दना ने क्रोध दबाकर कहा—आज पिता जी नहीं खायंगे मौसी जी।'

मौसी जी ने कहा—'इन बातों को जाने दीजिए मिस्टर रे। यदि आप न खायँगे तो मुझे बहुत दुख होगा।'

साहब को भोजन की इच्छा नहीं रही, तब भी बरबस उन्होंने एक बोटी माँस काटकर मुँह में डाला। इसके बाद खाना चलता रहा।

साहब ने पूछा—'दामाद की प्रैक्टिस कैसी चल रही है ?'

मौसी बोली—'अभी तो शुरू ही की है। सुनती हूँ बुरी नहीं है !'

फिर कुछ देर चुपचाप बीत जाने पर उन्होंने मुख का कौर निगलकर कहा—"प्रैक्टिक कैसे भी क्यों न हो मिस्टर रे, मैं इसी को बहुत बड़ी चीज नहीं मानती हूँ। मैं कहती हूँ कि उससे भी बहुत बड़ी चीज है मनुष्य का चरित्र। वह निर्मल नहीं है तो कोई भी लड़की किसी दिन सचमुच ही सुखी नहीं हो सकती।'

'क्या इसमें भी कुछ सन्देह है ?'

मौसी कहने लगीं—'मैं परेशान हूँ, मेरे पीहर की शिक्षा संस्कार, वहाँ के दृष्टान्त, मेरे दिल में जम गये हैं। उससे कहीं एक तिल भी कम मुझसे देखा नहीं जाता है। मेरे अशोक को देखकर उसी नैतिक वातावरण की बात स्मरण आ जाती है जिसमें पली थे। मेरे पिता, मेरे बड़े भइया, वह अशोक भी बिलकुल उन्हीं के समान है, वैसा ही सरल, वैसा ही उदार, वैसा ही चरित्रवान।'

रे साहब ने सोलहो आने मान लिया, बोले—'मुझे ऐसा ही जान पड़ता

है मिसेज घोषाल। लड़का बहुत अच्छा है। छः सात दिन यहाँ रहा, उसके चरित्र से मैं मुग्ध हो गया हूँ!' यह कहकर उन्होंने वन्दना को गवाह मानकर पूछा—'क्यों बिट्टो, अशोक हमें कितना अच्छा लगा था! जिस दिन चला गया उस दिन मेरा जी ठीक नहीं रहा।'

वन्दना ने स्वीकार करके कहा—'हाँ पिता जी, वे बड़े भले आदमी हैं। जैसे विनयी वैसे ही सज्जन। मेरे किसी भी अनुरोध में कभी 'ना' नहीं की। यदि मुझे वह बम्बई न पहुँचा जाते तो बड़ी कठिनाई में पड़ जाती।'

मौसी ने कहा—'और एक बात शायद लक्ष्य की होगी वन्दना, उसमें अभिमान नहीं है। बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि यह चीज हममें से बहुतेरों में दिखाई देती है।'

वन्दना ने हँसकर कहा—'तुम्हारे घर में तो कभी किसी में नहीं देखा मौसी जी।'

मौसी जी ने हँसकर कहा—'देखा क्यों नहीं है बिटिया। तुम बहुत बुद्धिमती हो, वे तुम्हें चकमा कैसे दे सकते हैं?'

सुनकर रे साहब हँसे, बात उन्हें बहुत भली लगी। बोले—'इतनी बुद्धि प्रायः देखने में नहीं आती है मिसेज घोषाल। बाप के मुँह से यह अहंकार की सी बात लगती है, लेकिन बिना बोले रहा भी नहीं जाता।'

वन्दना ने कहा—'इस चर्चा को तुम बन्द करो मौसी जी, वर्ना पिता जी को सम्भालना कठिन होगा। तुमने केवल बेटी के ही दोषों को देखा है, किन्तु यह नहीं देखा कि एक बेटी के बाप की तरह अभिमानी संसार में कम हैं। मेरे पिता जी का विचार है कि उनकी बेटी जैसी लड़की इस संसार में दूसरी है नहीं!'

मौसी ने कहा—'इस विचार की मैं भी एक बड़ी हिस्सेदार हूँ वन्दना। सजा मिलनी है तो मुझे भी मिलनी चाहिए।'

पिता के मुख पर सन्तोष की मृदु मुसकान है। बोले—'मैं अभिमानी हूँ या नहीं, मालूम नहीं, किन्तु कन्या-रत्न पाकर मैं सचमुच ही सौभाग्यवान हूँ। बिरले ही बापों की ऐसी बेटी होती हैं।'

वन्दना ने कहा—'पिता जी, आज तो तुमने एक भी सन्देश नहीं शायद अच्छा नहीं बना है?'

साहब ने प्लेट से आधा सन्देश तोड़कर मुख में डाला, बोले—'सब बिट्टो ने अपने हाथों बनाई हैं। इस बार कलकत्ते से लौटने के बाद से उसने सभी खाना बदल दिया है। किससे सुना है, मालूम नहीं, अब घर में माँस प्रायः आने ही नहीं देती। कहती हैं—पिता जी उससे बीमार हो जाते हैं। देखिए मिसेज घोषाल, यह बंगाली खाना खाकर मालूम होता है कि बुढ़ापे में बड़े आराम में हूँ। अब कुछ अच्छी भूख लगती है।'

वन्दना ने कहा—'मौसी जी को आदत नहीं है, शायद कष्ट होता है।'

मौसी बोलीं—'न-न, कष्ट क्यों होगा, यह मुझे अच्छा ही लगता है। केवल जलवायु ही नहीं, भोजन बदलना भी बहुत आवश्यक है। इसीलिए शायद मेरी तबीयत इतनी शीघ्र अच्छी हो गई।'

'अच्छी हो गई है न मौसी जी ?'

'अवश्य हुई है। कुछ भी सन्देह नहीं।'

"तो कुछ दिनों तक और रहो, और भी अच्छी हो जाओ।'

'अब अधिक दिनों तक नहीं रहा जा सकता है वन्दना। अशोक ने लिखा है कि इसी महीने के अन्त में वह पंजाब में चेंज के लिए आवेगा। इसके पहले मुझे लौट जाना ही चाहिए।'

भोजन समाप्त हो चुका था, साहब उठने की सोच रहे थे, मौसी मन-ही-मन चंचल हो उठीं। प्रस्ताव पेश करने के पक्ष में जो अनुकूल वातवारण बनाया था उसे शर्म में खो देने से वापस लाना कठिन होगा। संकोच का अतिक्रमण करके बोलीं—'मिस्टर रे, एक बात थी यदि समय···।'

साहब ने उसी समय बैठकर कहा—'न-न, समय क्यों नहीं। कहिए बात क्या है ?'

मौसी ने कहा—'मैंने सुना है वन्दना को तो कोई इन्कार नहीं है। अशोक पैसे वाला नहीं है यह सच है, किन्तु सुशिक्षा और चरित्रबल से संघर्ष करके वह एक दिन ऊपर अवश्य उठेगा यह मेरा पूर्ण विश्वास है। यदि आप उसे अपनी बेटी के योग्य न समझें···।'

आश्चर्य से साहब ने कहा—'किन्तु यह हो कैसे सकता है मिसेज घोषाल ? अशोक आपका भतीजा है। सम्बन्ध में वह भी तो वन्दना का ममेरा भाई है।'

मौसी ने कहा—'केवल नाम में, वर्ना बहुत दूर का सम्बन्ध है। मेरी नानी और वन्दना की माँ की नानी दोनों बहिनें थीं, उसी नाते मैं वन्दना की मौसी हूँ। यह विवाह टल नहीं सकता मिस्टर रे।'

कुछ देर तक साहब चुप रहे, शायद मन-ही-मन कुछ हिसाब लगाया, फिर बोले—'अशोक को जितना मैंने स्वयं देखा है और जितना वन्दना के मुँह से सुना है, उससे अयोग्य नहीं समझता। बिट्टो की शादी एक दिन मुझे करनी ही पड़ेगी, किन्तु उसकी इच्छा भी जानना आवश्यक है।'

मौसी मृदु-कण्ठ स्वर में उत्साहित करते हुए बोलीं—'शर्माओ मत बिटिया अपने पिता जी को बतलाओ तुम्हारी क्या इच्छा है?'

वन्दना का चेहरा पल भर में लाल हो गया, किन्तु कहने लगी—'अपनी इच्छा को मैंने बहा दिया है, मौसी जी। उसे ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं।'

साहब ने डरते हुए कहा—'इसका अर्थ?'

वन्दना ने कहा—'अर्थ आप लोगों को ठीक-ठीक समझाकर मैं बतला नहीं सकती पिता जी, किन्तु इसीलिए यह न समझ लेना कि मैं विघ्न डाल रही हूँ।' तनिक रुक कर बोली—'मेरी सती बहिन की शादी हुई थी जब नौ वर्ष की थी। माता-पिता ने जिनके हाथों में पकड़ा दिया, मझली बहिन ने उसी को स्वीकार कर लिया, अपने मन से नहीं चुना। फिर भी भाग्य में जो उन्हें मिला, वह पति संसार में दुर्लभ है। मैं उसी भाग्य पर विश्वास करूँगी पिता जी। विप्रदास बाबू साधु आदमी हैं, आने के पहले मुझे आशीर्वाद देते हुए कहा था—'जहाँ मेरा कल्याण होगा ईश्वर मुझे वहीं भेजेंगे।' उनकी यह बात कभी असत्य नहीं होगी। तुम मुझे जो आज्ञा दोगे मैं उसी का पालन करूँगी। दिल में कोई संशय, कोई भय न रहने दूँगी।'

आश्चर्य करके साहब चुपचाप उसकी ओर देखते रहे।

मौसी ने कहा—'शादी के समय तुम्हारी मझली बहिन बालिका थी, इसीलिए उनकी राय का प्रश्न नहीं उठा था। लेकिन तुम तो वैसी नहीं हो, सयानी हुई हो, अपनी भले-बुरे का उत्तरदायित्व तो तुम्हारा अपना है, अब तो नेत्र मूंद कर भाग्य के हाथों कठपुतली बनना तुम्हें शोभा नहीं देता।'

'शोभा देता है या नहीं यह नहीं जानती मौसी जी, लेकिन उनके समान उसी प्रकार ही भाग्य को मैं प्रसन्नता से मान लूँगी।'

'लेकिन इस प्रकार उदासीन होकर बातें करने से तुम्हारे पिता जी का मन कैसे स्थिर होगा ?'

'जिस प्रकार उनके बड़े भैया ने किया था, सती बहिन के सम्बन्ध में, जैसे उनके सभी पुरखों ने अपने बेटे-बेटियों के व्याह किये थे, मेरे बारे में भी पिता जी उसी प्रकार मन स्थिर रखें।'

'तुम स्वयं न कुछ देखोगी, और न कुछ सोचोगी ?'

'सोचना-विचारना देखना-सुनना बहुत देखा मौसी जी। और नहीं। अब पिता जी पर निर्भर करूँगी और उस भाग्य पर जो भविष्य में है अभी देखा नहीं है।'

निराश होकर मौसी तनिक कड़ुवे स्वर में बोली—'हम भी भाग्य को मानते हैं लेकिन तुम्हारा समाज, शिक्षा संस्कार सभी को डुबोकर मुखोपाध्यायों का इन्हीं कई दिनों का साथ तुम्हें इतना छिपा देगा, यह नहीं सोचा था। तुम्हारी बात सुनने से जान नहीं पड़ता कि तुम हमारी वही वन्दना हो। मानो हम लोगों के समाज से एक अलग हो गई हो।'

वन्दना ने कहा—'नहीं मौसी जी, मैं गैर नहीं हो गई हूँ। उन लोगों को अपना बनाने के लिए मुझे किसी को गैर नहीं बनाना पड़ेगा। इस बात को पक्के तौर से जान गई हूँ। मेरे विषय में तुम लोग शंका न करना।'

मौसी ने पूछा—'तो एक तार भेज दूँ अशोक को आने के लिए ?'

'भेज दो न। मुझे तो कोई इन्कार नहीं।' कहकर वन्दना कमरे से बाहर निकल गई।

'तो आपके ही नाम से तार भेजूँ मिस्टर रे ?' कहकर मौसी ने सिर ऊपर उठाकर आश्चर्य से देखा कि साहब के दोनों नेत्र अचानक डबडबा आये हैं। इसका कारण उनकी समझ में न आया और साहब धीरे-धीरे जब कहा कि तार आज रहने दीजिए मिसेज घोषाल, फिर भी कारण समझ न सकी, बोली—'क्यों रहने दूँ मिस्टर रे, वन्दना ने तो सम्मति दे दी।'

'नहीं, आज रहने दें।' कहकर वह चुप रहे। यह नीरवता और उन आँसुओं ने अन्दर-ही-अन्दर मौसी को अत्यन्त क्रुद्ध किया। एक चतुर पदस्थ व्यक्ति की ऐसी भावुकता वह सहन करने के लिए प्रस्तुत नहीं थी, उन्हें यह

असह्य था। किन्तु जिद करने का साहस भी उन्हें न हुआ। दो मिनट चुप रह कर साहब ने कहा—'उसके पिता की बात मैंने सोची है, लेकिन उसकी माँ नहीं है, उनकी बात भी मुझे ही सोचनी पड़ेगी मिसेज घोषाल, जरा गुरु समय चाहिए।'

मन-ही-मन मौसी ने कहा—'एक ओर मूर्खता भरी भावुकता। साहब ने अनुमान किया या नहीं, पता नही, किन्तु तनिक मलीन हँसी हँसकर बोले—'परेशानी यह है कि उसकी बात मानो हममें से कोई ठीक तरह समझ नहीं पाता है। उसने सम्मति 'न' या 'हाँ' किसमें दी समझ ही में नहीं आय।'

'इसका तात्पर्य ?'

'मतलब मैं नहीं जानता। किन्तु भले प्रकार देखता हूँ कि बंगाल से वह न जाने क्या साथ लाई है, वह दिन-रात उसे घेरे रहता है। उसका भोजन बदल गया है, बातें बदल गई हैं, उसका चलना-फिरना तक मानों पहले जैसा नहीं है। प्रातः स्नान करके मेरे कमरे में आकर पद-धूलि लेकर सिर पर लगाती है। कहता हूँ—'बिट्टो, पहले तू यह सब नहीं करती थी ?' 'तब जानती नहीं थी पिताजी। अब तुम्हारे पैरों की धूलि लेकर दिन शुरू करती हूँ। अच्छी प्रकार जानती हूँ कि वह दिन भर सभी कामों में मेरी रक्षा करती है।' कहते-कहते उनके नेत्र फिर छलछला उठे।

मौसी मन-ही-मन झुंझलाकर बोली—'यह सब नई बातें उन मुखोपाध्यायों के घर से सीख आई है। जानते हैं वे कैसे कट्टर सनातनी हैं ? लेकिन इसे धर्म नहीं कहते हैं, कुसंस्कार कहते हैं। क्या पूजा-पाठ भी करती है ?'

साहब ने कहा—'नहीं मालूम करती है या नहीं। शायद करती नहीं है। वह मुझे भी कुसंस्कार ही लगा है, मना भी करने गया, लेकिन बिट्टो पहले के समान तो तर्क नहीं करती है, केवल चुपचाप देखती रहती है। मेरा भी मुंह बन्द हो जाता है—कुछ बोल नहीं पाता।'

मौसी ने कहा—यह तो आपकी दुर्बलता है। किन्तु ठीक प्रकार से जान इसे धर्म नहीं कहते हैं, कुसंस्कार, को सहारा देना अन्याय है। यह अपराध

साहब ने दुविधा में धीरे-धीरे कहा—'हो सकता है

मुंह से ही कहता हूँ, कभी स्वयं भी अध्ययन नहीं किया है, प्रकृति क्या है उसे नहीं जानता, केवल-कभी मौन होकर सोचता हूं बिट्टो सोलहो आने कैसे बदल गई ! *वह हँसी नहीं है, आनन्द की चंचलता नहीं है, बरसात के खिलते* हुए फुलों की तरह पंखुड़ियाँ जैसे जल से भीगी हैं। कभी पुकार कर कहता हूँ—'बिट्टो, मुझसे छिपाना मत बेटी, तुझे कोई रोग तो नहीं हो गया है ?' वैसे ही सिर हिलाकर कहती है—नहीं पिताजी, मैं अच्छी हूं, मुझे कोई बीमारी नहीं हुई है।' हँसती हुई घर के कामों में लग जाती है, पर मेरा हृदय टूक-टूक हो जाना चाहता है मिसेज घोषाल। यही एक बेटी है, माँ नहीं है, अपने हाथों से पालकर इतना बड़ा किया है—सर्वस्व देकर भी अपनी वन्दना को यदि अपनी उस वन्दना को फिर किसी प्रकार वापिस पाऊँ···।'

मौसी ने जोर देकर कहा—'पायेंगे। मैं वचन देती हूँ पायेंगे। वह केवल समाजिक सुख है, केवल उन लोगों के साथ रहने का क्षणिक विकार, शादी कर दीजिए, सब दो दिन में ठीक हो जायगा। चिरकाल की शिक्षा ही मनुष्य में रह जाती है मिस्टर रे, दो दिन की धुन ही दो दिन में समाप्त हो जाती है।'

साहब अस्वस्त हुए, तब भी सन्देह दूर नहीं हुआ। बोले—'उसे कहाँ किससे प्रेरणा मिली—नहीं जानता, किन्तु सुना है कि यदि वह आती हैं तो सच्चे मनुष्य के हृदय से किसी प्रकार भी गुप्त नहीं होती है। मानव के चिर-ल के अभ्यास को क्षण में बदल देती है। नशा खून की धारा में मिल जाता है, सारे जीवन में वह ठहरता नहीं है। इसका मुझको भय है मिसेज घोषाल।'

जवाब में मौसी तनिक अवज्ञा की हंसी हँसकर बोली—'बेकार सब बेकार ! मैंने बहुत देखा मि० रे, दो दिन के बाद कुछ नहीं रह जाता है। किन्तु *आगे बढ़ने नहीं दिया जा सकता, आज ही अशोक को एक तार* भेज दूं, वह चला आये।'

'आज ही भेजोगी ?'

'हाँ, आज ही और आप के ही पते से।'

साहब ने धीमे स्वर में सम्मति प्रकट करते हुए कहा—'जो अच्छा समझें करें। मुझे मालूम है अशोक अच्छा लड़का है। चरित्रवान, साधु नहीं तो उसे साथ लेकर आने के लिए प्रस्तुत वन्दना नहीं होती।

इसी बात को मौसी ने और एक बार बढ़ा चढ़ाकर कहना चाहा, लेकिन विघ्न खड़ा हो गया। कमरे में घुसकर वन्दना ने कहा—'पिता जी, आज हाजी साहब की लड़कियों ने मुझे चाय के लिए न्योता दिया है। दोपहर को जाऊँगी; सन्ध्या को ऑफिस से लौटते मुझे घर लिवा लाना।'

मौसी ने पूछा—'उनके घर तो तुम कुछ खाओगी नहीं वन्दना ?'

'हाँ, मौसी जी।'

'क्यों ?'

'मेरा मन नहीं होता। तुम भूल तो नहीं जाओगे पिता जी ?'

'नहीं बिट्टो! तुम्हें लाना भूल जाऊँगा ऐसा भी कभी हो सकता है ?' कह कर साहब तनिक हँसे। बोले—'अशोक आ रहे हैं। आज उन्हें एक तार भेज दूँ।'

'अच्छी बात है पिताजी, भेज दो।'

मौसी ने कहा—'मैं ही ज़ोर देकर उसे बुला रही हूँ। आने पर देखना, कहीं अपमान न हो।'

'कोई भय की बात नहीं मौसी जी, हम किसी का भी अपमान नहीं करते हैं, अशोक बाबू स्वयं ही जानते हैं।'

लड़की की बात सुनकर साहब प्रसन्न होकर बोले—'आफिस जाते हुए आज ही उसे एक तार दे दूंगा बिट्टो। आज शुक्रवार है, सोमवार को वह आ पहुँचेगा यदि कोई अड़चन न हुई।'

इसी समय द्वारपाल डाक लेकर आया। अखबार और अगिनित स्थानों की चिट्ठी-पत्री भी कम नहीं हैं। कुछ दिनों से डाक के प्रति वन्दना की उत्सुकता नहीं थी। वह जानती थी कि प्रतिदिन पत्र की आशा करना व्यर्थ है। उसे याद करके पत्र लिखनेवाला कोई नहीं।' वह चली जा रही थी, साहब ने बुलाकर कहा—'यह लो तुम्हारे नाम के दो पत्र। एक आपका भी है मिसेज घोषाल।'

अपने से दूसरे के पत्र के प्रति मौसी का कुतूहल अधिक है। मुँह बढ़ा देखकर बोलीं—'देखती हूँ एक तो अशोक का लिखा हुआ है। दूसरा किसका है ?'

इस व्यर्थ प्रश्न का उत्तर वन्दना ने नहीं दिया, दोनों पत्रों को लेकर वह पने कमरे में चली गई ।

साहब ने मुस्कराकर कहा—'देखता हूँ अशोक से चिट्ठी-पत्री होती है, र भेज दूं वह चला आये । सचमुच ही लड़का अच्छा है । उस पर विश्वास करती तो वन्दना कभी पत्र न लिखती ।'

मौसी भी अभिमान से हँस पड़ी । यानी जानती हैं, बहुत कुछ ।

सन्ध्या को ऑफिस से लौटते हुए हाजी साहब के घर होकर रे साहब अकेले लौटे । वन्दना वहाँ गई नहीं । मौसी सामने ही थीं, बोलीं—'वन्दना पत्र लेकर तभी से जो अपने कमरे में घुसी है, तो फिर निकली नहीं ।'

साहब ने व्याकुल होकर पूछा—'क्या खाना भी नहीं खाया ।'

'नहीं, सवेरे वही दो चार फल खाये थे बस ।'

'साहब ने तेजी से जाकर बिट्टो के कमरे के किवाड़ खटखटाये और बोले—बिट्टो ।'

वन्दना ने द्वार खोल दिये । उसके मुख की ओर देखकर पिता अवाक् हो गये—'हुआ क्या है री ?'

वन्दना ने कहा—'पिता जी, आज रात की ट्रेन से मैं बलरामपुर जाऊँगी ।'

'बलरामपुर ? क्यों ?'

'द्विजू बाबू ने एक पत्र लिखा है—'पढ़ोगे पिता जी ?'

'बिट्टो, तुम पढ़ो मैं सुनूं ।' कहकर साहब एक कुर्सी खींचकर बैठ गये ।

वन्दना उनसे लगकर खड़ी हो गई । पत्र को पढ़कर सुनाने लगी—

सुचरितासु,

आपके जाने के दिन की याद आती है । आँगन में गाड़ी खड़ी हुई है, बोलीं—'बीच-बीच में समाचार देने के लिए । बोला—'मैं आलसी आदमी हूँ, चिट्ठी-पत्री लिखना सुगमता से नहीं होता है, बढ़िया लिखना भी नहीं जानता । बल्कि यह भार और किसी को दे जायं ।'

सुनकर मौन होकर देखती रहीं, फिर गाड़ी पर जा बैठीं, दूसरा अनुरोध किया । शायद सोचा लज्जा जो ऐसे समय भी एक अच्छी बात मुख पर नहीं लाने देती है, उसमें कहने के लिए क्या है ?

ऐसा ही हूँ मैं। फिर भी आशा थी कि यदि लिखना ही पड़े तो ऐसा कुछ लिख सकूं जो ठीक हो, वह लिखना, जिसमें अनायास ही मेरे सभी अपराधों के लिए क्षमा हो।

दिल में सोचता था मनुष्य के लिए क्या केवल दुःख ही है, सुख क्या संसार में नहीं है ?

भैया के इष्ट-देवता केवल नेत्र मूँदे ही रहेंगे कभी नेत्र खोलकर देखेंगे नहीं ? अनहोनी जो हुई वही सदैव रहेगी, उसे टालने की शक्ति क्या किसी में नहीं है ?

मैंने देखा कि वह शक्ति कहीं भी नहीं है। न तो भगवान् डिगे और न उनका भक्त डिगा। निर्वात निष्कम्प दीप-शिखा आज भी उसी प्रकार जल रही है, लेशमात्र भी कमी नहीं हुई।

यह चर्चा क्यों, यही बतलाऊँ। तीन दिन हुए भैया घर वापस आये हैं। सवेरे जब गाड़ी से उतरे उनके पीछे उतरा बासु। नँगे पैर, गले में उत्तरीय (शोक-वस्त्र)। गाड़ी लौट गई और कोई नहीं उतरा। सवेरे की धूप में छत पर खड़ा था, नेत्रों के सामने सारा संसार अँधेरा हो गया—ठीक अमावस की रात्रि के समान। शायद दो मिनट वीते होंगे, फिर सब कुछ दिखाई पड़ा, फिर सब स्पष्ट हो गया! ऐसा भी होता है, इसके पहले मैं नहीं जानता था।

नीचे उतर आया, भैया बोले—तेरी भाभी कल सवेरे मर गई द्विजू! हाथ में रुपये-पैसे विशेष नहीं हैं, साधारण ढंग से उनके श्राद्ध का प्रबन्ध कर दे। कहाँ हैं माँ ?

'अपनी बेटी के घर ढाका में।'

'ढाका में ?' तनिक चुप रहकर बोले—क्या जानूँ, शायद आ न सकेंगी। लेकिन मातृ-मृत्यु का एक पत्र बासु उन्हें लिख दे ?'

बोला—देगा क्या नहीं ?

बासु ने दौड़कर द्विजदास के गले से लिपट मुँह छिपा लिया। फिर रोने लगा जैसे उस क्रन्दन की भाषा नहीं है, उसी प्रकार पत्र में उसे प्रकट करने को भी भाषा नहीं है, शिकार का पशु मरने के पहले अपनी अन्तिम फरियाद जिस भाषा में छोड़ जाता है, बहुत कुछ उसी प्रकार द्विजदास उसे गोद में

निकार अपने कमरे में चला गया। वह उसी प्रकार कलेजे से मुँह लगाये रोने लगा। मन ही मन बोला—अरे वासु, हानि की दृष्टि से तूने ही बहुत कुछ खो दिया ऐसा नहीं, और एक आदमी की हानि की माया तुझसे भी बढ़ गई। फिर भी तुझे समझाने के लिए आदमी मिलेंगे, किन्तु उसे नहीं मिलेगा। केवल एक आशा है वन्दना, यदि समझती है।'

इसी प्रकार कुछ समय बीता। अन्त में आँसू पोंछकर बोला—'भय की बात नहीं रे, माँ न हो, बाप न हो, लेकिन मैं तो हूँ। उनका ऋण उतार नहीं सकूँगा लेकिन अस्वीकार कभी नहीं करूँगा। आज सबसे अधिक दुःख, सबसे अधिक क्षति के दिन यह रही तेरे चाचा की शपथ।

परन्तु इसे लेकर अब बात बढ़ाऊँगा नहीं, बात है ही क्या। बचपन में मैं पिता जी कहा करते थे, गँवार, माँ कहती थीं पगला, कितनी बार भैया अप्रसन्न हुए—अनादर उपेक्षा से कितने ही दिन यह घर विषाक्त हो गया, तब भाभी पास आतीं, बोलतीं—देवर, क्या चाहिए बतलाओ तो सही? अप्रसन्न होकर उत्तर दिया है, कुछ नहीं चाहिए भाभी, मैं यहाँ से चला जाऊँगा।

'कब?'

'आज ही।'

वह हँसकर बोलतीं—'जाने की आज्ञा नहीं है। जाओ तो देखूँ मेरी बातें टालकर।'

फिर जाना नहीं हुआ। किन्तु उसी जाने का दिन जब सचमुच ही आया तो वह चली गईं। सोचता हूँ, केवल मेरे ही लिए आज्ञा? उन्हें आज्ञा देने के लिए क्या संसार में कोई था नहीं।

भैया से पूछा—'मृत्यु कैसे हुई?' बोले—कलकत्ते में ही तबियत खराब हुई, शायद मन ही मन बहुत सोचा करती थी, पश्चिम में ले गया। किन्तु कहीं भी सुविधा नहीं हुई, अन्त में हरिद्वार में ज्वर हो आया, काशी लेकर

किन्तु यह यथासम्भव कितनी है, यह भैया के अतिरिक्त और कोई जानता नहीं।

इच्छा हुई कि पूछूँ—मुझे इतनी बड़ी सजा क्यों दी ? मैंने क्या किया था ? किन्तु उनके मुंह की ओर देखकर यह प्रश्न मुंह से न निकला।

पूछा—किसी को कुछ नहीं कह गई हैं भैया ?

बोले—'हाँ,। मरने के दस-एक घण्टे पहले तक होश था, पूछा, सती, माँ को कुछ कहोगी ?'

बोली—'नहीं।'

'द्विजू को ?'

'हाँ। उसे मेरा आशीर्वाद देना।' मैं सन्न रह गया और दौड़कर भाभी के स्तब्ध कमरे में चला आया। फोटो खिचवाने में वह बहुत लजाती थी, केवल एक फोटो उनकी आलमारी की आड़ में छिपी हुई थी। मेरी ली हुई फोटो थी। सामने खड़ा होकर बोला—'धन्य हो गया भाभी, समझ गया तुम्हारी आज्ञा ! इतनी जल्दी चली जाओगी, नहीं समझा था, यदि कहीं हो तो देखोगी तुम्हारी आज्ञा की अपेक्षा नहीं की है। केवल इतनी शक्ति देना, तुम्हारे शोक में किसी के सामने और आँसू न निकलें। किन्तु आज यहीं तक उनकी कहानी रहे।

अब रहा मैं ! जाने के समय आपने अनुरोध किया था शादी करने के लिए। क्यों इतना भार अकेला ढो नहीं सकूँगा—साथी की आवश्यकता है। वह साथी मैत्रेयी होगी, यही आपके मन में आशा थी। उज्र नहीं किया था, सोचा था दुनिया का पन्द्रह आना सुख ही यदि समाप्त हो गया तो एक आने के लिए अब खींचातानी नहीं करूँगा, किन्तु वह भी नहीं होना चाहता, भाभी की मौत ने एक अलग बाधा खड़ी कर दी। बाधा कैसी ? मैत्रेयी भार ले सकती है, वह बोझ नहीं ढो सकती। यह जान लिया है। अब तो मेरा बोझ बहुत भारी है। फिर भी कहूँगा कष्ट के दिन में उसने हमारा कुछ किया है, मैं उसका ऋणी हूँ।

कल बहुत रात को नींद टूट जाने पर बासु रोने लगा। उसे सुलाकर भैया के कमरे में गया। देखा—तब भी जागकर वे पुस्तक पढ़ रहे हैं।—'कौन-सी पुस्तक है भैया ?' भैया पुस्तक बन्द करके रखते हुए हँसकर बोले—

लेकर अपने कमरे में चला गया। वह उसी प्रकार कलेजे से मुँह लगाये रोने लगा। मन ही मन बोला—अरे वासु, हानि की दृष्टि से तूने ही बहुत कुछ खो दिया ऐसा नहीं, और एक आदमी की हानि की मात्रा तुझसे भी बढ़ गई। फिर भी तुझे समझाने के लिए आदमी मिलेंगे, किन्तु उसे नहीं मिलेगा। केवल एक आशा है वन्दना, यदि समझती है।'

इसी प्रकार कुछ समय बीता। अन्त में आँसू पोंछकर बोला—'भय की बात नहीं रे, माँ न हो, बाप न हो, लेकिन मैं तो हूँ। उनका ऋण उतार नहीं सकूँगा लेकिन अस्वीकार कभी नहीं करूँगा। आज सबसे अधिक दुःख, सबसे अधिक क्षति के दिन यह रही तेरे चाचा की शपथ।

परन्तु इसे लेकर अब बात बढ़ाऊँगा नहीं, बात है ही क्या। बचपन में में पिता जी कहा करते थे, गँवार, माँ कहती थीं पगला, कितनी बार भैया अप्रसन्न हुए—अनादर उपेक्षा से कितने ही दिन यह घर विषाक्त हो गया, तब भाभी पास आतीं, बोलतीं—देवर, क्या चाहिए बतलाओ तो सही? अप्रसन्न होकर उत्तर दिया है, कुछ नहीं चाहिए भाभी, मैं यहाँ से चला जाऊँगा।

'कब?'

'आज ही।'

वह हँसकर बोलतीं—'जाने की आज्ञा नहीं है। जाओ तो देखूँ मेरी बातें टालकर।'

फिर जाना नहीं हुआ। किन्तु उसी जाने का दिन जब सचमुच ही आया तो वह चली गई। सोचता हूँ, केवल मेरे ही लिए आज्ञा? उन्हें आज्ञा देने के लिए क्या संसार में कोई था नहीं।

भैया से पूछा—'मृत्यु कैसे हुई?' बोले—कलकत्ते में ही तबियत खराब हुई, शायद मन ही मन बहुत सोचा करती थी, पश्चिम में ले गया। किन्तु कहीं भी सुविधा नहीं हुई, अन्त में हरिद्वार में ज्वर हो आया, काशी लेकर चला आया। वहीं उनकी मृत्यु हो गई।'

'बस!'

पूछा—'दवा-दारू की थी भैया?'

बोले—'यथासम्भव हुई थी।'

किन्तु यह यथासम्भव कितनी है, यह भैया के अतिरिक्त और कोई जानता नहीं।

इच्छा हुई कि पूछूँ—मुझे इतनी बड़ी सजा क्यों दी ? मैंने क्या किया था ? किन्तु उनके मुंह की ओर देखकर यह प्रश्न मुंह से न निकला।

पूछा—किसी को कुछ नहीं कह गई हैं भैया ?

बोले—'हाँ,। मरने के दस-एक घण्टे पहले तक होश था, पूछा, सती, माँ को कुछ कहोगी ?'

बोली—'नहीं।'

'द्विजू को ?'

'हाँ। उसे मेरा आशीर्वाद देना।' मैं सन्न रह गया और दौड़कर भाभी के स्तब्ध कमरे में चला आया। फोटो खिचवाने में वह बहुत लजाती थी, केवल एक फोटो उनकी आलमारी की आड़ में छिपी हुई थी। मेरी ली हुई फोटो थी। सामने खड़ा होकर बोला—'धन्य हो गया भाभी, समझ गया तुम्हारी आज्ञा ! इतनी जल्दी चली जाओगी, नहीं समझा था, यदि कहीं हो तो देखोगी तुम्हारी आज्ञा की अपेक्षा नहीं की है। केवल इतनी शक्ति देना, तुम्हारे शोक में किसी के सामने और आँसू न निकलें। किन्तु आज यहीं तक उनकी कहानी रहे।

अब रहा मैं ! जाने के समय आपने अनुरोध किया था शादी करने के लिए। क्यों इतना भार अकेला ढो नहीं सकूँगा—साथी की आवश्यकता है। वह साथी मैत्रेयी होगी, यही आपके मन में आशा थी। उज्र नहीं किया था, सोचा था दुनिया का पन्द्रह आना सुख ही यदि समाप्त हो गया तो एक आने के लिए अब खींचातानी नहीं करूँगा, किन्तु वह भी नहीं होना चाहता, भाभी की मौत ने एक अलग बाधा खड़ी कर दी। बाधा कैसी ? मैत्रेयी भार ले सकती है, वह बोझ नहीं ढो सकती। यह जान लिया है। अब तो मेरा बोझ बहुत भारी है। फिर भी कहूँगा कष्ट के दिन में उसने हमारा कुछ किया है, मैं उसका ऋणी हूँ।

कल बहुत रात को नींद टूट जाने पर बासु रोने लगा। उसे सुलाकर भैया के कमरे में गया। देखा—तब भी जागकर वे पुस्तक पढ़ रहे हैं।—'कौन-सी पुस्तक है भैया ?' भैया पुस्तक बन्द करके रखते हुए हँसकर बोले—

'बतला क्या करने आया है ?' उनकी ओर देखकर जो कहने आया था, वह कहा नहीं गया। सोचा, सोते से वासु रो पड़ा तो उससे विप्रदास को क्या ? पूछा—'श्राद्ध के बाद कलकत्ता जायँगे भैया ?'

बोले—'नहीं, तीर्थयात्रा में जाऊँगा।'

'कब लौटेंगे ?'

फिर तनिक हँसकर भैया ने कहा—'नहीं लौटूंगा।'

मैं अवाक होकर उनके मुख की ओर देखता खड़ा रहा। सन्देह नहीं रहा कि यह संकल्प टलने का नहीं। भैया ने गृहस्थी त्याग दी।

लेकिन अनुनय-विनय, रोना-पीटना किसके आगे ? इसी निस्पृह, निष्ठुर संन्यासी के आगे ? इससे बढ़कर भी कोई अपमान है ?

'किन्तु बासु ?'

भैया ने कहा—'हिमालय के पास एक आश्रम का पता लगा है, वे छोटे बच्चों का भार लेते हैं। शिक्षा भी वे ही देते हैं। उनके हाथों में उसे सौंप दूंगा।'

'और यदि मैंने उसका लालन-पालन किया ?'

इसके बाद दोनों हाथों से कानों को बन्द करके कमरे से भाग आया। उन्होंने क्या उत्तर दिया, सुना नहीं।

सारी रात बासु के पास बैठा सोचता रहा। इसका अन्त कहाँ होगा कुछ समझ में नहीं आया। तुम्हारी बात स्मरण हो आई। कह गई थीं मित्र की जब सच्ची आवश्यकता होगी, तब भगवान् उसे स्वयं द्वार पर पहुँचा देंगे। इस बात पर विश्वास करने के लिए कहा था। मित्र कौन है, कब वह आवेगा, नहीं मालूम, फिर भरोसा किये बैठा हूं, मेरे इस कठिन समय में वह एक दिन आवश्य आवेगा।

—द्विजदास

पढ़ना समाप्त होने पर देखा गया, साहब के नेत्रों से आँसू गिर रहे हैं। रूमाल से नेत्र पोंछकर बोले—'आज ही जाओ बिटिया, मैं बाधा नहीं दूंगा। दरबान और तुम्हारा बूढ़ा हिमू भी साथ जायगा।'

उनके पैरों की धूलि लेकर वन्दना ने कहा—'जाने का प्रबन्ध करूँ।'

: २६ :

विराजदत्त मैनेजर स्टेशन पर उपस्थित थे। वन्दना को आदर के साथ ट्रेन से उतारकर मोटर पर ला बैठाया।

वन्दना ने पूछा—'क्या आज भी माँ घर नहीं पहुँचीं दत्त जी?'

'नहीं बहिन!'

'मैत्रेयी?'

'नहीं, लिवाने तो उन्हें गया नहीं।'

'बासु अच्छी प्रकार है न?'

'हाँ, अच्छा है।'

'मुखोपाध्याय जी? द्विजू बाबू?'

'बड़े बाबू तो अच्छे हैं, लेकिन छोटे बाबू अच्छे नहीं जान पड़ते।'

वन्दना ने पूछा—ज्वर तो नहीं हो आया है?

दत्त ने कहा—ठीक से नहीं जानता। वैसे सब काम तो करते हैं।

कुछ देर तक चुप रहकर वन्दना ने कहा—दत्त जी, जान पड़ता है कि माँ शायद इस दुःख के बीच आवेंगी नहीं। लेकिन दुःख जितना भी हो श्राद्ध के लिए प्रबन्ध तो करना ही होगा। क्या कुछ हो रहा है?

'क्यों नहीं हो रहा है वहिन। जैसा मालिक के श्राद्ध में हुआ था, लगभग उसी प्रकार का प्रबन्ध हो रहा है।'

बात जब समझ में न आई तो बन्दना ने आश्चर्य से पूछा—'किसके समान कह रहे हैं, क्या मुखोपाध्याय के श्राद्ध के समान? उसी प्रकार का बड़ा प्रबन्ध?'

दत्त बोले—हाँ, लगभग वैसा ही। जाकर देखोगी। बड़े बाबू ने बुलाकर कहा—पागलपन मत करना द्विजू, सभी चीजों की एक मात्रा होती है। छोटे बाबू बोले—मात्रा है, जानता हूँ, किन्तु मात्रा का कारण सभी का एक ही प्रकार का नहीं होता भैया। बड़े बाबू ने हँसकर कहा—किन्तु तू तो सब लोगों की सभी मात्राओं को लाँघता जा रहा है। छोटे बाबू बोले—तु लोगों से यह विनती है कि एक बार के लिए मुझे क्षमा कीजिए।

'बतला क्या करने आया है ?' उनकी ओर देखकर जो कहने आया था, वह कहा नहीं गया। सोचा, सोते से वासु रो पड़ा तो उससे विप्रदास को क्या ? पूछा—'श्राद्ध के बाद कलकत्ता जायँगे भैया ?'

बोले—'नहीं, तीर्थयात्रा में जाऊँगा।'

'कब लौटेंगे ?'

फिर तनिक हँसकर भैया ने कहा—'नहीं लौटूंगा।'

मैं अवाक होकर उनके मुख की ओर देखता खड़ा रहा। सन्देह नहीं रहा कि यह संकल्प टलने का नहीं। भैया ने गृहस्थी त्याग दी।

लेकिन अनुनय-विनय, रोना-पीटना किसके आगे ? इसी निस्पृह, निष्ठुर संन्यासी के आगे ? इससे बढ़कर भी कोई अपमान है ?

'किन्तु बासु ?'

भैया ने कहा—'हिमालय के पास एक आश्रम का पता लगा है, वे छोटे बच्चों का भार लेते हैं। शिक्षा भी वे ही देते हैं। उनके हाथों में उसे सौंप दूंगा।'
'और यदि मैंने उसका लालन-पालन किया ?'

इसके बाद दोनों हाथों से कानों को बन्द करके कमरे से भाग आया। उन्होंने क्या उत्तर दिया, सुना नहीं।

सारी रात वासु के पास बैठा सोचता रहा। इसका अन्त कहाँ होगा कुछ समझ में नहीं आया। तुम्हारी बात स्मरण हो आई। कह गई थीं मित्र की जब सच्ची आवश्यकता होगी, तब भगवान् उसे स्वयं द्वार पर पहुँचा देंगे। इस बात पर विश्वास करने के लिए कहा था। मित्र कौन है, कब वह आवेगा, नहीं मालूम, फिर भरोसा किये बैठा हूं, मेरे इस कठिन समय में वह एक दिन अवश्य आवेगा।

—द्विजदास

पढ़ना समाप्त होने पर देखा गया, साहब के नेत्रों से आँसू गिर रहे हैं। रूमाल से नेत्र पोंछकर बोले—'आज ही जाओ बिटिया, मैं बाधा नहीं दूंगा। दरबान और तुम्हारा बूढ़ा हिमू भी साथ जायगा।'

उनके पैरों की धूलि लेकर वन्दना ने कहा—'जाने का प्रबन्ध करूँ।'

: २६ :

विराजदत्त मैनेजर स्टेशन पर उपस्थित थे। वन्दना को आदर के साथ ट्रेन से उतारकर मोटर पर ला बैठाया।

वन्दना ने पूछा—'क्या आज भी माँ घर नहीं पहुँचीं दत्त जी ?'

'नहीं बहिन !'

'मैत्रेयी ?'

'नहीं, लिवाने तो उन्हें गया नहीं।'

'बासु अच्छी प्रकार है न ?'

'हाँ, अच्छा है।'

'मुखोपाध्याय जी ? द्विजू बाबू ?'

'बड़े बाबू तो अच्छे हैं, लेकिन छोटे बाबू अच्छे नहीं जान पड़ते।'

वन्दना ने पूछा—ज्वर तो नहीं हो आया है ?

दत्त ने कहा—ठीक से नहीं जानता। वैसे सब काम तो करते हैं।

कुछ देर तक चुप रहकर वन्दना ने कहा—दत्त जी, जान पड़ता है कि माँ शायद इस दुःख के बीच आवेंगी नहीं। लेकिन दुःख जितना भी हो श्राद्ध के लिए प्रबन्ध तो करना ही होगा। क्या कुछ हो रहा है ?

'क्यों नहीं हो रहा है बहिन। जैसा मालिक के श्राद्ध में हुआ था, लगभग उसी प्रकार का प्रबन्ध हो रहा है।'

बात जब समझ में न आई तो वन्दना ने आश्चर्य से पूछा—'किसके समान कह रहे हैं, क्या मुखोपाध्याय के श्राद्ध के समान ? उसी प्रकार का बड़ा प्रबन्ध ?'

दत्त बोले—हाँ, लगभग वैसा ही। जाकर देखोगी। बड़े बाबू ने बुलाकर कहा—पागलपन मत करना द्विजू, सभी चीजों की एक मात्रा होती है। छोटे बाबू बोले—मात्रा है, जानता हूँ, किन्तु मात्रा का कारण सभी का एक ही प्रकार का नहीं होता भैया। बड़े बाबू ने हँसकर कहा—किन्तु तू तो सब लोगों की सभी मात्राओं को लांघता जा रहा है। छोटे बाबू बोले—तो आप लोगों से यह विनती है कि एक बार के लिए मुझे क्षमा कीजिए। मैं मात्र

को लाँघ सकता हूँ पर भाभी की मर्यादा का उलंघन मुझसे नहीं किया जायगा। इस पर कोई कुछ न बोला, अब यदि आप कुछ कर सकें, तो करें। बीस-पच्चीस हजार से कम खर्च नहीं हो सकता।

'खर्च क्या सब छोटे बाबू करेंगे ?'

'हाँ।'

वन्दना ने पूछा—'क्या यह उनके लिए बहुत अधिक मालूम होता है, दत्त जी ?' विराजदत्त बोले—'बहुत अधिक न होने पर भी हाल ही में खर्च भी अधिक हुआ है बहिन। अब संभल कर चलने की आवश्यकता है। इस पर दूसरी विपत्ति आने में देर क्या लगती है ?'

'अब दूसरी विपत्ति कैसी ?'

पल भर चुप रहकर दत्त बोले—'क्या आपने नहीं सुना कि बहनोई जी मुकदमा चल रहा है ? इन सब चीजों का परिणाम तो जानती हैं, लेकिन कोई बतला नहीं सकता कि निर्णय क्या होगा।'

'तो मना क्यों नहीं किया ?'

'मना ? वे बड़े बाबू नहीं हैं बहिन कि कहना मान लेंगे। उन्हें मना करने वाली एक ही थीं, वह अब स्वर्ग में हैं।' कहकर दत्त ने लम्बी साँस ली।

वन्दना ने आगे कुछ नहीं पूछा। घर के निकट आकर देखा, सामने वाले मैदान की ओर लकड़ी के चैलों का ढेर लगा है। उस दिन दयामयी के व्रत के उपलक्ष में जो झोंपड़े बनाए गए थे, उनकी मरम्मत हो रही हैं। बाहर के आँगन में बड़ा मण्डप बनाया जा रहा है, वहाँ बहुतेरे लोग बहुत से कामों में जुटे हुए हैं। विराजदत्त ने अत्युक्ति नहीं की है, यह उसने जान लिया।

मोटर से उतरकर वह सीधी ऊपर चली गई। पहले द्विजदास के कमरे में गई। तकिए के सहारे वह लेटा हुआ था, पर्दा हटने की आवाज से नेत्र खोलकर उठ बैठा, बोला—मित्र स्वयं ही घर के द्वार पर आ गया।

वन्दना ने कहा—हाँ, आ तो गई, लेकिन इस समय क्यों लेटे हुए हैं ?

द्विजदास ने कहा—नेत्र मूँद कर तुम्हारा ध्यान कर रहा था और मन-ही-मन कह रहा था वन्दना, मेरे दुःखों की सीमा नहीं है। शरीर में शक्ति नहीं है, दिल में बिश्वास नहीं है, शायद धक्के न सह सकूँगा, किश्ती मँझधार में

ही डूबेगी। उस पार जाना नहीं हो सकेगा।

वन्दना ने कहा—होगा ही। तुम्हें अवकाश देकर अब किश्ती मैं खेऊँगी।

'अच्छी बात तो है ! अप्रसन्न होकर फिर कहीं चली न जाना।'

इसके बाद वन्दना ने पास आ घुटने टेककर प्रणाम किया, फिर पदधूलि माथे पर लगा उठ खड़ी हुई, दोनों नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली। इस प्रकार से यह प्रणाम उसने पहली बार किया। बोली—'तुम्हारे नेत्र भी भीग जाते हैं, यह मुझे मालूम न था।'

द्विजदास ने कहा—'मैं भी नहीं जानता। शायद उसके आने का मार्ग अब तक बन्द था। पहले उस दिन खुला जब मैत्रेयी को लाकर गृहस्थी का भार देने के लिए कहकर चली गई। ओट में आँसू पोंछकर मन-ही-मन बोला—'इतनी बड़ी चोट जो निःसंकोच कर सकती है, उससे कभी भिक्षा नहीं माँगूँगा। किन्तु मेरी वह प्रतिज्ञा रही नहीं। भाभी स्वर्ग चली गईं, भैया ने घर त्यागने की इच्छा प्रकट की, पल भर के भूकम्प से मानो सब कुछ मिट्टी में मिल गया। इसे भी सहा, किन्तु जब सुना कि बासु भी घर त्याग कर एक अनजाने आश्रम में चला जायगा, तो सहन न हो सका। अब सोचा कि जो कुछ है उसे भी कल्याणी के पुत्रों को देकर मैं भी किसी ओर चला जाऊँगा, तब अचानक तुम्हारे जाने के पहले की अन्तिम बात याद आई—कहा था कि विश्वास करने के लिए यदि मुझे बान्धवी की सख्त जरूरत हुई, तो वह द्वार पर स्वयं आवेगी। सोचा इसी का तो मुझे अन्तिम प्रयोजन है, अब प्रयोजन किस दिन होगा ? इसीलिए तुम्हें पत्र लिखा। मन में सन्देह उठना चाहते थे, उन्हें दूर भगा कर कहता, बान्धवी आवेगी ही। वर्ना उनकी बात असत्य होगी, मिथ्या हो जायगा भाभी का आशीर्वाद। जो भार वह छोड़ गई उसे मैं किस बल पर ढोऊँ ?' कहते हुए आँसू के दो बुँद उसके नेत्रों से लुड़क पड़े।

वन्दना ने कहा—'सभी कहते हैं कि तुम बड़े निष्ठुर हो, भाभी के अलावा और किसी की बात कभी नहीं सुनी है।

द्विजदास ने कहा—'तुम्हें इसी का भय है ? किन्तु न जाने क्यों नहीं सुना, भाभी होतीं तो इसका उत्तर देतीं।' इतना कहकर नेत्र पोंछ डाले।

वन्दना ने कुछ देर मौन रहकर उसकी ओर देखकर कहा—तुम्

मिल गया। अब मुझे सन्देह नहीं है।' यह कह उसने द्विजदास के हाथ को अपने हाथों में खींच कुछ देर मौन रहकर कहा—'तुम्हारे चारों ओर ही भूकम्प नहीं आया है, मेरे अन्दर भी इसी प्रकार का प्रबल भूकम्प आया है। जो कुछ भूमिसात् होना था वह मिट्टी में मिल गया, जो टूटने का नहीं, डिगने का नहीं, वही अटल आज प्राप्त हुआ। अब जाऊं भैया के पास, जाने के दिन उन्होंने मुझे आशीर्वाद देकर कहा था, जो तुम्हारा अपना है, मेरा आशीर्वाद उसे ही एक दिन तुम्हारे हाथों में ला दे। साधु की बात पर मैंने विश्वास नहीं किया था, निश्चित रूप से जानती थी कि उनकी यह बात सत्य ही होगी। केवल यह नहीं सोचा था कि वह आशीर्वाद ऐसे दुःख के अन्दर से अपने आत्मीय को ला देगा। जाकर उन्हें प्रणाम कर आऊँ।'

'द्विजू, वन्दना आई है न?' ऐसे समय अन्नदा ने कहकर प्रवेश किया।

'हाँ, आई हूँ अनु बहिन।' कहकर वन्दना ने उसकी ओर देखा। अन्नदा के गम्भीर शोकाच्छन्न मुख की ओर देखकर वन्दना चकित हो गई, पास जा उसकी छाती पर सिर रखकर अस्फुट स्वर में बोली—'तुम्हारी इस मूर्ति की मैं कल्पना भी नहीं कर सकी अनु बहिन!' कहने के बाद फूट-फूटकर रोने लगी।

अन्नदा की आँखों से आँसू बह रहे थे। धीरे-धीरे बहुत देर तक उसकी ० पर हाथ सहलाते हुए मृदु स्वर में बोलने लगी—'अब अचानक चली मत जाना वन्दना, कुछ दिनों तक रहो, और अधिक तुम से मैं क्या कहूं।'

वन्दना ने कहा—'नहीं!' छाती में उसी तरह सिर छिपाये हुए स्वीकार किया। इसी प्रकार और बहुत समय बीत गया। फिर सिर उठाकर आँचल से नेत्र पोंछे—'अनु बहिन, वासु कहाँ है?'

'उसे पोखरे में नहलाने नौकर ले गये हैं।'

'उसे खाना कौन बनाकर देता है?'

अन्नदा ने कहा—'द्विजू और वे दोनों साथ ही खाते हैं, एक साथ सोते हैं।' कहते हुए फिर उसके नेत्रों में आँसू आ गये, पोंछकर बोली—'माँ तो केवल वासु की ही नहीं मरी है, उसकी भी मरी है।' फिर नेत्रों को पोंछकर बोली—सभी कहते हैं कि असमय में घर की बहू मरी है, बच्ची के श्राद्ध में इतनी धूमधाम क्यों? उसे सभी मना करते है—सब कुछ अधिक देखकर सभी के

शरीर में आग-सी लग जाती है, सोचते हैं यह तो ठीक नहीं है। पर जानते नहीं कि वह दूसरे जन्म में उसकी माँ थी। कोई भी पुत्र उस मर्यादा में कलंक लगाना कैसे सहन कर सकता है ?

द्विजदास ने वन्दना को संकेत से दिखाकर कहा—अब भय की बात नहीं अनु बहिन, वन्दना आ गई है, अब सारा भार उसके कन्धों पर डालकर मैं अलग हो जाऊँगा।

अन्नदा ने कहा—'बेटी एक साथ ही इतना भार सम्भालोगी कैसे ?'

'पराये की बेटियाँ ही तो भार ढोती हैं अनु बहिन। उन्हें बुलाकर कह दिया है कि इतने दुःख का भार मुझसे ढोया नहीं जायगा, इस पर भी यदि बासु चला जाता है तो रहा तुम लोगों का बलरामपुर के मुखोपाध्याय का घर, रहा उनके सात पुश्त का गौरव—शशधर के लड़कों को बुलाकर इस गृहस्थी से मैं त्याग-पत्र दे दूँगा। केवल भैया के वंश की ही बात नहीं है, द्विजू भी कर सकता है। संन्यास नहीं लिया जा सकेगा सही है, उसे मैं समझता नहीं हूँ। किन्तु रुपये पैसे के बोझ को मैं सरलता से फेंक कर चला जाऊँगा यह सत्य है।'

वन्दना के दोनों हाथों को पकड़कर अन्नदा ने कहा—'बहिन, विपिन के समान नहीं बना सकोगी ? बासु को घर में रख नहीं सकोगी ?'

'रख सकूँगी अनु बहिन।'

'बहनोई जी से जो यह मुकदमा लगा हुआ है, उसे रुकवा न सकोगी ?'

'हाँ, यह भी करूँगी अनु बहिन।' पल भर चुप रहकर बोली—'वह कभी मेरी बातें को टालेंगे नहीं, इसी शर्त्त पर इस घर की छोटी बहू होने के लिए सहमत हुई अनु बहिन।'

बात को अच्छी प्रकार न समझ पाकर अन्नदा चुप हो देखती रही।

वन्दना ने कहा—जो गया सो गया ही। इस पर क्या माँ को भी खो देना चाहिए ? मुकदमा नहीं रुका तो मैं उन्हें कैसे लौटा लाऊँगी ?

द्विजदास ने तकिये के नीचे से चाभियों का गुच्छा निकालकर वन्दना के पैरों के पास फेंककर कहा—यह लो ! तुम्हारी बातों को टालूँगा नहीं, यह प्रतिज्ञा तुम्हारे सामने ही कराता हूँ।

वन्दना ने चाभियों के गुच्छे को लेकर आँचल में बाँध लिया। अब अन्नदा ने इसका अर्थ समझा। वन्दना को हृदय से लगा चुप खड़ी रही फिर दोनों नेत्रों से आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें गिरने लगीं।

× × ×

विप्रदास के कमरे में जाकर वन्दना ने उन्हें प्रणाम किया। बोली—'मैं आ गई हूँ मुखोपाध्याय जी।'

यह नया सम्बोधन विप्रदास के कानों में पहुँचा। किन्तु इसके विषय में कुछ न कहकर पूछा—'सुना था कि तुम आ रही हो, तुम्हारे पिता जी का तार मिला था। रास्ते में कष्ट तो नहीं हुआ ?

'नहीं।'

'साथ में कौन आया ?'

'हमारा दरवान और बूढ़ा नौकर हीमू।'

'पिता जी अच्छी तरह हैं ?'

'हाँ, अच्छे हैं।'

विप्रदास चुप रहकर बोले—देखा द्विजू कैसा पागलपन कर रहा है ?

वन्दना बोली—आप श्राद्ध की बात कर रहे हैं न ? लेकिन पागलपन कैसे है ? आयोजन बड़ा ही तो होना चाहिए। ऐसा न होने से उनकी मर्यादा खण्डित जो हो जाती।

'किन्तु सम्भालेगा कैसे वन्दना ?'

'वह नहीं सम्भाल सकेगा तो मैं सम्भालूँगी बड़े भैया।'

विप्रदास ने हँसकर कहा—वह शक्ति तुम में है मानता हूँ। किन्तु दिमाग बिगड़ जाने से कठिन हो जायगा। कहीं अचानक अप्रसन्न होकर चली न जाओ तो मन में विश्वास हो।

वन्दना ने कहा उस दिन पराये के समान आई थी, कन्धों पर कोई उत्तर-दायित्व नहीं था। किन्तु आज आई हूँ इस घर की छोटी बहू होकर। अप्रसन्न कर देने से अप्रसन्न हो भी सकती हूँ, पर अब चली कैसे जाऊँगी ? वह मार्ग जो बन्द हो गया।' यह कह उसने चाभियों का गुच्छा दिखाकर कहा—'यह देखिए इस घर की सभी आलमारियों और बक्सों की चाभियाँ हैं। स्वयं उठा-कर अपने आँचल में बाँधी हैं।

प्रसन्नता और आश्चर्य से विप्रदास मौन हो देखते रहे। वन्दना कहने लगी—आपसे लजाकर या छिपाकर बोलने को कुछ भी नहीं है। आपको अपने आशीर्वाद की बात याद आती है? जाने के दिन मुझे कहा था कि जो तुम्हारा वास्तव में अपना है, एक दिन तुम उसे पाओगी। उस दिन से मेरी चंचलता दूर हो गई, शान्त हृदय से इसी बात को सोचा है कि जो जितेन्द्रिय हैं, जो आजन्म शुद्ध सत्यवादी साधु हैं, उनके आशीर्वाद से अब मुझे किसी बात का भय नहीं रहा। जो मेरे स्वामी हैं, वह मुझे अवश्य मिलेंगे।' इतना कह उसके दोनों नेत्रों में जल भर आया।

पास आकर विप्रदास ने उसके सिर पर हाथ रख मौन आशीर्वाद दिया और आज यह पहली बार वन्दना ने उनके चरणों पर बहुत देर तक सिर रखकर प्रणाम किया। उठ खड़ी होने पर विप्रदास ने कहा—'आज तुमने जिसे पाया है वन्दना उससे दुर्लभ वस्तु संसार में और नहीं है। मेरी इस बात को सदैव याद रखना।

वन्दना ने कहा—याद रखूँगी बड़े भैया। एक दिन के लिए भी नहीं भूलँगी।

कुछ ठहर कर बोली—'एक दिन बीमारी में आपकी सेवा की थी, आपने पुरस्कार देना चाहा था, किन्तु तब नहीं लिया था—स्मरण है न वह बात?'

'हाँ, स्मरण है।'

'आज वह पुरस्कार दीजिए। बासु को मैंने लिया।'

विप्रदास ने हँसकर कहा—'ले लो।'

'मैं माँ कहकर बुलाना उसे सिखाऊँगी।'

'ऐसा ही करना। उसकी माँ और बाप दोनों को ही आज तुममें छोड़े जाता हूँ और छोड़े जाता हूँ इस मुखोपाध्याय वंश की विशाल मर्यादा क तुम्हारे हाथों में।'

वन्दना ने पल भर सिर नीचा करके इस भार को मानो मौन होकर ग्रह किया, फिर बोली—एक प्रार्थना और है। अपने को नहीं पहचान कर ए दिन आपके सामने अपराध किया था। अब मोह दूर हो गया, आज म चाहती हूँ?

'क्षमा तो बहुत दिन पहले ही कर दिया है वन्दना। मैं जानता था

म्हारे अन्तर ने जिसे हृदय से चाहा है, एक दिन तुम उसे पहचानोगी ही। सीलिए मेरे सामने तुम्हें लज्जा करने की कोई बात नहीं है।'

वन्दना के नेत्र फिर डबडबा रहे थे, जोर से अपने को रोक कर बोली—क भिक्षा और। हमारी गृहस्थी में अब क्या एक दिन भी नहीं रहेंगे ? अभि-ान संकोच से किसी दिन भी जी खोलकर आपकी सेवा नहीं कर सकी लेकिन ह बाधा तो दूर हुई, अब तो मुझे लज्जा नहीं है—कुछ दिनों तक मेरे पास हिए न ? दो दिन पूजा करूँ।' यह कह सजल नेत्रों से देखती रही—उसका ुखी कण्ठ-स्वर मानो हृदय को पार कर बाहर निकल आया।

विप्रदास चुपचाप हँसते रहे।

वन्दना ने कहा—इस हँसमुख चुप्पी से ही मैं सबसे अधिक भयभीत हूँ बड़े भैया ! कितना कठोर है आपका मन इसे न तो पिघलाया जा सकता है, न डिगाया जा सकता है। उत्तर नहीं देंगे ?

विप्रदास ने हँस दिया। हँसी जैसी स्निग्ध थी, वैसी ही सुन्दर, वैसी ही निर्मल ! उन्हें इस प्रकार हँसते वन्दना ने यह पहली बार देखा। बोली—उत्तर मिल गया, आपको तंग नहीं करूँगी। किन्तु बतला दीजिए हृदय को कैसे शान्त करूँ ? वह तो केवल रो देना चाहता है।

विप्रदास ने कहा—'हृदय स्वयं शान्त होगा वन्दना, जिस दिन निःसंशय समझ लोगी कि तुम्हारे बड़े भैया दुःख में कूद पड़ने के लिए गृह-त्यागी ीं हुए हैं, लेकिन इसके पहले नहीं।

'किन्तु इसे मैं कैसे समझूँगी ?'

'केवल मुझ पर विश्वास करके। जानती तो हो बहिन मैं असत्य नहीं बोलता।'

वन्दना चुप रही। दो मिनट के बाद लम्बी साँस लेकर बोली—ऐसा ही ोगा। आज से प्रयत्न करके अपने को समझाऊंगी, बड़े भैया सत्य बात कह ये हैं, वह सत्यवादी हैं, स्वयं बातों में भुलावा देकर चले नहीं गये हैं। जहाँ ानव का चरम श्रेय है, उसी तीर्थ में चले गये।

विप्रदास ने कहा—हाँ ! अपने मन को समझाकर कहो जो सबसे सुन्दर , सबसे सच है, सबसे मधुर है, बड़े भैया उसी पथ की खोज में गये हैं। उन्हें ोकना नहीं चाहिए, उन्हें भ्रान्त नहीं करना चाहिए। उनके लिए शोक करना

अपराध है।

वन्दना के नेत्रों में फिर जल भर गया, शीघ्रता से पोंछकर बोली—ऐसा ही होगा, ऐसा ही होगा ! यदि जीवन में फिर कभी दर्शन न मिले फिर भी कहूँगी भ्रम नहीं हैं, उनके लिए दुःख मानना अपराध है।

पर्दे के बगल से मुँह निकालकर विराजदत्त ने कहा—'एक आवश्यक बात है बहिन, तनिक इधर तो आइए।'

'आ रही हूँ विराज बाबू। बड़े भैया, अब चलती हूँ।' कहकर वन्दना कमरे से बाहर निकल गई।

× × ×

धूमधाम से सती का श्राद्ध समाप्त हुआ। भिखारी, कंगाल सभी सती-साध्वी का गुणगान करते हुए वापस चले गये, सभी बोले—मुखोपाध्याय वंश का काम-काज इसी प्रकार होता है।

प्रातः स्नान से अवकाश पा वन्दना प्रणाम करने के लिए विप्रदास के कमरे में जाकर आश्चर्य से ठमक कर खड़ी हो गई—उसकी बगल में बैठी हैं दयामयी। प्रातः की गाड़ी से घर लौटी हैं, अभी तक किसी को मालूम नहीं। माँ की मूर्ति देखकर वन्दना को चोट लगी। सोने सा रंग काला पड़ गया है, सिर के छोटे-छोटे केश रूखे, गर्द भरे हैं, नेत्र धँस गये हैं, माथे पर रेखाएँ खिच गईं—दुःख शोक की ऐसी दुख से भरी मूर्ति वन्दना ने पहले कभी नहीं देखी थी। उसे याद आई उस दिन की वह ऐश्वर्यवती सर्वमयी स्वामिनी विप्रदास की माता की। अभी कितने दिनों की बात है। आज उनका सारा गौरव मानो मार्ग की धूल में मिल गया है। पास जाकर प्रणाम करके बोली—'अब आई हो माँ ?'

उसकी ठुड्डी स्पर्श करके दयामयी ने चुम्बन किया, बोलीं—'मेरे आने की सूचना किस लिए वन्दना ? तब आती थी विप्रदास की माँ, इसलिए गाँव भर के सभी बच्चे-बूढ़े जान जाते थे। विपिन, काम तो समाप्त हो गया भइया, चलो माँ-बेटे आज ही चल दें।

सुनकर विप्रदास ने हँसकर कहा—'डरो मत माँ, माँ-बेटे के जाने में बाधा नहीं होगी, लेकिन आज जाना नहीं हो सकता। वन्दना के पिता कल आ रहे हैं, अपनी छोटी बहू को गृहस्थी समझाकर सौंपे बिना कैसे जायँगे ?'

बहुत देर तक चुप रहकर दयामयी ने कहा—'ऐसा ही होगा विपिन, मुझसे सहा नहीं जायगा, ऐसा असत्य मुँह से नहीं निकालूँगी। किन्तु अब कितने दिन शेष हैं ?'

'केवल सात दिन। फिर आज ही के दिन हम चल देंगे।'

वन्दना ने कहा—'घर में अपने कमरे में चलिए माँ।'

दयामयी ने सिर हिलाकर अस्वीकार किया—'तुम्हारी यह बात रख नहीं सकूँगी बिटिया। जितने दिन हूँ, मैं यहीं रहूँगी और जाने का दिन आवेगा तो इसी बाहर के कमरे से हम दोनों जने चले जायँगे। अन्दर जो कुछ है बिटिया वह सारा तुम्हारा है।'

वन्दना ने आग्रह नहीं किया, केवल एक बार फिर उनकी पद-धूलि लेकर सिर झुकाये कमरे से बाहर निकल गई।

× × ×

विप्रदास का पत्र पाने के बाद वन्दना के पिता रे-साहब, एक सप्ताह की छुट्टी लेकर बलरामपुर आ गए और बिट्टो को द्विजू के हाथों में सौंपकर फिर अपनी नौकरी पर वापस चले गये।

इस शादी में शहनाई नहीं बजी, वर-पक्ष और कन्या-पक्ष में लड़ाई नहीं हुई, लड़कियों ने उलुध्वनि अस्फुट स्वर में की, शङ्ख भी धीमे कण्ठ से बजा।

एकान्त में द्विजदास के उदास मुख की ओर देखकर वन्दना ने पूछा—'सोच क्या रहे हो बोलिए ?'

द्विजदास बोला—'तुम्हारी बात सोच रहा हूँ कि तुम मुझसे बहुत बड़ी हो।'

'क्यों ?'

'वर्ना तुमसे नहीं होता। बर्बादी से बचाने के लिए कितने दुःख भरे पथ को पार करके मेरे पास आई हो।'

वन्दना ने पूछा—'तुम नहीं आते ?'

'नहीं आता।'

वन्दना ने कहा—'झूठ बात है। किन्तु जानते हो मैंने क्या सोचा था ? तुम्हारे गले में माला पहनाते हुए सोच रही थी, ऐसा कौन सा पुण्य किया था

कि तुम्हारे जैसा पति मिला। पाया वासु को, माँ को, बड़े भैया को और पाया इस बड़े परिवार का सारा भार। किन्तु जिस समाज की मैं लड़की हूँ उसे कितना पाना चाहिए मालूम है?'

द्विजदास ने कहा—'मालूम नहीं।'

वन्दना ने बोलना चाहा पर सहसा रुक गई। बोली—'लेकिन आज नहीं। अपने परम सौभाग्य के दिन दूसरे की दीनता पर कटाक्ष नहीं करूँगी। दोष होगा।'

'नहीं होगा, बोलिए।'

सिर हिलाकर वन्दना ने अस्वीकार किया, बोली—'आज तुम थके हो तनिक सो जाओ, तुम्हारा सिर दाब दूं।'

दो-एक मिनट के बाद कहा—'मेरी मझली बहिन की बात याद आती है उस दिन बड़े भैया के साथ उसी दम चली जाना चाहा यह देखकर बोली—तुमने तो झगड़ा नहीं किया है मझली बहिन, तुम क्यों जाओगी।? मझली बहिन बोलीं—जहाँ स्वामी के लिए स्थान नहीं है, वहाँ स्त्री के लिए नहीं। एक दिन के लिए भी नहीं। तेरे स्वामी होते तो इस बात को जानती। उस दिन शायद इस बात को ठीक-ठीक नहीं समझा था, किन्तु आज समझ रही हूँ, तुम जहाँ नहीं होगे, वहाँ मैं एक दिन नहीं रह सकती।'

कुछ ठहर कर बोली—अभी कुछ ही घण्टे पहले पुरोहित के साथ-साथ कुछ मन्त्रों का उच्चारण करती गई, किन्तु जान पड़ता है कि जैसे मेरी देह का प्रत्येक रक्त-कण तक बदल गया है।

आँगन में कार खड़ी है। पास-दूर सब के सभी खड़े हैं। स्त्रियाँ एक तल्ले के बरामदे में खड़ी आँसू पोंछ रही हैं, विप्रदास ने उठकर पूछा—'द्विजू नहीं दिखाई दे रहा है?'

कोई बोल पड़ा—'वह घर पर नहीं हैं, बाहर किसी काम से गये हैं।'

सुनकर विप्रदास ने हँसकर कहा—'वह भाग गया है। वह केवल मुंह से ही है, वर्ना कायरों का गुरू हैं।'

वासु वन्दना का हाथ पकड़े खड़ा था। बोला—'आप फिर कब आयेंगे बाबू जी? जरा शीघ्र ही आइयेगा।'

विप्रदास ने प्रश्न का उत्तर न दिया। हँसकर उसका सिर हाथ से सहला दिया।

वन्दना ने सास की पद-धूलि ली। वह बोली—'बासु रहा, द्विजू रहा और रहे मन्दिर में तुम्हारे ससुर के कुलदेवता राधागोविन्द जी। कभी लौट सकी तो इन्हें तुमसे वापस लूंगी।' इतना कहकर उन्होंने आँचल से नेत्र पोंछे।

वन्दना ने दूर से ही विप्रदास को प्रणाम किया। फिर पास आकर सजल नेत्रों से भरे गले से बोली—'कलकत्ते के पूजा घर में आपकी जिस मूर्ति को एक दिन छिपकर देखा था, आज आपकी वही मूर्ति दिखाई पड़ी बड़े भइया। अब मुझे दुख नहीं है, आपका पता भले ही न मालूम हो, जानती हूं, मन से जिस दिन पुकारूंगी आप अवश्य आयेंगे। कितना ही भी ना-ना क्यों न कहें, यह बात किसी प्रकार भी असत्य सिद्ध नहीं हो सकती।'

विप्रदास ने केवल थोड़ा-सा हँस दिया और जिस प्रकार पुत्र की बात का उत्तर टाल गये, उसी प्रकार वन्दना की बात का भी।

तभी गाड़ी चल पड़ी।